GOODWILL INDIA

REDIT

CASH BOOK for ....

Receipt & Vr. No.	PARTICULARS	G. L. Folio	S. L. Folio	CASH Rs.	CASH P.	TOTAL Rs.	TOTAL P.

1703

श्री काशी संस्कृत ग्रन्थमाला १६१

॥ श्रीः ॥

वनौषधि-चन्द्रोदय

(AN ENCYCLOPAEDIA OF INDIAN BOTANYS & HERBS)

(नवाँ भाग)

लेखक—

श्री चन्द्रराज भण्डारी 'विशारद'

चौखम्भा विश्वभारती
चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)
वाराणसी-२२१००१

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

अखिल भारतीय [illegible] महासम्मेलन

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१९१

॥ श्रीः ॥

वनौषधि-चन्द्रोदय

(AN ENCYCLOPAEDIA OF INDIAN BOTANIES & HERBS)

(नवाँ भाग)

[संशोधित, परिवर्धित संस्करण]

लेखक—

श्री चन्द्रराज भण्डारी 'विशारद'

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९७१

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : चतुर्थ, वि० सं० २०२७
मूल्य : सम्पूर्ण १-१० भाग रु० ४०-००
प्रत्येक भाग रु० ५-००

APPROVED & RECOMMENDED BY

The Inspector General of Forests
Central Government New Delhi.
For All Chief Conservators of Forests
Circular No...7-3-53

The Chief Conservators of Punjab, Himachal Pradesh & Madhyabharat.
For All Divisional Forest Officers
of Above Provinces

The Director of Medical Deptt. Central Government
The Director of Education Deptt. Madhyabharat
For All Inter College & High School Libraries
Order No 3/8/53

The Director of Education Deptt. U. P.
For All Degree Colleges

© The Chowkhamba Sanskrit Series Office

P. O. Chowkhamba, Post Box 8
Varanasi-1 (U. P.) India
1971
Phone : 63145

LX
N71.9

000006

प्रधान शाखा
चौखम्बा विद्याभवन
चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१
फोन : ६३०७६

विषय सूची (१)

(हिन्दी नाम)

नाम	पृष्ठ
राई	१
राई काली	२
राजगिरा	४
राजबला	,,
रानचिमनी	,,
रानीफूल	,,
रामफल	५
रामलो	,,
रामदतोन	,,
रामेठा	,,
रायतुञ्ज	८
रायजामन	,,
रामबांस	,,
रालवृक्ष	९
रायधनी	१०
रासना	,,
रासना (२)	१२
रुखालू	१३
रुद्राक्ष	,,
रुद्राक्ष (२)	१४
रुद्रवंती	,,
रूपामक्खी	१६
रूमीमस्तगी	१७
रुंछाली वेलड़ी	,,
रूसा	,,
रेवन्द चीनी	१८
रेनुक	१९
रेलू	२०
रोहिणी	,,
रोसा घास	२१
रोजमरी	२२
लंगली	,,
लंजालू	२२
लजालू (२)	२३
लटकन	२४
लतमी	२५
लकड़ी का कोयला	,,
लटमहूरिया	,,
लतामेहन्दी	,,
लफा	२६
लमतानी	,,
लहसन	,,
लहसन एककली	३०
लक्ष्मणा	३१
लसोड़ा छोटा	३२
लसोड़ा बड़ा	३३
लाख	३४
लांगुली लता	३६
लास	,,
लाल मुरगा	,,
लिबिडिबी	३७
लिम्बाड़ा	,,
लीनपिन	,,
लीची	,,
लीलकंठी	३८
लीलजहरी	,,
लुकाट	,,
लूनिया छोटा	३९
लुदुत	४०
लूयून	,,
ल्यूबिसफरम्यून	४०
लेंडो	,,
लोखण्डी	,,
लोटलोटी	४१
लोध	४१
लोध पठानी	४२
लोभान	४३
लोभान के फूल	,,
लोभान (कुन्दर)	४४
लोलोरी	,,
लौंग	४५
वट्टाली	४६
वचगन्धा	,,
वटदला	४७
वनशेम्पगा	,,
वनमल्लिका	,,
वरसिंगी	,,
वल्लीकाजिरम	४८
वल्लभोम	,,
वल्लिपान	४८
वागटी	,,
बांजि	,,
वामी	४९
विखारी	,,
वोरी बादरी	,,
वेट्टि	५०
वेखरियो	,,
वेल्लाइनवल	,,
वेल्लाकुरिंजी	,,
वेनकुरुञ्जी	,,
शकरकन्द	,,
शंखाहूली	५१
शकरपिटन	५३
शतावरी	,,
शदाबुटी	५५
शहतूत	,,
शंकेश्वर	५६
शंख	५७
शाखापलिता	५८
शालपर्णी	,,
शिरगोला	५९
शिकाकाई	,,
शिंगटिक	६०
शिवलिंक	,,
शियाहकान्त	,,
शिवलिंगी	,,
शिवनिम्ब	६१
शिलारस	,,
शिलाजीत	६२
शीशम	६८
शीशमविलायती	६९
शूरी घास	,,
शेरसा	७०
श्वेतहुली	,,
शाल	,,
शेवाल	,,
सकीना	७१
शकमुनियाँ	,,
सकेना	,,
शंखिनी	७२
संकासुरा	,,
सगतरा	,,
संखिया	७३
संगकुप्पी	७९
संगखापुली	८०
सज्जीखार	८१
सदाफूल	,,
सगेरी	,,

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
सज्जीबूटी	८२	सन्निपात	८५	स्वर्णक्षीर	९२	सरमूल	९८
सदमण्डी	,,	सनाय	८६	सरकण्डा	,,	स्वर्णवल्ली	,,
सन	८३	समुद्रफल	८७	सर्वजय	९३	समरा कोकड़ी	,,
सनपर्णी	,,	समुद्रफल (२)	,,	सरपंखा	,,	सरमल	९९
सफेदा	८४	समुद्रशोष	९०	संधिनी	९५	सलबियास फेकुस	,,
सफेद बबूल	,,	समुद्रफेन	९१	सरहटी	,,	सहदेवी बड़ी	,,
सफेद बहमान	,,	सन्दवार	,,	सरू	९६	सहदेवी	१००
सफेद सेमर	८५	संगजराहत	९२	सरसों	९७	सहजना	,,

विषय सूची (२)

(संस्कृत नाम)

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
कपिनामा	६१	राजगिरी	४	लाक्षा	३४	श्वेत बर्बूर	८४
कुंदर	४४	राजबला	,,	लिंगिनी	६०	श्वेत शाल्मलि	८५
कुणेजर	२५	रामफल	५	लोध्र	४१	संगखापुली	८०
कृष्णराजिका	२	रासना	१०	वचगन्धा	४६	संधिनी	९५
क्षुद्रकेतकी	८	रुदती	१४	वटदला	४७	समुद्रयूथिका	७८
क्षुद्रशण	७२	रुद्राक्ष	१३	वनमल्लिका	,,	सर्जिका	८१
क्षुद्रलोनिका	३९	रूक्षपत्रा	१७	वनेशीम्पगा	,,	सनपर्णी	८३
गुच्छकरंज	४८	रूमकुन्दरु	,,	वृद्धदारुक	९०	समुद्रफल	८७
गुन्द्र	९२	रेणुका	१९	शंख	५७	समुद्रफेन	९१
झण्डू	३६	रेवट चीनी	१८	शंखकुसुम	५६	सरपंखा	९३
तूत	५५	रोहिणी	२०	शंखजीरक	९२	सर्वजया	,,
दग्धारुहा	५	रोहिष	२१	शंखपुष्पी	५१	सर्पाक्षी	९५
दुग्धपाषाण	५९	रौप्यमाक्षिक	१६	शण	८३	सर्षप	९७
निया	९०	लंगली	२२	शतावरी	५३	सहदेवी	९९
नेपालनिम्ब	८५	लज्जालू	,,	शालपर्णी	५८	सातला	५९
पट्टिकालोध्र	४२	लज्जालूका	२३	शिंशपा	६८	स्वर्णमुखी	८६
भूमिजम्बू	८	लवंग	४५	शिवनिम्ब	६१	स्वर्णवल्ली	९८
मंल्ल	७३	लशुन	२६	शिलाजतु	६२	स्वर्णक्षीर	९२
यवतिक्ता	७२	लक्ष्मणा	३१	शोभाञ्जन	१००		
राजिका	१	लघुश्लेष्मान्तक	३२	श्लेष्मान्तक	३३		

विषय सूची (३)

(बंगाली नाम)

नाम	पृष्ठ
अगिया घास	२१
अश्वल	७०
ईशलांगुली	२२
कपिया कुशी	३७
कुंजिया	४१
कुक्षिम	९९
कुण्डा	९०
गंधुन	३०
गन्धनाकुली	९५
गेंदा	३६
चालतागाछ	३२
झलाई	२३
तूत	५५
नानभन्तूर	२५
नेपालनीम	८५
पठियालोध	४२
बंगला रेवन्दचीनी	१८
बनओकरा	५६
बनरीठा	५९
बनजोई	७९
बनपलंग	१००
बनकलमी	३१
बिचतारक	९०
बीहोदरी	३३
रक्तपित्त	१०
राइसरिया	१२
राजशाक	४
रासना	१०
रुदंती	१४
रुद्राक्ष	१३
रेनुक	१९
रोहन	२०
रौप्यमाक्षिक	१६
लजक	२२
लटकन	२४
लटमहूरिया	२५
लतमी	”
लवनी	५
लवंग	४५
लशन	२६
लांगूलीलता	३६
लाल आलू	५०
लाठी	३४
लोध	४१
शंख	५७
शंखाहुली	५१
शतमूली	५३
शदावुटी	५५
शाल	७०
शालपानी	५८
शिओरा	१७
शिमुलक्षार	७३
शियाहकान्ता	६०
शिरगोला	५९
शिलाजतु	६२
शिलारस	६१
शिवलिंगनी	६०
शिशू	६८
श्वेतबोला	७२
श्वेतसाल	६९
श्वेतशिमूल	८५
श्वेत-हुली	७०
सदी मोड़ी	८२
सन	८३
सफेद बबूल	८४
समुद्रफेन	९१
सर	९२
सरफोंका	९३
सरिषा	९७
सर्वजय	९३
साल	९
सैजना	१००
सोनामुखी	८६
हिज्जल	८७

विषय सूची (४)

(मराठी नाम)

नाम	पृष्ठ
अस्सुल	४४
आमटीवेल	३१
इसेस	४४
ऊद	४३
एककली लसूण	३०
कांजल	८२
कांटेगवत	६९
काबली	२६
कालीमोहरी	२
खारोली	१७
गीतना	२५
गुंदीड़ा	३७
गोलकी भाजी	३९
चक्रमेंडा	४
चिल्लाश	२०
झरेर	२३
झेंड्ड	३६
ताग	८३
तूत	५५
देवबाबूल	८४
निवार	”
पठानी लोध	४२
पांढरी सांवर	८५
पीलीभंवरी	४६
बड़गूंद	३२
बरोली	७१
बनजाई	७९
बागटी	४८
बिखारी	४९
मालेबन्ध	९५
मुंगुसकान्दा	९५
मोराभोकर	३३
मोहरी	१
यवेत्री	७२
रताली	५०
राजगिरा	४
रानताग	७२
रानचिमनी	४
रामकापासी	४१
रामफल	५
रामेठा	”
रालवृक्ष	९
रासना	१०
रुखालू	१३

नाम	पृष्ठ
रुदन्ती	१४
रुद्राक्ष	१३
रेवाचीनी	१८
रोहिणी	२०
रोहिष	२१
रौप्यमाक्षी	१६
लजालू	२२
लवंग	४५
लसून	२६
लाख	३४
लोखण्डी	४०
लोध	४१
शंख	५७
शंखजीरें	९२
शंखोर	५६
शखावड़ी	५१
शरपुंखा	९३
शिरगोला	५९
शिलाजीत	६२
शिलारस	६१
शिवलिंगी	६०
शीकाकाई	५९
शेरसा	७०
शेन्दरी	२४
शेवगा	१००
संकासुरा	७२
सकलवेल	१०
सगेरी	८१
सज्जीखार	„
सतावर	५३
सदमण्डी	८२
सदाफूल	८१
समुद्रफल	८७
समुद्रफेण	९१
समुन्दरशोष	९०
सरमल	९९
सरसों	९७
सालवण	५८
साहोड़ी	९७
सिसुश्रा	६९
सीमल	७३
सीसम	६८
सोनामुखी	८६

विषय सूची (५)

(गुजराती नाम)

नाम	पृष्ठ
अकलवेर	९३
एकलियोलसण	३०
कणेफरो	२५
काली राई	२
कालू किरायतु	४
कोड़ियो लोभान	४३
खपाट	४
गाडरीयून	५६
गुम्मड़बेल	४६
चमेड़ियुं	९९
चिल्लर	२०
चीकाकाई	५९
चीपकणोवेलो	८३
जलेसर	७०
झरेर	२३
झीनी लूणी	३९
डाबसूलियूं	६९
तीवर	७९
दूधियोपाणो	५९
नकुलकन्द	९५
पठानी लोधर	४२
पलियो	१४
पीलो बावल	८४
बड़गाऊ भिण्डो	४१
बड़गूंदो	३२
बरधारो	९०
वेखरियो	५०
मीठी ऑंवल	८६
मुखमल	३६
राई	१
राजगरो	४
रातीभोयंशण	३८
रामफल	५
रामेठा	„
राल	९
रास्नो	१०
रुद्राक्ष	१३
रूंछाली वेलड़ी	१७
रूपामाखी	१६
रेवन्दचीनी	१८
रोशा घास	२१
रोसामणी	२२
रोहणी	२०
लवंग	४५
लसण	२६
लाख	३४
लोध्र	४१
शंख	५७
शंखजीरूं	९२
शंखावली	५१
शण	८३
शिलाजीत	६२
शिलारस	६१
शिवलिंगी	६०
शीशम	६९
शेतुर	५५
शेमल	७३
सगतरा	७२
सतावरी	५३
सपिस्तान	३३
समरा कोकड़ी	९८
समुन्दर फल	८७
समुद्रफीण	९१
सरगवो	१००
सरपंखो	९३
सरसब	९७
साकरिया रतालू	५०
साजीखार	८१
सालवन	५८
सिन्दूरी	२४
सीसम	६८
सेदर्बी	९९
हनुमानवेल	३१

विषय सूची (६)

(रोगानुक्रम से)

नोट—विशेष प्रभावशाली ओषधियों के आगे * ऐसे फूल लगा दिये गये हैं ।

नाम पृष्ठ

ज्वर
रामेठा* ५
रोहिणी २०
लटकन २४
लिबिडिबी ३७
लौंग ४५
वनशेम्पगा ४७
विखारी ४९
संखिया* ७३
संगकुप्पी (सन्निपात)*७९
सुहदेवी* ९९
सहजना १००

अतिसार
रामदतोन ५
रोहिणी २०
लटकन २४
लसोड़ा बड़ा ३३
लोखण्डी ४०
शंखाहुली ५१
सफेद सेमर ८५

अन्य उदररोग
रासना १०
शंख* ५७
शकसुनिया ७१
संखिया* ७३
सदमण्डी ८२
सरपंखा* ९३
सहजना* १००

चर्मरोग और रक्तरोग
राल ९
रासना १०
लंगली २२
लहसन* २६
लाख ३४
लाल मुरगा ३६
लुनिया छोदा ३९

नाम पृष्ठ
लूयूत ४०
लोभान* ४३
लोभान (कुन्दर) ४४
बचगन्धा ४६
बनमल्लिका ४७
बल्लीपान ४८
विखारी ४९
शिलारस* ६१
शीशम ६८
शेवाल (कण्ठमाला) ७०
संखिया* ७३
सन ८३
समुद्रफल (श्वेतकुष्ठ) ८७
समुद्रशोष ९०
सरपंखा* ९३
संधिनी* (जखम) ९५
सरसों (खुजली) ९७

पुरुष जननेन्द्रिय संबंधी रोग
लजालू २२
लटमहुरिया २५
लहसन* २६
लोभान (कुन्दर) ४४
वचगन्धा (नपुंसकता)४६
शतावरी*(नपुंसकता)५३
शिलारस (अण्डवृद्धि) ६१
शिलाजीत (प्रमेह)* ६२
शेवाल ७०
संखिया ७३
सदाफूल (प्रमेह) ८१
सफेद सेमर ८५

स्त्री रोग
लक्ष्मणा*(वन्ध्यात्व) ३१
लाख (रक्तप्रदर) ३४
लोध* ४१

नाम पृष्ठ
शिवलिंगी* ६०
सन (श्वेत प्रदर) ८३
समुद्रफल (बन्ध्यात्व) ८७
संगजराहत (प्रदर) ९२

बाल रोग
रेवन्दचीनी* १८
लफा (हूपिंगकफ) २६
लहसन (हूपिंगकफ) २६
समुद्रफल* ८७

खाँसी और दमा
रासना १०
रुद्रवन्ती १४
लहसन* २६
लसोड़ा ३२
लुकाट ३८
लोभान* ४३
लोभान (कुन्दर) ४४
लौंग ४५
शिलारस ६१
शिलाजीत ६२
शंखाहुली ५१
संखिया* ७३

बवासीर
लजालू २२
लाल मुरगा ३६
लिबिडिबी ३७
सरपंखा ९३

हैजा
राई १

मस्तिष्क सम्बन्धी रोग
राई (आधा शीशी) १
शंखाहूली* ५१
संखिनी ७२
सहजना १००

नाम पृ

वातव्याधियाँ
रासना* १०
रोहिणी २०
रासाघास २१
लहसन* २६
लोभान के फूल* ४३
लौंग ४५
विखारी ४९
शतावरी ५३
संगकुप्पी* ७९
सन्दवार ९१
सहजना १००

य
लहसन* २६
लोभान ४३

नेत्र रोग
लीलजहरी ३८
लोध* ४१
समुद्रफल* ८७
समुद्रफेन ९१

कर्ण रोग
राल ९
लहसन* २६
लालमुरगा ३६
लोध ४१
समुद्रफेन ९१

दन्त रोग
रायधनी १०
लौंग ४५

विषविकार
राई (बिच्छू का विष) १
रुद्रवन्ती १४
लसोड़ा बड़ा ३३
सगतरा* ७२
(पागलकुत्ता) ७२
सरपंखा ९३

INDEX (7)

(Latin Names)

Abutilon tomentosum 4
Acalypha hispida 46
Acacia rugata 58
Acacia leuco phloea 84
Allium sativum 26
Allium ascalonicum 30
Amaranthus paniculatus 4
Amoora cucullata 25
Andrographis echioides 4
Anona reticulata 5
Anodendron paniculatun 26
Andropogon contortus 69
Andropogon schoenanthus 21
Aloe americana 8
Aporosa lindleyana 50
Arsenicum album 73
Argyreia speciossa 90
Asparagus racemosus 53
Asbastos 58
Asphaltum punjabinum 62
Astragalus multiceps 98
Bassia malabarica 48
Barleria courtallica 50
Barringtonia acutangula 87
Barringtonia racemosa 90
Biophytum senvitivum 22
Bixa oiellana 24
Bidens pilosa 98
Boswellia floribunda 44
Brassica juncea 1
Brassica nigra 2
Brassica Campestris 97
Bryonia lacinosa 60
Caesalpinia sepiaria 20
Caesalpinia coriaria 37
Cassia pumila 99
Cassia elongata 86
Carbo ligni 25
Caryophyllus aromaticus 45
Canthium didynum 47
Carallia lucida 48
Canscora decussata 72
Caroxylon foetidum 81
Canna indica 93
Centurea behen 84
Cleome felina 92
Clerodendron inerme 79
Conuolvulus scammonia 71
Convolvulus glomeratus 17
Cordia myxa 32
Cordia vallichi 33
Cocus lacca 34
Codonopsis ovata 40
Crotolaria burhia 72
Crotoelaria juncea 83
Cressa cretica 14
Croton caudatus 25
Dalbergia sissoo 68
Dalbergia latifolia 69
Desmodium gangeticum 58
Delonix elata 72
Digera arvensis 25
Dolichandrone spathacea 49
Elaeocarpus janitrus 13
Elaeocarpus tuberculatas 14
Elaeagnus hortensis 60
Emilia sonchifolia 82
Eriodendron anfractuosum 85
Eriobotrys japaniea 38
Eugenia operculata 8
Eugenia hemispherica 50
Euphorbia rayleana 53
Enodia lunurankanda 47
Evolvulus alsinoides 51
Ferrum sulphuratum 16
Geranium wallichianum 38
Gnetum scandens 44
Heynea trijuga 37
Hydrolea zeylanica 22
Indigofera trita 50
Indigofera aspalathoides 61
Indigofera pulchella 71
Inula racemosa 12
Ipomoea sepiaria 31
Ipomoea pestigrides 36
Ipomoea batatas 50
Ipomoea obscura 46
Ixora nigricans 40
Jasminum rottleriauum 47
Lasiosiphon eriocephalus 5
Litchi chinensis 37
Lithospermum officinale 40
Liquidander orientalis 61
Lochnera pussilla 80
Lochnera rosea 81
Lonicera glauca 60
Lygodium flexuosum 48
Macaranga indica 5
Malva verticillat, 26
Mimosa pudica 22
Mimosa rubicaulis 60
Morus indica 55
Moringa oleifera 100
Mylitta lapidescens 40
Nauclea ovalifolia 70
Ophirahiza mungos 95
Pittosporum floribunda 49
Pistasia loutiscus 17
Piper auranticum 19
Polygonum plebejum 4
Porphra vulgaris 36
Polygala crotalarioides 38
Portulaca quadrifida 39
Populas alba 84
Pseudarthria viscida 83
Psychotria curviflora 50
Remusatia vivipera 13
Rhus parviflora 8
Rheum emodi 18
Rosmarinus officnalis 21
Rzhia stricta 91
Saccharum arundinaceum 92
Salsola kali 82
Sageraea laurifolia 81
Secomone emetica 55
Sarcocephalus cordatus 49
Schweinfurthi sphoerocarpa 85
Sepia officinalis 91
Silicate of magnesia 92
Shorea robusta 9
Smilax prolifera 5
Soymida febrifuga 20
Solenanthus sp. 40
Sophora mollis 71
Salvia officinalis 99
Sonchus arvensis 100
Strychnos bourdilloni 48
Styrax benzoin 43
Streblus asper 17
Symplocos rocemosa 41
Symplocos crataegoides 42
Tagetes erecta 36
Terminalia pyrifolia 37
Tephrosia purpurea 93
Turbinella rapa 57
Urena sinuata 41
Vallisneria spiralis 70
Vanda roxbrughii 10
Vitex glabrata 70
Ventilago calyculata 10
Veronia cinera 99
Wagatea spicata 48
Xanthium strumarium 56
Zeuxine starteumatica 70
Zizyphus trinervia 47

|| श्रीः ||

वनौषधि-चन्द्रोदय

(नवाँ भाग)

राई

नाम—संस्कृत—राजिका, राजी, आसुरी, तीक्ष्णगंधा। हिन्दी—राई। गुजराती—राई। मराठी—मोहरी। बंगाल—राइसरिशा। काश्मीर—असुर। तामील—काडुबू। फारसी—सरशफ। इङ्गलिश—Indian mustard। लेटिन—Brassica guncea, B integrifolia (ब्रेसिका जुंसिया और ब्रेसिका इंटेग्रीफोलिया)।

वर्णन—राई हिन्दुस्तान में सभी ओर मसाले के अन्दर डालने के काम में ली जाती है। इसको सभी कोई जानते हैं। इसका पौधा २ से लेकर ४ फीट तक ऊँचा होता है। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। इसके पत्तों का शाग बनाकर खाया जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से राई उष्ण, अत्यन्त तीक्ष्ण, चरपरी, कड़वी, कुछ रुक्ष, अग्निवर्द्धक तथा कण्डु, कुष्ठ, उदररोग और कृमिरोग को दूर करती है। राई के पत्तों का शाग चरपरा, गरम, बलकारक, स्वादिष्ट, पित्तकारक, कृमिनाशक, वात-नाशक और कण्ठ रोगको दूर करनेवाला होता है।

इसके बीज गरम, पसीना लानेवाले और पाचनशक्ति को सहायता देनेवाले होते हैं। ये शरीर के अन्दर होनेवाले रक्त-संचय की वजह से होनेवाले आक्षेप, स्नायु-सम्बन्धी, विकृति और संधिवात में बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। मस्तिष्क की सुषुम्ना नाड़ीकी अस्वस्थता में भी इनका उपयोग होता है।

राई के अन्दर एक प्रकार का तेल भी निकलता है। यह चमड़े की जलन और व्रणों के ऊपर लगाने के काम में आता है।

शरीर के ऊपर राई की क्रिया तिलपर्णी की क्रिया के समान होती है। यह छोटी मात्रा में दीपन, पाचन, उत्तेजक और पसीना लानेवाली होती है। बड़ी मात्रा में यह वामक होती है। इसको बड़ी मात्रा में लेने से तुरन्त वमन होता है मगर यह वमन घातक नहीं होता।

बाह्योपचार में राई का लेप चिकित्साशास्त्र के अन्दर एक बहुत मशहूर वस्तु है। जिस स्थान पर यह लेप किया जाता है वहाँ की त्वचा लाल हो जाती है और त्वचा के अन्दर की रक्तवाहिनियाँ उत्तेजित हो जाती हैं जिससे उस भाग में शून्यता पैदा हो जाती है। इस लेप को अधिक समय तक रखने से उस स्थान पर छाला उत्पन्न हो जाता है। जिस स्थान पर यह लेप लगाया जाता है उस स्थान के साथ शरीर के जिन-जिन हिस्सों का सम्बन्ध होता है उन हिस्सों की रक्ताभिसरण क्रिया को मज्जातंतुओं के द्वारा उत्तेजना मिलती है। जिससे उनकी विनिमय क्रिया सुधरती है। राई को गरम पानी में डालकर उस पानी से स्नान करने से त्वचा की रक्तवाहिनियों का विकास होता है। जिससे रक्त का दबाव कम पड़ता है। रक्त का दबाव कम होने से सूजन की कमी होती है। इसीसे राई का लेप शोथनाशक माना जाता है।

जिन रोगों के साथ सूजन रहती है तथा जिसमें शरीर के अन्दर अन्तर्दाह रहता है ऐसे रोगों में राई का लेप किया जाता है। फुफ्फुस की सूजन, फुफ्फुस कोष की सूजन, यकृतकोष की सूजन, श्वासनलिका की सूजन, बीजकोषों की सूजन, मस्तिष्क कोषों की सूजन इत्यादि रोगों में राई का लेप बहुत लाभ पहुँचाता है। ज्वर के अन्दर भ्रम को दूर करने के लिये ललाट के ऊपर राई का लेप किया जाता है। हृदय के कमजोर होने पर हाथ-पाँव और हृदय के ऊपर राई का लेप किया जाता है।

हैजे में जब रोगी को बहुत उल्टी, दस्त होते हों और उसके शरीर में बाँबटे चलते हों, अङ्गों में शिथिलता पैदा हो रही हो ऐसी स्थिति में राई का लेप करने से बहुत लाभ होता है। हैजे के अतिरिक्त भी जो दस्त, उल्टी होते हैं वे अगर किसी दूसरी औषधि से न रुकते हों तो राई का लेप करने से रुक जाते हैं।

राई के लेप की विधि—राई को ठण्डे पानी के साथ सिल पर महीन पीसकर उसको साफ मलमल के कपड़े के ऊपर पतला पतला लेप कर देना चाहिये। फिर उस कपड़े को जिधर राई लगी हुई हो उसकी दूसरी तरफ से जिस जगह लेप लगाना हो उस जगह रख देना चाहिये। राई के लेप को चमड़े की तरफ रखने से उसका प्रभाव यद्यपि जल्दी होता है पर उससे चमड़े पर फुन्सियाँ पड़ने का डर रहता है। इसलिये जब तक विशेष जरूरत न पड़े तब तक इसका लेप कपड़े के ऊपर के बाजू ही रखना चाहिये।

कर्नल चोपरा के मतानुसार राई का पुल्टिस भारतवर्ष की चिकित्सा पद्धति के अन्दर बहुत उपयोग में लिया जाता है। राई को ठण्डे पानी में पीसकर तैयार किया हुआ लेप अनेक प्रकार की सूजन सम्बन्धी, स्नायु सम्बन्धी तथा कालिक उदरशूल और दुस्साध्य वमन को रोकने के लिये एक आश्चर्यजनक वस्तु है। इस प्लास्टर को किसी भी हालत में १० मिनट से अधिक चमड़े के साथ सम्बन्धित नहीं रखना चाहिये। विषविकार सम्बन्धी केसों में राई के चूर्ण को १ से २ चम्मच तक की मात्रा में पानी के साथ देने से जोरदार वमन होकर जहर का प्रभाव कम हो जाता है।

उपयोग—**बहिरापन**—राई के तेल को कान में डालने से कान का बहिरापन और फोड़े फुन्सी मिटते हैं।

गठिया—गठिया की सूजन पर राई का लेप बहुत उपकारी होता है।

रुधिर का जमाव—अरंडी के पत्तों पर राई का तेल चुपड़कर उनको गरम करके बाँधने से शरीर में जमा हुआ रुधिर बिखर जाता है।

मिरगी—राई को पीस कर सुघाने से मिरगी की मूर्छा दूर हो जाती है।

जुकाम—राई को शहद में मिलाकर सूंघने से जुकाम मिटता है।

बगल का फोड़ा—राई और काँच को पानी में खूब बारीक पीसकर उसकी लुग्दी बगल के फोड़े पर बाँधने से वह फोड़ा जल्दी फूट जाता है।

राई काली

नाम—**संस्कृत**—कृष्णराजिका, कृष्णिका, कृमिका, ज्वलंती, क्षुधाभिजनन, क्षुज्जनिका इत्यादि। **हिन्दी**—काली राई, मकराई, बनारसी राई, तरमिरा, तीरा। **बंगाल**—राइसरिश। **गुजराती**—काली राई। **कोकण**—सनसोनव। **फारसी**—सरशाफ। **अरबी**—खरदल। **तामील**—कदुगु। **तेलगू**—अवालू। **उर्दू**—राई। **इंग्लिश**—Black Mustard। **लेटिन**—Brassica Nigra (ब्रेसिका नायग्रा।

वर्णन—यह राई की ही एक काली जाति होती है। इसका पौधा, पत्ते, फूल वगैरह सब राई के पौधे के ही समान होते हैं। सिर्फ इसके बीज काल रंग के होते हैं जब कि दूसरी राई के बीज लाल रंग के होते हैं। यह काली राई लाल राई की अपेक्षा गुण धर्म में बहुत उग्र होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से काली राई के पत्ते गरम, तीक्ष्ण और सुस्वादु होते हैं। शरीर को शक्ति देते हैं। पित्त को बढ़ाते हैं। कृमियों को नष्ट करते हैं और गले के शिकायतों में लाभ पहुँचाते हैं। इसके बीज गरम, तीक्ष्ण और कड़वे होते हैं। ये वात को नष्ट करते हैं। बढ़ी हुई तिल्ली को दुरुस्त करते हैं। ज्वर को दूर करते हैं। शरीर में दाह उत्पन्न करते हैं। कफ से पैदा हुए अर्बुद में लाभ पहुँचाते हैं। कृमियों को नष्ट करते हैं। भूख बढ़ाते हैं। चर्म रोग और खुजली में लाभ पहुँचाते हैं और परोपजीवी कीटाणुओं को नष्ट करते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से राई के बीज सफेद, काले और लाल तीन तरह के होते हैं। ये स्वाद में मृदु विरेचक, भूख बढ़ाने वाले, अग्निवर्द्धक, शुद्ध डकार लानेवाले और खाँसी को दूर करने वाले होते हैं। ये शरीर की सूजन को दूर करते हैं तथा तिल्ली की सूजन, विस्फोटक की सूजन और संधियों की सूजन

में लाभ पहुँचाते हैं। नाक, कान, आँख व दाँतों के रोग में ये उपयोगी होते हैं। बाहर रहने वाले परोपजीवी कीटाणुओं को ये नष्ट करते हैं और इनका धुआँ मक्खी और मच्छरों को नष्ट करता है।

इसके बीजोंका पुल्टिस एक बहुत उपयोगी और तेज चर्मदाहक एवं फफोला उत्पन्न करनेवाली वस्तु है। ज्वर, सूजन वाले रोग, आक्षेप, स्नायुशूल, संधियों की सूजन, गठिया और भीतरी रक्तसंचय में इसका पुल्टिस एक बहुत उत्तम और हाजिर जवाब वस्तु है। राई के आटे को पानी में मिलाकर देने से यह एक बहुत सुरक्षित वमन-कारक वस्तु का काम करता है। इसके बीज अगर बहुत थोड़ी मात्रा में लिये जायँ तो वे एक पाचक चटनी का काम करते हैं अगर ये सारे ही निगल जांय तो मृदु विरेक द्रव्य का काम करते हैं। अजीर्ण रोग और आंतों की जड़ता सम्बन्धी दूसरी शिकायतों में भी इनको देने से लाभ होता है।

इन बीजों का विशुद्ध और ताजा तेल उत्तेजक और हलका चर्मदाहक होता है। यह गले के हलके व्रणों पर लगाने से बहुत लाभ पहुँचाता है। अन्तरंग रक्तसंचय और प्राचीन मांसपेशियों की अकड़न में यह एक बहुत लाभदायक वस्तु है।

महर्षि चरक के मतानुसार राई के बीजों को दूसरी औषधियों के साथ सर्पविष को दूर करने के उपचार में लेते हैं मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह वस्तु सर्प विष के उपचार में निरुपयोगी है।

राई के बीजों में सिनापिन नामक एक प्रकार का उपक्षार पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इनमें एल्ब्युमिन्स, मायमोजिन, सिनिग्रीन, गोंद और कुछ रंगने वाले द्रव्य भी पाये जाते हैं।

उपयोग—पित्तशोथ-पित्त की सूजन पर राई का पुल्टिस बांधने से बहुत जल्दी लाभ होता है। परन्तु चमड़ी लाल हो जाने के पश्चात् इस पुल्टिस को उतार लेना चाहिये नहीं तो वहां पर कष्टप्रद छाले हो जाते हैं।

गठिया—राई का प्लास्टर करने से गठिया की वेदना फौरन मिट जाती है। इसके तेल में कपूर मिलाकर उसकी मालिश करने से गठिया में बहुत लाभ होता है।

वमन—राई के आटे को पानी में घोलकर पिलाने से बहुत शीघ्र और निरुपद्रव वमन होता है और राई के प्लास्टर को पेट पर और कलेजे पर लगाने से भयंकर और हठीले वमन भी बन्द हो जाते हैं।

मंदाग्नि—राई की फक्की देने से कब्जियत की वजह से पैदा हुई मन्दाग्नि मिट जाती है।

आलस्य—इसके ताजे और शुद्ध तेल का मालिश करने से शरीर का आलस्य मिट जाता है।

गले की सूजन—गले की हलकी सूजन पर इसके तेल की मालिश करने से लाभ होता है।

रुधिर का जमाव—शरीर के भीतर अगर कहीं रुधिर का जमाव हो जाय तो वहां इसके तेल का मालिश करके सेंक कर देने से वह जमाव बिखर जाता है।

पट्ठों की सूजन—राई के तेल की मालिश करने से पट्ठों की पुरानी सूजन उतर जाता है।

जुकाम—राई के तेल का पैरों और पैरों के तलवों पर तथा नाक के ऊपर मालिश करने से मस्तक की सरदी और जुकाम एक रात में मिट जाते हैं। नाक पर इस तेल की मालिश करने से नाक का बहना तुरन्त बन्द हो जाता है।

बच्चों की खाँसी—बच्चों की छाती पर राई के तेल की मालिश करने से उनकी खाँसी मिट जाती है।

बिच्छू का विष—कपास के पत्ते और राई को पीसकर लेप करने से बिच्छू का विष उतर जाता है।

मृतगर्भ—राई और हीग के चूर्ण की फक्की देने से मरा हुआ बालक गर्भ से बाहर निकल जाता है।

वातशूल—राई और सहजने की छाल को गाय के मट्ठे के साथ पीसकर लेप करने से वातशूल मिटता है।

सर्प का विष—सांप के काटे हुये को बड़ी मात्रा में राई खिलाने से वमन होकर विष हलका पड़ जाता है।

आधा शीशी—राई और कबूतर की बीट को पीस कर लेप करने से आधा शीशी मिटती है।

दाद—राई को सिरके के साथ पीस कर लेप करने से दाद मिटता है।

कांखबलाई—राई को गरम जल के साथ पीसकर लेप करने से बगल के भीतर होनेवाली विद्रधि मिट जाती है।

बदगाँठ—राई का लेप करने से बदगाँठ बिखर जाती है।

सिर की गंज—आधी कच्ची और आधी सेकी हुई राई को पीसकर कड़वे तेल में मिलाकर लगाने से सिर की गंज मिटती है।

राजगिरा

नाम—संस्कृत—राजाद्रि, राजगिरी, राजशाकिनी। हिन्दी—राजगिरा। गुजराती—राजगरो। मराठी—राजगिरा। बंगाली—राजशाक, चुको, बथु। बम्बई—करोल भाजी। काश्मीर—बस्तनाफ़ुरोज। फारसी—बुस्तनाफ़ुरोज। लेटिन—Amaranthus Paniculatus (एमेरेन्थस पेनिक्यूलेटस)।

यह एकवर्षजीवी वनस्पति होती है। इसका पौधा खूबसूरत और करीब ५ फीट ऊँचा होता है। इसके पत्ते मांसल, अण्डाकार और बरछी के आकार के होते हैं। इनकी लंबाई २ से लगाकर ६ इंच तक और चौड़ाई १ से ३ इंच तक होता है। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं। इसकी फली लम्बी और गोलाकार रहती है। इसके बीज छोटे २ गोल २ राई से कुछ बड़े होते हैं। यह व्रतियों के उपवास के दिनों में फलाहार के काम में आती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मतानुसार इसके पत्ते और बीज कफकारक, भारी, सारक, निद्रा लाने वाले, शीतल, कब्जियत करने वाले, रुचिकारक और पित्तनाशक होते हैं।

यह वनस्पति रक्त को शुद्ध करने वाली होती है। बवासीर में इसके सेवन से लाभ होता है। पथरी में इसको मूत्रल वस्तु की तरह देते हैं। गंडमाला के फोड़ों में इसके बीजों की रोटी और पत्तों का शाक करके देते हैं। पेशाब की जलन में भी इसके पत्तों का स्वरस देने से लाभ होता है।

राजबला

नाम—संस्कृत—राजबला। मराठी—चकभेंडा। गुजराती—खपाट। लेटिन—Abutilon Tomentosum (एब्यूटिलन टोमेंटोसम)।

वर्णन—यह अतिबला की ही एक उपजाति होती है। इसका सारा पौधा रेशम के समान मुलायम रुओं से भरा रहता है। इसके फूल नारंगी रङ्ग के रहते हैं। इसका सारा पौधा अतिबला के समान होता है मगर उससे कुछ बड़ा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इस वनस्पति के सब गुण-धर्म अतिबला के गुणधर्म के समान ही होते हैं। इसके बीज स्नेहन, मूत्रल, पौष्टिक और कुछ कामोद्दीपक होते हैं।

रानचिमना

नाम—मराठी—रानचिमनी।, दक्षिण—रानचिमनी। गुजराती—कालं किरायतूं। लेटिन—Andrographis Echioides (एण्ड्रोग्राफिस इचिओइडस)।

वर्णन—यह कालमेघ के वर्ग का एक वनस्पति होती है। इसका पौधा ६ से लेकर १८ इंच तक ऊँचा होता है। यह वनस्पति भारतवर्ष के खुश्क प्रान्तों में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—रीड मतानुसार यह वनस्पति बुखार के अन्दर उपयोगी समझी जाती है।

रानीफूल

नाम—संथाल—रानीफूल। लेटिन—Polygonum Plebejum (पोलीगोनम प्लेबीजम्)।

वर्णन—यह एक फैली हुई शाखाओं वाली वनस्पति होती है। इसके पत्ते ४ से लेकर १७ मिलिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल गुलाबी रङ्ग के होते हैं। इसका फल कड़े छिलके वाला, चिकना और चमकदार होता है। यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से लेकर भूटान तक ७ हजार फीट की ऊँचाई तक होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—क्वार्टर के मतानुसार लखीमपुर में इसके पौधे को सुखाकर उसका चूर्ण करके निमोनिया के रोगियों को औषधि के बतौर खिलाने के काम में लेते हैं।

कम्पबल के मतानुसार संथाल लोग इसकी जड़ों का आंतों की शिकायतों के अन्दर काम में लेते हैं।

रामफल

नाम—संस्कृत—रामफलम्, अग्रिमा, कृष्णबीजम्, लवनी, मृदुफल, रक्तत्वच, वसन्त। हिन्दी—रामफल लवनी, नोना। बंबई—रामफल। बंगाल—लवनी, नाना। मराठी—रामफल। गुजराती—रामफल। संथाल—गोम। तामील—रामचिता। तेलगू—रामफलम्। इंग्लिश—Bullock's Heart। लेटिन—Annona reticulata (एनोना रेटिक्यूलेटा)।

वर्णन—यह सीताफल के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसका छोटा वृक्ष होता है। इसके पत्ते ४ से लेकर ७ इञ्च तक लम्बे और १ से २ इञ्च तक चौड़े होते हैं। इसके फल पीले रङ्ग के और पकने पर कुछ लाल हो जाते हैं। इसके बीज चिकने और काले होते हैं। इस वनस्पति की खेती भारतवर्ष में कई स्थानों पर की जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका फल संकोचक, मधुर और रक्तविकार को दूर करनेवाला होता है। यह पित्त और प्यास को दूर करता है और वात तथा कफ को बढ़ाने वाला होता है।

इसकी छाल एक प्रभावशाली संकोचक पदार्थ होती है। मलाया के लोग इसका पौष्टिक द्रव्य की तरह उपयोग करते हैं। मध्य और दक्षिण अमेरिका के लोग इसके फल को कृमिनाशक औषधि की तरह उपयोग में लेते हैं।

इसके फल को खिलाने से पेट के कृमि मर जाते हैं और आमातिसार अच्छा हो जाता है। इसके कच्चे और सूखे फल में से काला रङ्ग निकलता है और इसके ताजे पत्तों में से एक प्रकार की नील निकलती है।

रामलो

नाम—कुमाऊँ—रामलो। नेपाल—मालटा। तामील—बुदुहमारा। मलयालम—उथाहमारा। लेटिन—Macaranga indica मेकेरेङ्गा इण्डिका)।

वर्णन—यह बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसके वृक्ष पूर्वी हिमालय, खासिया पहाड़ और दक्षिण पेनिनशुला में पैदा होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसका गोंद फोड़े-फुन्सियों के ऊपर लगाने के काम में आता है।

रामदतोन

नाम—युक्तप्रान्त—रामदतोन। लेटिन—Smilax prolifera (स्माइलेक्स प्रोलिफेरा)।

वर्णन—यह एक पराश्रयी लता होती है जो पश्चिमी हिमालय, कुमाऊँ, नेपाल, सिलहट, बंगाल, बिहार, बरमा और दक्षिणी पेनिनशुला में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—छोटा नागपुर की मुंडाजाति के लोग इस वनस्पति की जड़ को पीसकर उसको पुरानी खाँड या जमे हुए गाय के दूध में मिलाकर पानी के साथ खूनी पेचिश और पेशाब की ऐसी शिकायतें जिनमें पेशाब काला और लाल होने लगता है उनको दूर करने के लिये पिलाते हैं। इसके साथ ही वे रात में महुए के सूखे फलों को पानी में गलाकर रखते हैं। सबेरे उठते ही वे इस पानी को पीते हैं और उसके बाद इस औषधि का सेवन करते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसके सेवन से खूनी पेचिश और मूत्र सम्बन्धी शिकायतों में बहुत लाभ होता है।

रामेठा

नाम—संस्कृत—दग्धा, दग्धारुहा। हिन्दी—रामेठा। मराठी—रामेठा। गुजराती—रामेठा। लेटिन—Lasiosiphon eriocephalus (लेसियोसिफोन इरियोसीफेलस)।

वर्णन—इस वनस्पति के वृक्ष दक्षिणी हिन्दुस्तान में महाबलेश्वर, माथेरान, लानोली तथा बड़े सेकी टेकरियों में और गुफाओं में पैदा होते हैं। इसका वृक्ष २ फुट से ६ फुट तक ऊँचा होता है। इसके हलके लाल रंग की अथवा बैंगनी रंग की सीधी-सीधी बहुत सी डालियाँ निकलती हैं। इसके पत्ते अखंडित किनारोंवाले, दो से तीन इंच तक लंबे और बरछी के आकार के होते हैं। इसके फूल शाखाओं के सिरों पर आते हैं। हर एक फूल में ४ से लेकर ५ तक पंखुड़ियाँ होती हैं। इसके फल की नली बहुत संकीर्ण होती हैं और उसके ऊपर सफेद अथवा पीले रुओं की पीछी लगी हुई रहती है। इसके फल बहुत छोटे होते हैं और ये फूल की नली के हिस्से में लगते हैं। हर एक फल में एक २ बीज होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से रामेठा तीक्ष्ण, तूरा, गर्म, कफ और वात को नष्ट करनेवाला, पित्त को कुपित करनेवाला और जठराग्नि को दीपन करनेवाला होता है।

इस वनस्पति के सम्बन्ध में वैद्य समाज के अन्दर कई प्रकार की किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। विशेषकर गुजरात के वैद्यों में इस वनस्पति को लेकर बहुत ऊहापोह हुआ है। मगर अभी तक इस वनस्पति के निश्चित गुणों के सम्बन्ध में कोई भी विश्वसनीय बात मालूम नहीं हो सकी है और आज भी यह वनस्पति वैद्य समाज के सम्मुख उतनी ही रहस्यपूर्ण बनी हुई है। अतः इस वनस्पति के सम्बन्ध में जो भी विवेचन यहाँ किया जाता है उसको असंदिग्ध नहीं मानना चाहिये।

'जंगलनी जड़ी बूटी' के लेखक इस वनस्पति का विवेचन करते हुए लिखते हैं कि—

'इस वनस्पति के पत्ते और इसकी छाल भयंकर जलन पैदा करनेवाली और जहरीली होती है। अगर यह भूल से चबाने में आ जाय तो मुँह में अत्यन्त वेदना उत्पन्न करती है। इतना ही नहीं बल्कि अगर यह कुछ अधिक मात्रा में चबाने में आजाय तो मुँह से लार बहने लगती है। दाँत के मसूड़े सूज जाते हैं। दाँत ढीले हो जाते हैं अथवा गिर भी जाते हैं। इसकी लकड़ी अथवा इसकी राख भी इसी प्रकार दाँतों को नष्ट करती है और इसीलिये अगर कोई डाढ़ पोली हो जाय और उसमें बार बार वेदना होती हो तो उस डाढ़ के अन्दर इस वनस्पति का चूर्ण भरने से वह डाढ़ जड़मूल से उखड़ जाती है और रोगी को शान्ति मिल जाती है। फिर भी इस कार्य के लिये इसका उपयोग करना बहुत खतरनाक हैं क्योंकि अगर डाढ़ में भरते समय दूसरे दाँतों पर भी यह वनस्पति लग गई तो वे दाँत भी कमजोर हो जाते हैं।'

निमोनिया रोग और रामेठा—आगे चलकर उपर्युक्त ग्रन्थ के लेखक लिखते हैं कि :—

'इस संसार में निमोनिया के रोग को दूर करने के लिये इस वनस्पति के समान श्रेष्ठ दूसरी कोई औषधि देखने में नहीं आई। निमोनिया के रोग में इसकी ६ रत्ती छाल का रस अथवा उसका काढ़ा चावल के मांड में मिलाकर दाँतों पर न लगे इस तरीके से पिलाना चाहिये। इससे पहिले उल्टी के द्वारा और फिर दस्त के द्वारा छाती में जमा हुआ सब कफ निकल जाता है। यह एक अत्यन्त उग्र औषधि है। इसलिये इसका बार-बार उपयोग करने की आवश्यकता नहीं होती। इसको सिर्फ एक ही बार देने से और यदि रोग बहुत भयंकर हो तो अधिक से अधिक दो बार देने पर सारा कफ निकल जाता है। भयंकर केसों में भी इसको दो बार से अधिक देने की जरूरत नहीं पड़ती।'

'बहुत से केसों में तो इसको एक ही बार देने से निमोनिया रोग बिदा हो जाता है। परन्तु जो रोग भयानक हो और एक बारसे सारा कफ बाहर न निकले तो तीन दिन के बाद इसकी दूसरी खुराक देनी चाहिये। जिससे कफ का रहा-सहा अंश भी निकल जाता है और निमोनिया से पूर्ण छुटकारा हो जाता है।'

'यह औषधि बहुत तीव्र होती है। इसलिये छोटे बालकों और कोमल प्रकृति के मनुष्यों पर इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। अगर किया जाय तो कुशल वैद्य के द्वारा बहुत छोटी मात्रा में इसका उपयोग करना चाहिये।'

'इसकी सूखी छाल की अपेक्षा हरी छाल विशेष गुणदायक होती है। छ-सात रत्ती ताजी छाल को कूट कर उसका रस निकाल कर चावल के माँड में मिलाकर देना उत्तम होता है। मगर यदि ताजी छाल न मिले तो इसकी सखी छाल को छ-सात रत्ती की मात्रा में लेकर उसका काढ़ा बनाकर उस काढ़े को चावल के माँड में मिलाकर निमोनिया के रोगी को पिलाना चाहिये। जिससे पहिले रोगी को वमन होगा। उस वमन से बहुत सा कफ निकलेगा। उसके पश्चात् रोगी के दस्त में भी बहुत सा कफ निकलेगा। इस औषधि से शरीर में पित्त का प्रभाव बहुत बढ़ जाता है। इसलिये वमनविरेचन के पश्चात् रोगी को शांति मिलने के लिये मोती की भस्म, सितोपलादि चूर्ण, अभ्रक भस्म, इत्यादि पौष्टिक, हृदयोत्तेजक, बलवर्द्धक और पित्तशामक औषधियों का सेवन रोगी को कुछ दिनों तक कराना चाहिये।

'इसकी ताजी छाल का रस अगर आँखों में लग जाय तो अन्धा होने का भय रहता है और यदि चमड़ी पर लग जाय तो दाह और सूजन हो जाती है। इसलिये इस वनस्पति का व्यवहार बहुत सावधानी से करना चाहिये। इतने पर भी इसका कहीं अपव्यवहार हो जाय तो इसके दर्प को नष्ट करने के लिये मक्खन और घी का प्रयोग करना चाहिये।'

‘भूमंडल पर अस्तित्व में आये हुए किसी भी चिकित्सा शास्त्र में अभी तक ऐसी औषधि की खोज नहीं हुई जिसकी सिर्फ एक या दो मात्रा लेने से ही भयानक निमोनिया का रोग नष्ट हो जाय। परन्तु परमात्मा की कृपा से अभी ही यह औषधि हाथ लगी और इसका प्रयोग करने पर यह अक्सीर मालूम हुई है।’

ऊपर हमने रामेठा नामक वनस्पति के सम्बन्ध में ‘जंगलनी जड़ी बूटी’ नामक ग्रन्थ का उद्धरण दिया है। इसी प्रकार सन् १९१५ के वैद्य कल्पतरु में भी इस वनस्पति के सम्बन्ध में कुछ चर्चा हुई थी। बंबई की वैद्य सभा के समक्ष जामनगर के प्रोफेसर हीरजी माधवजी ने भी इस वनस्पति का विवेचन करते हुए बतलाया था कि इस वनस्पति की शाखाएँ झीपटे के समान होती हैं। अपामार्ग की डाली में जैसी गठानें होती हैं वैसी गठानें इसकी शाखाओं में भी होती हैं। यह वनस्पति दक्षिण प्रान्त में बहुत अधिक होती है। इस वनस्पति का दातोन करने से दाँत की सारी बत्तीसी ढीली होकर गिर जाती है। अगर किसी को कोई दाँत गिराना हो तो उस दाँत के पास उतने ही भाग में इस वनस्पति की डाली को सावधानी के साथ घिसने से वह दाँत बिना किसी प्रकार की तकलीफ के बाहर निकल आता है। इसी प्रकार अगर इस वनस्पति को जलाकर इसकी राख भी दाँत पर लगाई जाय तो भी उससे दाँत निकल आते हैं।

इसके पश्चात् सुप्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री जयकृष्ण इन्द्रजी ने भी वैद्य कल्पतरु में इस वनस्पति के सम्बन्ध में कुछ चर्चा की थी। उन्होंने लिखा था कि:—

‘वनस्पति शास्त्र के अनुसार रामेठा थाईमिलेसी (Thymelaceae) नामक वर्ग की वनस्पति है। इस वनस्पति का लेटिन नाम लेसियोसीफोन इरियोसिफेलस है। इस वर्ग में करीब ३६० भिन्न-भिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ पैदा होती हैं। इनमें से करीब २० जातियाँ भारतवर्ष में भी पैदा होती हैं।’

‘सिद्ध मंत्र निघंटु’ में इस वनस्पति का संस्कृत नाम दग्धा, दग्धारुहा, दग्धिका, रोमशा, कर्कशदला, इत्यादि लिखे हैं।’

‘यह वनस्पति दाँतों को गिराती है या नहीं इस विषय का प्रत्यक्ष अनुभव हमको नहीं है। पर कांगरा गझेटियर में लिखा है कि इसकी लकड़ी और इसकी राख दाँतों का नाश कर देती है। इसी भय से यहाँ के देशी लोग इसका उपयोग करने में बहुत डरते हैं।

सर जे० पैक्स्टन कहते हैं कि इस वर्ग की वनस्पतियों की छाल इतनी दाहक (Cawstic) होती है कि अगर इसको दाँतों के नीचे चाबा जाये तो बहुत वेदना उत्पन्न होती है।

डॉक्टर बेंटली का कथन है कि इस वर्ग की वनस्पतियाँ उनकी छाल की मजबूती और दाहक गुण के लिये प्रसिद्ध हैं। वनस्पतियों का यह वर्ग जहरीला होता है। इस वर्ग की वनस्पति डेफनी मस्केरियून ब्रिटिश फारमाकोपिया में सम्मत मानी गयी है। मस्केरियून की छाल छाला उठाने के लिए और दाँतों के रोग में लार बहाने के लिये चबाने के काम में ली जाती है। इसके अतिरिक्त एक उत्तेजक द्रव्य की तरह पसीना लाने और मूत्र बढ़ाने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है। इसके ये सब गुण इसमें पाई जानेवाली एक दाहक राल और एक दाहक उड़नशील तेल के ऊपर निर्भर है।

डाक्टर खोरी का कथन है कि रामेठा की छाल का उपयोग बहुत सावधानी के साथ करना चाहिये क्योंकि अगर इसकी छाल को अधिक चबाया जाय तो दाँत की जड़ें ढीली पड़कर सूज जाती हैं और दाँत गिरने का धोखा रहता है।

उपरोक्त सारे विवेचन से यह मालम होता है कि रामेठा और रामेठा के वर्ग की तमाम वनस्पतियां दाहक और जहरीली होती हैं। इसका उपयोग करने में बहुत सावधानी की जरूरत होती है।

उपरोक्त अवतरणों के होते हुए भी इस वनस्पति के सम्बन्ध में अभी तक सन्देह बना ही हुआ है। लेफ्टनेंट कर्नल कीर्तिकर और मेजर वसु इंडियन ‘मेडिसिनल प्लांट्स’ में लिखते हैं कि यह वनस्पति एक शक्तिशाली चमदाहक पदार्थ है। लेकिन मनुष्य शरीर पर इसके क्या प्रभाव होते हैं यह बात बिलकुल अनिश्चित है। इसकी छाल मछलियों के लिये विष का काम करती है। दक्षिण में इसके पत्ते घाव, भीतरी चोट और सूजन के ऊपर लगाने के काम में आते हैं।

और भी कुछ लोगों ने इस वनस्पति के सम्बन्ध में जानने की चेष्टा की है मगर वे किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँचे हैं। इसलिये इस वनस्पति का प्रयोग करने वालों को बहुत सावधानी से काम लेना चाहिये।

रायतुङ्ग

नाम—हिन्दी—रायतुङ्ग, तत्रक । मारवाड़—डांसरिया । काश्मीर—समाकदाना । पंजाब—तुङ्गा, टुंगला । गढ़वाल—तुंगा, तुंगला । लेटिन—Rhus parviflora (हृस परवीफ्लोरा) ।

वर्णन—यह वनस्पति उत्तर हिमालय में सिंध से नेपाल तक पैदा होती है । इसके अतिरिक्त यह मध्य प्रदेश में पचमढ़ी पहाड़ियों पर, गोदावरी जिलों में रंपा पहाड़ियों पर और मारवाड़ में भी पैदा होती है । इसके फल उड़द के दानों के समान छोटे और कोकम के रंग के होते हैं । हर एक फल में एक २ बीज होता है जो खट्टा और तूरा होता है । इस झाड़के पत्ते चमड़े को रंगने के काम में आते हैं ।

गुण, दोष और प्रभाव—रायतुंग हृदय को बल देने वाला, दीपन ग्राही, रक्तपित्तशामक और रक्तसंग्राहक होता है । यह एक बहुत मृदु स्वभाववाली वनस्पति होती है । इसकी क्रिया इमली के समान होती है ।

दक्षिण में जिस प्रकार कोकम का सार उपयोग में लिया जाता है । उसी प्रकार उत्तर में रायतुंग का पन्ना काम में लिया जाता है । गर्भवती स्त्रियोंको लगनेवाले दस्त, निर्बल मनुष्यों के रक्तयुक्त आंव, पित्त प्रकोप की वजह से पैदा हुए वमन, रक्तपित्त, नेत्र रोग और ज्वर के अन्दर गर्मी और जलन को कम करने के लिए इसका बहुत उपयोग किया जाता है ।

रायजामन

नाम—संस्कृत—भ्रमरेष्टा, भृंगवल्लभा, भूमिजम्बू, जलजम्बुक, काष्टजम्बू, पिकभक्षा, ह्रस्वा, सूक्ष्मपत्रा । देहरादून—पियामान, थूथी । हिंदी—राय जामन, दुगदुगिया, पियामान । गढ़वाल—पियामान । लेटिन—Eugenia operculata (यूगेनिया आपरक्यूलेटा) ।

वर्णन—यह एक छोटा अथवा मध्यम कद का वृक्ष होता है । इसकी छाल पीलापन लिये हुए भूरे रंग की खरदरी और ऊबड़खाबड़ होती है । इसकी डालियां चिकनी और हरी होती हैं । इसके पत्ते ४॥ से लेकर १० इञ्च तक लम्बे और ३ से लेकर ४। इञ्च तक चौड़े होते हैं । इसके फूल सफेद, बिना डंठल के और तीन पत्तियोंवाले होते हैं । इसके फल जामुन की तरह ही होते हैं । यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है ।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मत से इसकी छाल कड़वी, कसैली, भारी, पौष्टिक, आँतों के लिये संकोचक, प्यास बुझानेवाली और कामोद्दीपक होती है । यह रक्तातिसार को दूर करनेवाली, रक्तरोग नाशक, पित्तनाशक, व्रणपूरक और खाँसी में लाभ पहुँचाने वाली होती है ।

छोटे नागपुर में इसका फल संधिवात को दूर करने के लिये खाया जाता है और इसकी जड़ को उबाल कर उसका शरबत तैयार करके जोड़ों पर लगाया जाता है । इसके पत्ते सेंक करने के काम में आते हैं ।

टुंकिंग में इसके पत्तों को चाय के पत्तों के प्रतिनिधि रूप में काम में लाते हैं और इसके फूल युक्लप्टस के पत्तों की जगह काम में लिये जाते हैं ।

रामबांस

नाम—संस्कृत—क्षुद्रकेतकी । हिन्दी—रामबाँस । गुजराती—केतकी । लेटिन–Aloe americana (एलो अमेरिकाना) ।

वर्णन—रामबांस के पौधे बाग और खेतों की बाड़ों पर अधिकता से पैदा होते हैं । इसके पत्ते घीगुवार के पत्तों के समान होते हैं । परन्तु घीगुवार के पत्तों से ये पतले होते हैं । इसके फूल लाल और सफेद रंग के गुच्छेदार होते हैं ।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से रामबाँस, चरपरा, स्वादिष्ट, कड़वा, हलका तथा विष और कफ को नष्ट करने वाला होता है । इसका फूल हलका, चरपरा, कड़वा, कान्तिजनक, गरम, वात—कफनाशक, केशों की दुर्गन्ध को दूर करनेवाला और तापनाशक होता है, इसके फूल का जीरा खुजली को नष्ट करनेवाला होता है और इसका फल किञ्चित् उष्ण, स्वादिष्ट तथा वात, प्रमेह और कफ को नष्ट करनेवाला होता है ।

रालवृक्ष

नाम—संस्कृत—राल, सालनिर्यास, सर्जरस, सर्ज, देवधूप, शाल, शालवेष्ट, शालरस, इत्यादि। हिन्दी—राल, शाल। बंगाल—धूना, साल, सालवा। बम्बई—साल। गुजराती—राल। मराठी—राल, सर्जारा। पंजाब—साल, सरेल। मध्यप्रान्त-साल, रिंजल। कुमाऊ-साल। नेपाल—सकवा, अवध—कोरोह। उर्दू—राल। फारसी—लालेमोहरी। तामील—शालम्। तैलगू—साखुवा। इंग्लिश—Common Sal। लेटिन—Shorea robusta (शोरिया रोबुस्टा)।

वर्णन—यह बड़ा वृक्ष उत्तरी भारतवर्ष में हिमालय के अन्दर देहरादून, पालघाट, मोरंग वगैरह पहाड़ों में पैदा होता है। इसके पत्ते १० से लेकर ३० सेन्टीमीटर तक लम्बे और ५ से लेकर १८ सेन्टीमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल कुछ पीले रङ्ग के होते हैं। इस वृक्षको देहरादून में शाल कहते हैं और इसके गोंद को यू० पी० में राल धूप, बंगाल में डम्भर और दक्षिण में राल कहते हैं। राल नवीन हालत में रंगरहित और पारदर्शक होती है और पुरानी होने पर कुछ भूरे रंग की हो जाती है। इसमें किसी तरह की गन्ध और स्वाद नहीं होता। इसको धूप की तरह अग्नि पर जलाने से बहुत धुँआ और सुगन्ध पैदा होती है।

इस वृक्ष के बीजों में से एक प्रकार का गाढ़ा तेल प्राप्त किया जाता है। यह तेल इन बीजों को पानी में औटाने से पानी के ऊपर तैरने लगता है। इस तेल को लोग घी में मिलाकर बेचते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसकी छाल और इसके पत्ते स्निग्ध, शीतल, कड़वे, कसेले, कृमिनाशक, स्तम्भक, व्रण और जखम को अच्छे करने वाले, सुजाक, खुजली और कुष्ठ में लाभ पहुँचाने वाले, रक्तशोधक, पसीने को रोकनेवाले, कांतिवर्द्धक, खाँसी में लाभ पहुंचानेवाले और कान, मस्तक तथा योनिपथ के रोगों में लाभ पहुँचानेवाले होते हैं।

इसका फल मीठा शीतल, कामोद्दीपक, संकोचक, पौष्टिक, वातकारक और पित्तनिस्सारक होता है। यह प्यास, दाह, क्षयजनित व्रण और रक्त के विकारों में उपयोगी होता है।

इसका गोंद शीतल, पचने में भारी, कडुवा, कसेला, आँतों का संकोचन करनेवाला, रक्तशोधक, ज्वर और पसीने को दूर करनेवाला और रक्तातिसार में लाभदायक होता है। यह सब प्रकार के प्रदर में भी लाभ पहुँचाता है। व्रण, जखम, अग्निदग्ध, हड्डी का टूटना तथा खुजली इत्यादि बाह्य-व्याधियों में भी यह उपयोगी होता है।

यूनानी मत—यूनानी मतसे इसका गोंद खराब गन्ध और खराब स्वाद वाला होता है। यह मस्तिष्क के लिये एक पौष्टिक वस्तु है। जलोदर, तिल्ली की वृद्धि, व्रण, जखम, अत्यधिक रजस्राव, मेदवृद्धि तथा दन्तशूल में भी यह लाभदायक होता है। इसका अंजन आँखों में करने से आखों की जलन और आँखों के दाने अच्छे हो जाते हैं। इसके बीजों का तेल चर्म रोग, खुजली और सब प्रकार के जखमों में बहुत लाभ पहुंचाता है। इसका गोंद एक उत्तम संकोचक और शोधक पदार्थ होता है। यह अतिसार, पाचनशक्ति की कमजोरी, सुजाक और कामशक्ति को उत्तेजित करने के लिये दिया जाता है। यह प्लास्टर और बफारा देने के लिये भी उपयोग में लिया जाता है।

डाक्टर देसाई के मतानुसार राल में उत्तम व्रणशोधक, व्रणरोपक, रक्तसंग्राहक और संकोचक धर्म रहते हैं। उत्तम राल बिलायती पाइन रेजिन के बदले काम आ सकती है। राल के मलहम से विना किसी प्रकार की तकलीफ हुए फोड़े फुन्सी पककर फट जाते हैं और अच्छे हो जाते हैं। इस मलहम को जहाँ लगाया जाता है वहाँ की रक्ताभिसरण क्रिया बढ़ती है और वह हिस्सा कृमियों से रहित हो जाता है। प्रसूता के कमरे में सुगन्धित द्रव्यों के साथ राल की धूप देने से वहाँ की हवा शुद्ध रहती है।

अजीर्ण और सुजाक के अन्दर भी राल को देने का रिवाज है। बच्चों के रक्तमिश्रित अतिसार में राल को शक्कर के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। हर एक स्थान की वायु को शुद्ध करने के लिए राल बहुत उपयोगी वस्तु है।

मात्रा—इसकी मात्रा १ से लेकर २ रत्ती तक होती है। छोटे बच्चों को यह जीरा और मक्खन के साथ देना चाहिये।

उपयोग—राल का मलहम—राल ४ भाग, मोम ४ भाग, तिल का तेल ४ भाग और घी १ भाग। इन सब चीजों को मिलाकर गरम करके घोटने से राल का मलहम तैयार हो जाता है। यह मलहम उत्तम व्रणशोधक और व्रणरोपक होता है।

गठिया—रालवृक्ष के बीजों के तेल का मालिश करने से पुरानी गठिया में लाभ होता है।

जुकाम—राल और बूरे को जलाकर उसका धुआँ लेने से सर्दी गर्मी का जुकाम मिटता है।

दन्तरोग—राल का मंजन करने से दाँतों से खून का बहना बन्द हो जाता है।

कर्णरोग—इस वृक्ष की छाल के चूर्ण में कपास के फल का रस और शहद मिलाकर कान में डालने से कर्णस्राव मिटता है।

रायधनी

नाम—हिन्दी—रायधनी। बंगाल—रक्तपित्त। बम्बई—कनियेल, पापरी। अलमोड़ा—कालीबेल। देहरादून—कालीबेल। कुमाऊ—कालीबेल, रक्तपित्त। मराठी—सकलयेल। संथाल—बोंगासरजोम। लेटिन—Ventilago calyculata (व्हेंटिलेगो केलिक्यूलेटा)।

वर्णन—यह एक बड़ी और हमेशा हरी रहने वाली पराश्रयी लता होती है। इसके पत्ते २ से लेकर ४ इञ्च तक लम्बे और १ से लेकर २॥ इञ्च तक चौड़े होते हैं। इसके फूल पीलापन लिये हुए हरे होते हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष के सभी गरम हिस्सों में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—छोटा नागपुर में इसकी छाल का रस और इसके कोमल अंकुर मलेरिया ज्वर की वजह से होने वाले शरीर के दर्द को दूर करने के लिये लगाये जाते हैं। इस वनस्पतिकी लता या तन्तु से एक अँगूठी बनाई जाती है जो दन्तशूल को रोकने के लिये काम में ली जाती है।

रासना

नाम—संस्कृत—नाकुली, सुरसा, रासना, सर्पगन्धा, सुगन्धा, गन्धनाकुली, एलापर्णी, रसा, रसाढ्या, रसना, इत्यादि। हिन्दी—रासना, रायसन। मराठी—रासना। गुजराती—रास्नो। बंगाल—रासना, नाई। लेटिन—Vanda roxburghii (वांदा राक्स बर्घी)।

वर्णन—रासना के विषय में वैद्य समाज के अन्दर काफी मतभेद है। भिन्न-भिन्न प्रन्तों में भिन्न-भिन्न वैद्य, भिन्न-भिन्न वनस्पतियों को रासना मानते हैं। सुप्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री भागीरथ स्वामी कचूर वर्ग में आनेवाली एलापर्णी को रासना मानते हैं। मगर स्वर्गीय पंडित हरिप्रपन्नजी का कथन है कि एलापर्णी का आकार निर्णीत की हुई रासना से विरुद्ध है। क्योंकि रासना शब्द रसना शब्द का पर्याय है इसलिये जीभ के समान पत्तोंवाली रासना होनी चाहिये। इसलिये एलापर्णी किसी प्रकार रासना नहीं मानी जा सकती है।

दूसरी रासना पंजाब के स्वामी हरिशरणानन्दजी ने काबुली किसमिस (Viscum Album) को बतलाया है। यह पिस्ते वगैरह वृक्षों के ऊपर होनेवाला एक जाति का बांदा होता है। इस वनस्पति को वे पूर्ण विश्वास के साथ रासना मानते हैं। मगर स्वर्गीय हरिप्रपन्नजी का कथन है कि चरकसंहिता में अगुर्वादि तेल में रासना के साथ ही वृक्षरुहा के स्थान में रुहा शब्द आया हुआ है। इसलिये चरक बांदा जाति की किसी भी वनस्पति को रासना नहीं मानते हैं। इसलिए स्वामी हरिशरणानन्द जी की यह रासना भी किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकती।

लेफ्टनेंट कर्नल कीर्तिकर और मेजर बसुने तथा शालिग्राम निघंटुके कर्ताने एवं और २ लेखकों ने भी वांदा राक्सबर्घी को रासना माना है। यह भी एक जाति का वांदा ही होता है। शालिग्राम निघंटु के कर्ता लिखते हैं कि रासना वङ्गदेश के प्राचीन आम्रादि वृक्षों पर उत्पन्न होती है। इसकी जड़ वृक्ष की छाल पर जमी हुई रहती। इसका फल पीला बैंगनी और छींटेदार होता है। लेकिन पंजाब में एक छोटी जाति के पेड़ को रासना मानते हैं। इसकी फलियों में मोठ के समान बीज होते हैं।

लेकिन औषधिसंग्रह के रचयिता डाक्टर देसाई का कथन है कि असली रासना (Inula Racemosa) इन्युला रेसीमोसा नामक वनस्पति ही होती है। 'इसका क्षुप हवा और पानी के फेरफार से तीन चार जाति का

होता है। यह वनस्पति ईरान, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान में पैदा होती है। इसीकी एक उपजाति जिसको इन्यूला क्वाडिफिडा (Inula Quaduifida) और हिन्दी में फटमेल कहते हैं। वह हिन्दुस्तानमें पंजाब और गङ्गा-नदीके उत्तरी किनारेवाले प्रदेशों में होती है। इसकी तीसरी और चौथी जाति काश्मीर और पश्चिमी हिमालय में होती है। हिन्दुस्तान के जिन-जिन प्रान्तों में कूट पैदा होती है, उन-उन प्रान्तों में यह रासना भी होती है। इसका यह उत्पत्ति-सान्निध्य और इसके गुण धर्म की समानता से रासना और कूट में मिलावट भी की जाती है।

डाक्टर देसाई की बतलाई हुई इस रासना का क्षुप करीब ३ फुट ऊँचा होता है। यह सारा पौधा रस से भरा हुआ रहता है। इसकी जड़ करीब ६ इञ्च लम्बी और १ से २ इञ्च तक मोटी होती है। इसकी ताजी जड़ें मांसल और रसभरी हुई होती हैं। इसकी जड़ सुगन्धित होती है और इसका स्वाद कड़वा, तीखा और सुगन्धित होता है।

भारतवर्ष में पैदा होने वाली रासना के क्षुप करीब ६-७ फीट ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते बेलची के पत्तों के समान मगर फटी हुई किनारों के होते हैं। इसके पत्ते शाखाओं से परिवेष्टित रहते हैं। इसकी जड़ वर्षायु और मोटी होती है। इन जड़ों को चबाने से वच चबाने के समान स्वाद आता है और लार छूटती है। इन जड़ों को कूटने पर इनका चूर्ण कुछ पीलापन लिये हुए सफेद रग का होता है।

इस वृक्ष की जड़ें ईरान, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी और अमेरिका में उपयोग में ली जाती हैं। अमेरिका, फ्रांस और जर्मनी के फरमाकोपिया में यह वनस्पति सर्व सम्मत मानी गई है। आयुर्वेदिक चिकित्सा में रासना मूल का जो उल्लेख किया गया है वह इसी वनस्पति की जड़ें हैं ऐसा कई वनस्पति शास्त्रियों का मत है। यह मत सच्चा भी मालूम होता है। क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों में रासना के जो गुण धर्म बतलाये गये हैं वे इस वनस्पति के गुण धर्मों से मिलते हुए हैं।

ऊपर हमने उन कई मतभेदों का उल्लेख किया है जो रासना के सम्बन्ध में वैद्य समाज के अन्दर प्रचलित हैं। इन सब मतों में यद्यपि हमको डाक्टर देसाई के द्वारा प्रतिपादित मत ही विशेष उपयुक्त मालूम हुआ है लेकिन चूंकि अधिकांश ग्रन्थकार बाँदा राक्सवर्घी को ही रासना मानकर चले हैं इसलिये हम भी इस स्थान पर उसी रासना के गुणधर्मों का उल्लेख करके पश्चात् ही डाक्टर देसाई द्वारा प्रतिपादित रासना के गुणधर्मों का उल्लेख करेंगे।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से रासना की जड़ कड़वी, गरम, भारी, आम को पचानेवाली, कफ और वात को नष्ट करनेवाली तथा सूजन, रक्तवात, वातशूल, उदररोग, खाँसी, ज्वर, विषविकार, ८० प्रकार के वात रोग और हिचकी को दूर करती है।

रासना कड़वी, भारी, गरम, पाचक, आम को पचानेवाली तथा वात, रक्तविकार, विषविकार, श्वास, खाँसी, विषमज्वर, सूजन, हिचकी, आमवात, कफ, शूल, ज्वर, कंप, उदर रोग और सब प्रकार के वात रोगों को नष्ट करती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ कड़वी, मृदुविरेचक, यकृत और मस्तिक को शक्ति देनेवाली तथा ब्रोंकाइटीज, बवासीर, कटिवात, दन्तशूल और सिर के फोड़ों को दूर करती है। यह सूजन को मिटाती है और टूटी हुई हड्डी को जोड़ती है।

रासना की जड़ सुगन्धित और कड़वी होती है और गठिया तथा संधिवात में लाभ पहुँचाती है तथा शरीर की अव्यवस्था को दूर करती है। यह वनस्पति कई प्रकार के ऐसे तेलों में से जो वात रोगों को नष्ट करने के लिये बनाये जाते हैं उनमें डाली जाती है। इसके संयोग से बने हुए तेल संधिवात और ज्ञानतन्तुओं से असम्बन्धित रोगों में मालिश करने के काम में लिये जाते हैं।

कैंपबेल के मतानुसार छोटा नागपुर में इसके पत्तों को कुचल कर उनका लेप ज्वर वाले रोगी के शरीर पर किया जाता है और इसका रस कर्ण प्रदाह को दूर करने के लिये कान में टपकाया जाता है।

कोमान का कथन है कि देशी चिकित्सक इस वनस्पति को स्नायु रोग और संधिवात में उपयोगी मानते हैं। हमने अर्द्धांग वायु (Hemiplegia) के एक केस में इस वनस्पति की जड़ का काढ़ा बनाकर दिया मगर इससे कोई विशेष संतोषजनक लाभ नहीं पहुँचा।

आयुर्वेदिक चिकित्सा में रासना वात रोगों के लिये एक मशहूर औषधि समझी जाती है। इससे बनाये हुए रासनादि क्काथ का आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध योगराज गूगल के साथ चोली दामन का साथ है। ये दोनों वस्तुएँ मनुष्य शरीर के अन्दर पैदा होनेवाले वात रोग और वृद्धावस्था जनित अव्यवस्था को मिटाने में बहुत सफल समझी जाती हैं और बहुत प्राचीन काल से इन रोगों पर इन औषधियों का उपयोग होता आया है। फिर भी यह वनस्पति जैसा चाहिये वैसा संतोषजनक काम अगर नहीं करती है तो इसका एक मात्र कारण इसके सम्बन्ध की जानकारी का अभाव है। जब हमको अभी यहां निश्चित पता नहीं है कि सच्ची रासना क्या वस्तु है, तब तक हम उसके गुण धर्म के सन्बन्ध में अधिकार युक्त गारंटी कैसे कर सकते हैं।

बनावटें—रासनादि क्काथ-रासना, नागरमोथा, अड़ूसा, गिलोय, गोखरू, बच, देवदारु, हरड़, कचूर, सोंठ, पीपर, मिर्च, धनियाँ, बड़ी कटेरी, शतावरी, गगेरन की जड़, एरंड की जड़, सोया, चव्य, पुनर्नवा, उभारींगणी, इन सब चीजों को समान भाग लेकर कूट लेना चाहिये। यह सुप्रसिद्ध रासनादि क्काथ है। इसको एक तोले की मात्रा में पाव भर पानी में औटाकर छटाँक भर पानी रहने पर छानकर योगराज गूगल के साथ सेवन करने से मनुष्य के शरीर में होनेवाले सब प्रकार के वात रोग नष्ट होते हैं।

रासनादि क्काथ (२)—रासना, गिलोय, देवदारु, सूंठ और एरण्डी की जड़ इन सब चीजों का क्वाथ दिन में दो बार लेने से आक्षेप, सप्तधातु में समाया हुआ वात, आमवात और सर्वाङ्गीण वात नष्ट होते हैं।

अण्डवृद्धि पर रासनादि क्काथ (३)—रासना, गिलोय, गगेरन की जड़, मुलेठी, गोखरू और अरण्डी की जड़ का क्वाथ, कुछ अरण्डी का तेल मिलाकर पिलाने से अण्डवृद्धि में लाभ होता है।

रासना (२)

नाम—संस्कृत—रासना। हिन्दी—रायसन, राशन। काश्मीर—पोष्कर। फारसी—पिलगुश, रासन। अरबी—रासन, झझाबिलेशामी। उर्दू—रासन। लाटिन—Inula racemosa (इन्युला रेसीमोसा)।

वर्णन—इस वनस्पति का पूरा वर्णन हम ऊपर रासना के प्रकरण में दे चुके हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ तीक्ष्ण, चरपरी, गरम, पौष्टिक, अग्निवर्द्धक और शान्तिदायक होती है। किसी अचानक घटना से मनुष्य के दिल पर अगर कोई सदमा पहुँच जाय तो उसे यह दूर करती है। हृदय, तिल्ली, यकृत और जोड़ों के दर्द को यह दूर करती है। आधाशीशी, फोड़-फुन्सी, कर्णशूल और खाँसी में यह उपयोगी होती है। इसके बीज कड़वे, कामोद्दीपक, बालों की जड़ों को मजबूत करने वाले और गिरते हुए बालों को रोकने वाले होते हैं।

रासना के अन्दर कुछ उड़नशील तेल, कुछ दाहजनक राल, एक कटु तत्व, मोम और रासनिक कपूर नामक पदार्थ रहते हैं। इसमें पाया जानेवाला रासनिक कपूर गंध रहित, स्वाद रहित, बारीक और सफेद रंग का होता है। यह शराब में नहीं घुलता, ठण्डे पानी में बहुत थोड़ा घुलता है और गरम पानी में बहुत अधिक घुलता है।

रासना कड़वी, तीक्ष्ण, उष्ण, पाचक, वातनाशक, उत्तेजक, कफनाशक, श्वासनाशक, खाँसी को दूर करनेवाली, ज्वरघ्न, चर्मरोग नाशक, वातको दूर करनेवाली और विषनाशक होती है। मस्तिष्क, आमाशय, मूत्रपिंड और गर्भाशय के ऊपर इसकी उत्तेजक क्रिया होती है। इसमें जन्तुनाशक और पाचनाशक धर्म भी रहता है। ये सब धर्म आजकल रासना के नाम से जो औषधि उपयोग में ली जाती है उसकी जड़ों में नहीं प्रत्युत जिस रासना का वर्णन यहाँ किया जा रहा है उस रासना की जड़ों में पाया जाता है। निघण्टुओं के अन्दर पत्र रासना करके रासना का जो भेद बतलाया गया है उसमें भी ये धर्म नहीं होते। हाँ, कूट नामक वनस्पति में जो कि उसकी प्रतिनिधि है उसमें ये सब धर्म होते हैं।

रासना में पाचक धर्म होता है। इसलिए यह ऐसे अजीर्ण रोगों में जिसमें आमदोष का प्राधान्य होता है दी जाती है। इसमें वातनाशक धर्म भी होता है। इसलिए उदरशूल और पेट के आफरे में भी इसका उपयोग होता है। सब प्रकार के वात रोग फिर चाहे वे सर्दी की वजह हुए हों अथवा शरीर के अन्दर आमदोष के संचित होने से ए हों, रासना के सेवन से दूर हो जाते हैं। वात रोगों के अन्दर योगराजगूगल के साथ इसका सेवन करने से बहुत लाभ होता है। इसके सेवन से सूजन उतरती है। वेदना की कमी होती है और ज्वर में लाभ पहुँचता है। सरदी की वजह से होने वाले सब तरह के रोगों में इसका प्रयोग करने से लाभ पहुँचता है।

फुफ्फुस के अन्दर होने वाले सब प्रकार के रोगों में रासना का व्यवहार उपयोगी होता है। दमा, श्वासनलिका की पुरानी सूजन, क्षय, फुफ्फुस के पर्दे की सूजन जिससे कि छाती में चभके चलते हैं, इत्यादि रोगों में रासना का व्यवहार लाभदायक होता है। रासना के सेवन से श्वास इन्द्रिय की सूजन कम होती है। फुफ्फुस के अन्दर रहनेवाले जन्तुओं का नाश होता है और ज्वर उतरता है। कफ, वात तथा श्वास और खाँसी में रासना उत्तम कार्य करती है। गले की सूजन में रासना के काढ़े से कुल्ले किये जाते हैं। कुत्ता खाँसी के अन्दर इसकी फांट में शहद मिलाकर दी जाती है।

चर्म रोगों में भी रासना का व्यवहार होता है। खुजली वाले चर्म रोगों में रासना का क्वाथ शरीर पर लगाया जाता है। इसकी जड़ गोमूत्र में पीसकर खुजली और दाह के ऊपर लगाई जाती है। क्षय रोगों के जन्तुओं की वजह से एक विशेष प्रकार के व्रण शरीर पर होते हैं। रासना को देने से इनकी शुद्धि और रोपण होता है।

अनार्तव रोग में भी रासना गुणकारी होती है। इससे उदरशूल कम होकर मासिक धर्म साफ होने लगता है।

रुखालु

नाम—मराठी—रुखालु। लेटिन—Remusatia vivipara (रेमूसेटिया विविपेरा) Arum Viviparum (अरुम विविपेरम)।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय, खासिया पहाड़, छोटा नागपुर, बम्बई और मैसूर में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—रीड के मतानुसार इसकी जड़ को हल्दी के साथ मिलाकर उसका लेप बनाकर सूखी खुजली पर लगाने के काम में लिया जाता है और इसकी जड़ का रस गोमूत्र के साथ मिला कर विषनाशक द्रव्य की तरह उपयोग में लिया जाता है।

रुद्राक्ष

नाम—संस्कृत—रुद्राक्ष, शिवाक्ष, भूतनाशक, पावन, नीलकंठाक्ष, हटाक्ष, शिवप्रिय, तृणमेरु, अमर, पुष्पचामर। हिन्दी—रुद्राक्ष, रुद्रक,। बंगाल—रुद्राक्य, रुद्राक्ष। मराठी—रुद्राक्ष। गुजराती—रुद्राक्ष। तामील—अक्कम। तेलगू—रुद्रचल्लू। लेटिन—Elaeocarpus Janitrus (एलेओकारपस जेनिट्रस)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है जो हिमालय की तलहटी में नेपाल और भूटान की तरफ विशेष रूप से पैदा होता है। इसके फलों की माला बनाकर तमाम शिवभक्त और साधु सन्त पहनते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से रुद्राक्ष खट्टा, गरम, वायु को नष्ट करनेवाला, कफनिस्सारक, सिर दर्द को नष्ट करने वाला और भूतबाधा तथा ग्रहबाधा को दूर करने वाला होता है।

जिस प्रकार हैजे की मौसम में तांबे के पत्ते की टिकड़ियाँ शरीर पर धारण करने से हैजा होने का डर नहीं रहता है और जिस प्रकार प्लेग की मौसम में पपीते (Strychnoa ignati) की माला धारण करने से प्लेग होने का भय कम हो जाता है उसी प्रकार चेचक, बोदरी और अड़बड़ा की मौसिम में रुद्राक्ष की माला धारण करने से इन बीमारियों का आक्रमण होने का डर नहीं रहता है इसलिये एक ऐसी माला जो तांबे के तार में पपीते के बीज और रुद्राक्ष के फलों से बनाई हुई हो प्रतिदिन गले में पहनी जाय तो हैजा, शीतला, बोदरी इत्यादि रोगों के हमले का भय बहुत कम हो जाता है।

योगी लोगों का कथन है कि रुद्राक्ष की माला धारण करने से मनुष्य शरीर का प्राणतत्त्व अथवा विद्युत् शक्ति नियमित होती है और इसलिये इस माला को धारण करने से कई प्रकार के शारीरिक तथा उन्माद, अपस्मार, भूतबाधा, प्रेतबाधा, ग्रहबाधा इत्यादि मानसिक रोग भी रुक जाते हैं।

इसके सिवाय इस वनस्पति के महत्वपूर्ण कफनिस्सारक गुण भी पाया जाता है। इस गुण की वजह से बालकों की छाती में अगर कफ बहुत चिपक गया हो और वह किसी औषधि से नहीं खुलता हो और उसकी वजह से आक्षेप, धनुर्वात इत्यादि के लक्षण पैदा हों और बालक के जीवन की आशा छोड़ दी गई हो तो ऐसे समय में रुद्राक्ष के दो-तीन दाने लेकर उनको बारीक पीसकर शहद के साथ मिलाकर पाँच-पाँच मिनिट के अन्तर से थोड़ी २ मात्रा में माता के दूध के साथ देने से वमन के द्वारा सब चिकना कफ निकलकर एक घण्टे भर में बालक को आराम हो जाता है।

रुद्राक्ष (२)

नाम—हिन्दी—रुद्रक । कनाड़ी—रुद्राच्च । तामील—पगुम्बाल ।लेटिन—Elaeocarpus tuberculatus (इलेओकारपस ट्यूबरक्यूलेटस) Monocera tuberculata (मोनोसेरा ट्यूबरक्यूलेटा) ।

वर्णन—यह रुद्राच्च की एक दूसरी जाति होती है । इसका वृच्च बहुत बड़ा होता है । यह वृच्च पश्चिमी प्राय द्वीप और मलाया में पैदा होता है ।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी छाल का काढ़ा पित्तविकार को दूर करने के काम में लिया जाता है और इसके फल संधिवात, मोती ज्वर (Typhoid fever) और मृगी रोग को दूर करने के लिये उपयोग में लिये जाते हैं।

रुद्रवंती

नाम—संस्कृत—रुदंती, रुदंतिका, रोमांचिका, अमृतस्रवा, महामांसी, ऋणपत्री, रुद्रवंती, इत्यादि । हिंदी—रुद्रवंती, लोणाँबूटी । गुजराती—पलियो । मराठी—रदंती, चवाला, खारड़ी, रानहरभरा । बंगाल—रुदंती । बंबई—खारड़ी । उर्दू—रुदंती । लेटिन—Cressa cretica (क्रेसा क्रेटिका) ।

वर्णन—आयुर्वेदिक चिकित्सा शास्त्र में रुद्रवंती एक दिव्य, दुष्प्राप्य और अचिन्त्य शक्तिशाली महौषधि मानी जाती है । यह भाग्यवान लोगों को पर्वत की गुफाओं में दुर्गम स्थानों में, धर्मस्थानों में कभी कभी आकस्मिक रूप में मिल जाती है । यह औषधि देहसिद्धि और धातुसिद्धि अथवा कीमियागिरी (लोहे से सोना बनाना) दोनों के काम में उपयोगी समझी जाती है ।

लेकिन आजकल जिस वनस्पति को रुद्रवंती मानकर वैद्य लोग उसका व्यवहार करते हैं वह वनस्पति तो इस देश के अनेक गर्म भागों में, समुद्र के किनारों पर तथा सिंधु, गुजरात, महाराष्ट्र के अन्दर काफी तायदाद में मिलती है । इस रुद्रवंती का पौधा चने के पौधे के समान ६ इञ्च से लेकर १ फुट तक ऊँचा होता है । कहीं कहीं यह जमीन पर छत्ते की तरह फैला हुआ रहता है । इसकी जड़ पृथ्वी के अन्दर १ फुट तक गहरी जाती है । यह कुछ ललाई लिये हुए पीले रंग की होती है । इसके पत्ते चने के पत्तों के समान होते हैं । लेकिन चने के पत्तों पर बारीक कांगरे रहते हैं और रुद्रवन्ती के पत्ते बिना कांगरे वाले होते हैं । इसके पत्ते और डालियों पर बहुत महीन और रेशम के समान मुलायम सफेद रंग का रुआँ होता है । जिससे यह सारा पौधा चमकता हुआ मालूम होता है । यह वनस्पति विशेष करके खारवाली जमीनों में अधिक पैदा होती है । इस वनस्पति के पत्ते और डालियाँ हमेशा ओस की बिन्दुओं में भरे हुये रहते हैं । इस पर से ओस के बिन्दु धीरे २ जमीन पर टपकते हैं । जिससे इस पौधे के नीचेवाली जमीन हमेशा गीली और ठण्डी रहती है और उसके नीचे चीटियाँ वास करती हैं । इस वनस्पति की डालियों के सिरों पर फूलों के गुच्छे आते हैं । ये फूल, लाल, काले, पीले और सफेद रंग के होते हैं । इसके फल गोलाई लिये हुये छोटे छोटे होते हैं और इनमें बारीक दानों के समान दो दो चार-चार बीज होते हैं ।

प्राचीन शास्त्रकारों ने रुद्रवन्ती को पहिचानने के लिये कुछ विशेष चिह्न बतला रखे हैं । पहिला निशान इसके पत्ते चने के पत्तों के समान होते हैं । दूसरा निशान ओस के बिन्दुओं की तरह पानी की बूँदे इसके पौधे में से टपकती हैं । तीसरा निशाने अगर इसकी जड़ के पास सफेद कौड़ी को रख दी जाय तो वह पीली पड़ जाती है और चौथा निशान जो सर्वसम्मत नहीं है वह यह कि इसका पौधा रात के वक्त में चमकता है ।

आजकल रुद्रवन्ती के नाम से जो वनस्पति प्रसिद्ध है उसमें भी उपरोक्त चार निशानों में से प्रारम्भ के तीन निशान मिलते हैं । फिर भी यही रुद्रवन्ती वास्तविक रुद्रवन्ती है यह मानना कठिन है । क्योंकि शास्त्रकारो के मतानुसार रुद्रवन्ती सर्वसुलभ वस्तु नहीं होती है । वह बड़ी कठिनाई से भाग्यवान् लोगों को मिलती है और यह रुद्रवन्ती अत्यन्त सुलभता से चाहे जितनी मिलती है ।

कुछ संत महात्माओं का कथन है कि वास्तविक रुद्रवन्ती यू, पी. के फतेहपुर जिले में हँसवा नामक ग्राम में एक तालाब के निकट मिलती है । यह रात्रि के समय में चमकती है । इसलिये रात को जाकर जिस जगह चमक

पड़े वहाँ निशान कर देना चाहिये और फिर दिन को उसी जगह पर जाकर तालाब की पानी सूखने की वजह से जमीन में जो दरार पड़ी हुई रहती है उस दरार के अन्दर से रुद्रवन्ती को पहिचान कर निकाल लेना चाहिये। जमीन की दरार के बाहर समतलभूमि पर भी रुद्रवन्ती के समान ही पौधा दिखाई देता है मगर उसको ग्रहण नहीं करना चाहिये। क्योंकि वह नर जाति की रुद्रवन्ती होती है और उसमें इतना गुण नहीं होता। इसके असली गुण मादा जाति की रुद्रवन्ती में ही रहते हैं।

धातुसिद्धि अथवा कीमियागिरी की रसायन क्रिया में सफेद फूलवाली और काले फूलवाली रुद्रवन्ती विशेष उपयोगी समझी जाती है।

फतेहपुर जिले के खागा स्टेशन के समीप मझले नामक ग्राम के तालाब के ऊपर सरदी के दिनों में असली रुद्रवन्वीं मिला करती थी मगर कई साधु सन्तों ने उसके पौधों को उखाड़ २ कर उसकी पैदायश को नष्ट कर दिया है। फिर भी सर्दी के दिनों में कोई कोई साधु आकर अगर कोई पौधा वहाँ दृष्टि में पड़ता है तो उसको खोद कर ले जाता है।

सुप्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री पं० भागीरथ स्वामी लिखते हैं कि इसके पत्तों को चबाने से इसका नमकीन रस साफ दृष्टिगोचर होता है। इसी से इसका नाम लोणा बूटी रक्खा गया है। इस वनस्पति के पौधे के नीचे की जमीन हमेशा ऐसी तर रहती है मानों वह जल या तेल में भिगोई हुई हो। इसके नीचे के भाग में शीतलता रहने से गर्मी के दिनों में हमेशा इसके नीचे चीटियाँ रहती हैं। इसके पौधे को कपड़े में बाँध कर दो—तीन दिन तक रहने दिया जाय तो उसके पश्चात् खोलने पर पौधा ऐसा मालूम होता है कि मानों उसे पानी में डुबोकर निकाला हो। इसके पौधे पर यदि बरसात बरस जाय तो उसका खारापन धुल जाता है। मगर दस-पन्द्रह दिन में वह खारापन फिर पैदा हो जाता है।

इस प्रकार इस वनस्पति के सम्बन्ध में भी मनुष्य अभी तक बहुत संदिग्ध अवस्था में हैं और यह दिव्य वनस्पति अभी तक मनुष्य के लिये रहस्यपूर्ण बनी हुई है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से यह वनस्पति तीक्ष्ण, कड़वी, गरम तथा क्षय, कृमि, रक्त-पित्त, खाँसी, श्वास और प्रमेह को नष्ट करनेवाली तथा वृद्धावस्था और रोग के कारणों को नष्ट करनेवाली होती है।

इसका पौधा कड़वा, चरपरा, गरम, धातुपरिवर्तक, कृमिनाशक, अग्निवर्द्धक, पौष्टिक, कामोद्दीपक, रक्त बढानेवाला और क्षय, कुष्ट, दमा, पित्तविकार तथा अनैच्छिक वीर्यस्राव को रोकनेवाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका पौधा खट्टा और स्वादवाला होता है और इसके पत्ते पौष्टिक, कामोद्दीपक और भूख बढ़ानेवाले होते हैं।

इसके पौधे को जड़ समेत उखाड़ कर छाया में सुखाकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण को आधे से लेकर एक तोले की मात्रा में शहद के साथ चाटने से कफ की खाँसी और दमा दूर हो जाता है। इसी चूर्ण को दूध में डालकर पीने से स्त्रियों के स्तनों में दूध बढ़ता है। इस चूर्ण में समान भाग वायविडंग का चूर्ण मिलाकर खाने से, सूंघने और डंक के ऊपर लगाने से जहरी जानवरों का विष दूर होता है।

रुद्रवन्ती १ तोला और काली मिरच ६ रत्ती इन दोनों को मिलाकर पीने से बिगड़ा हुआ रक्त साफ हो जाता हैं। आधा सेर दूध, आधा सेर पानी, ढाई तोला घी और २ तोला शहद इन सबको मिलाकर आग पर औटा कर जब पानी का भाग सब जल जाय तब उसमें १ तोला रुद्रवन्ती का चूर्ण डालकर पीने से ४९ दिनों में सब प्रकार के प्रमेह शान्त हो जाते हैं।

शुक्लपक्ष के दिनों में रुद्रवंती को लाकर छाया में सुखाकर उसका चूर्ण करना चाहिये। उस चूर्ण में रुद्रवन्ती के रस की ही ७ भावनाएं देना चाहिये। फिर उसकी आठ आठ रत्ती की गोलियाँ बनाकर कड़वी तुम्बी में भरकर रख देना चाहिये। फिर इसमें से प्रतिदिन एक गोली, तीन माशे घी और ६ माशे शहद के साथ मिलाकर चाट लेना चाहिये और उसके एक घण्टे के पश्चात् गाय का दूध पी लेना चाहिये। जब यह प्रयोग चलता हो तब नमक बिलकुल छोड़ देना चाहिये और दूध भात के समान सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिये। यह एक परम रसायन योग है। इसके लगातार सेवन करने से मनुष्य की बल, बुद्धि, वीर्य, तेज, स्मृति तथा आयु की वृद्धि होती है।

नेत्रों की ज्योति बढ़ती है और देह दिव्य होती है तथा उसकी जीवनी शक्ति और रोगनिवारक शक्ति का विकास होता है।

बनावटें—पारद भस्म—रुद्रवन्ती के रस में पारे को तीन दिन तक घोटकर गोली बना लेना चाहिये। फिर रुद्रवंती के पौधों को पीसकर उनकी लुग्दी बनाकर उस लुग्दी में उस गोली को रखकर शराब-सपुम्ट में बन्द कर के कपड़मिट्टी कर देना चाहिये। फिर सरावसम्पुट को एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उस गड्ढे को आधा ऊपले कंडों से भर कर उन कंडों पर उस सरावसम्पुट को रखकर फिर शेष भाग भी उपले कंडों भर देना चाहिये। उसके पश्चात् उसमें आग सुलगा देना चाहिये। जब अग्नि शीत हो जाय तब उ शसरावसम्पुट को निकाल कर खोलने पर उसमें पारे की कठिन गोली बनी हुई मिलेगी। इस गोली को फिर से तोड़कर रुद्रवंती के रस में घोंटकर तीन बार इसी प्रकार आँच देने से पारे की उत्तम भस्म तयार हो जाती है।

ऐसा कहा जाता है कि उचित अनुपानों के साथ प्रयोग करने पर यह भस्म अनेकानेक रोगों को नाश करती है और परम रसायन है।

रूपामक्खी

नाम—संस्कृत—रौप्यमाक्षिक, तारमाक्षिक, माक्षिक श्रेष्ठ। हिन्दी—रूपामाखी। मराठी—रौप्यमाखी। बंगाल—रौप्य माक्षिक। गुजराती—रूपामाखी। अंग्रेजी–Iron pyrities (आयर्न पायरिटीज) लेटिन—Ferrum sulpharatum (फेरम सल्फरेटम)।

वर्णन—रूपामाखी एक उपधातु होती है। इसका रंग चाँदी के समान होता है और चाँदी का भी कुछ अंश इसमें रहता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत-आयुर्वेदिक मत से रूपमाखी पाक में मीठी, रस में कुछ कड़वी, वीर्यवर्द्धक, बुढ़ापे को जीतनेवाली, नेत्रों को हितकारी तथा प्रमेह, कोढ़, कृमि, सूजन, पांडुरोग, अपस्मार, पथरी, बवासीर, खुजली, विषविकार, पाण्डु, क्षय, उदररोग और त्रिदोष को नष्ट करनेवाली होती है।

अशुद्ध रूपामाखी बलनाशक, विष्टंभ, नत्ररोग, कोढ़, गंडमाला और अनेक प्रकार के घावों को पैदा करनेवाली होती है। अतः इसे हमेशा शुद्ध करके ही लेना चाहिये।

यूनानीमत—यूनानीमत से रूपामाखी कुछ कालापन लिये हुए सफेद होती है। इसकी प्रकृति शीतल और रूखी होती है। यह देह की चिकनाई का शोषण करती है और नेत्रों की ज्योति को बढ़ाती है। सिर के रोग, नेत्र के घाव, नाखूनों के रोग और मोतियाबिंद में लाभ पहुँचाती है। तिल्ली की कठोरता को मिटाती है। इसमें विष नहीं होता। इसकी प्रतिनिधि मुर्दासिंगी होती है। इसका दर्पनाशक बदाम का तेल है और इसकी मात्रा २ माशे की होती है।

चाँदी के अभाव में रूपामाखी दी जाती है। यह चाँदी से कुछ कम गुणकारी होती है। रूपामाखी में चाँदी के सिवाय और पदार्थों के भी गुण रहते हैं।

रूपामाखी को शुद्ध करने की विधि रूपामाखी को १२ घंटे तक कंकोड़ा, मेढ़ासिंगी और नीबू के रस में घोटकर सुखा लेने से वह शुद्ध हो जाती है।

रूपामाक्खी को भस्म करने की विधि—रूपामाखी को बकरे के पेशाब अथवा कुलथी के काढ़े में खरल करके, शरावसम्पुट में रखकर, गजपुट में रखकर फूंक देने से उसकी भस्म हो जाती है। अगर उसमें फिर भी चमक दिखलाई दे तो एक दो गजपुट उसे और दे देना चाहिये। कोई-कोई इसे ७ बार खरल करके ७ बार गजपुट में फूँकते हैं।

अशुद्ध रूपामाखी के खाने से अगर किसी को विकार पैदा हो जाय तो मिश्री और मेढ़ासिंगी का समान भाग चूर्ण खिलाने से वह शान्त हो जाता है।

कर्नल चोपरा के मत से रूपामाक्खी पौष्टिक, धातुपरिवर्तक तथा पांडुरोग, श्वेतप्रदर, प्रमेह, नेत्ररोग, गुदा द्वार की खुजली और सर्वाङ्गीण सूजन पर लाभदायक होती है।

रूमीमस्तगी

नाम—संस्कृत—रूमकुन्दरू। हिन्दी—रूमी मस्तगी। लेटिन—Pistacia leutiscus (पिस्टेचिया ल्यूटिसकस)।

वर्णन—रूमी मस्तगी एक प्रकार का गोंद होता है, यह तुर्किस्तान में पिस्ते की जाति के एक झाड़ से निकलता है। इसका रंग उत्तम और पीला होता है। इसके छोटे-छोटे गोल-गोल टुकड़े होते हैं। यह एक मूल्यवान औषधि होने की वजह से इसके अन्दर दूसरे गोंद के टुकड़े भी मिला दिये जाते हैं। काबुली मस्तगी का भी इसमें मेल किया जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—रूमी मस्तगी में उत्तेजक, कफनाशक, मूत्रल और संकोचक इतने धर्म रहते हैं। इसकी सुगंध मज्जातन्तुओं को उत्तेजना देती है।

फेफड़े के रोगों में जब कफ बढ़ने लगता है तब रूमीमस्तगी को देने से कफ का बढ़ना बन्द हो जाता है। इससे श्वासमार्ग की श्लेष्म-त्वचा को उत्तेजना मिलती है। रूमीमस्तगी को पानी में औटाकर उस पानी को बच्चों के दस्तों को बन्द करने के लिये पिलाते हैं। अजीर्णरोग में पाचनरस को बढ़ाने के लिये और मुँह की दुर्गन्ध को दूर करने के लिये भी इसका उपयोग होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति उत्तेजक और मूत्रल होती है। दंत चिकित्सा में भी इसका उपयोग होता है। इसके अन्दर एक उड़नशील तेल और रेजिन पाये जाते हैं।

रुंछाली वेलड़ी

नाम—गुजराती—रुछाली वेलडी। लेटिन—Convolvluus glomeratus (कनवोलवलस ग्लोमेरेटस)।

वर्णन—यह शंखाहुली या शंखपुष्पी के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसकी लताएँ बहुत पतली और रुओं से भरी हुई होती हैं। इसके पत्ते शंखपुष्पी के पत्तों से मिलते हुए होते हैं। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं और उन गुच्छों में घना मखमली रुआँ रहता है। इसके हर एक फल में १ से लेकर चार तक बीज होते हैं। यह वनस्पति पञ्जाब, राजपूताना, सिंध, बिलोचिस्तान और काठियावाड़ में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्ते और इसकी बेलें शंखाहुली के बदले में उसके प्रतिनिधि रूप से काम में लिये जाते हैं और इसके बीज रेचक वस्तु की तरह उपयोग में लिये जाते हैं।

रूसा

नाम—संस्कृत—रूक्षपत्रा, पीतफला, शखोटा, अक्षधरा, भूतवासा, भूतवृक्ष, गवाक्षी, कर्कशच्छदा। हिन्दी—रूसा, सहोरा, दहिया, करचन्ना। बम्बई—करौली, करचन्ना, करेरा, रूसा। बंगाल—शिओरा। मराठी—खारोली। सीमाप्रान्त—रूसा, सिहोरा। पटना—सिहोरा। पञ्जाब—दहिया, जिंदी। सहारनपुर—दहिया, कुरचन। तामील—कुर्रीपिल्ला। तेलगू—बरोनिका। लेटिन—Streblus asper (स्ट्रेबलस एस्पर)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का हमेशा हरा रहनेवाला वृक्ष होता है। इसकी छाल हलके भूरे रंग की अथवा कुछ हरे रंग की होती है। इसका रस दूध के समान सफेद होता है। इसकी शाखाएँ रुएँदार होती हैं। इसके पत्ते एक के पश्चात् एक लगते हैं। इसके नर और मादा दो तरह के फूल लगते हैं। इसका फल छोटे बेर के आकार का और पकने पर पीले रंग का होता है। यह वनस्पति भारतवर्ष के खुश्क प्रान्तों में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसका पौधा कुष्ठ, बवासीर, वात, कफ, अतिसार, प्रवाहिका, फीलपाँव और क्षयजनित कंठ की ग्रन्थियों में लाभ पहुँचानेवाला होता है।

इसका दूधिया रस संकोचक और रोग के कीटाणुओं को नष्ट करनेवाला (Antiseptic) होता है। यह छालों के ऊपर लगाने के काम में लिया जाता है। इसकी छाल का काढ़ा ज्वर, अतिसार और प्रवाहिका में दिया जाता है। इसकी जड़ का लेप अच्छे न होनेवाले व्रण और नासूर पर लगाया जाता है। इसकी ताजी जड़ें सर्पविष को नष्ट करनेवाली मानी जाती हैं।

रेवन्दचीनी

नाम—संस्कृत—पीता, पीतमूलिका, पीतश्रेष्ठ, महापीत, गंधिनी, रेवटचीनी। हिन्दी–रेवन्दचीनी। मराठी–रेवाचीनी। बम्बई–लाड़की रेवन्दचीनी। गुजराती–गमनी रेवन्दचीनी। बंगाल–बंगला रेवन्दचीनी। पञ्जाब–रेवन्दचीनी, चुकी, चूची, कंडोल, लचु, पंबाश, अटसू। नेपाल–पदमचाल। तामील–नेदिरेवलचीनी। उर्दू–रेवन्दचीनी। अरबी–रेवन्दचीनी। लेटिन–Rheum emodi (हीम इमोडी)। अंग्रेजी–Indian Rhubarb (इंडियन रूबर्ब)।

वर्णन—यह क्षुप जाति की वनस्पति हिमालय में नेपाल और सिकिम के अन्दर ४ हजार फीट से १२ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है। इसकी खेती भी की जाती है और अपने आप भी पैदा होती है। इसके पत्ते मुचकुन्द के पत्तों के समान होते हैं। इसके कोमल पत्ते लाल रंग के और मांसल होते हैं और इसके पुराने पत्ते हरे रङ्ग के होते हैं। इसकी जड़ में अदरक के समान गठानें होती हैं। इन गठानों की छाल को निकाल कर सुखाये हुए टुकड़े रेवन्दचीनी के नाम से बाजार में बिकते हैं। इनका रङ्ग पीला अथवा कुछ भूरा होता है। इनका स्वाद बहुत कड़वा होता है। इसकी उत्तम जाति की जड़ों को रेवेन्द खताई और हलकी जाति की जड़ों को रेवन्द चीनी कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से रेवन्दचीनी चरपरी, कड़वी, बलकारक, मृदुविरेचक तथा अजीर्ण, अतिसार, मन्दाग्नि, अरुचि, कब्जियत, शीतपित्त और दुष्ट व्रण को दूर करती है। इसके सत्त्व को उसारे रेवन्द कहते हैं। उसारे रेवन्द का वर्णन कंकुष्ठ के प्रकरण में इस ग्रन्थ के दूसरे भाग में दिया है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ें तीक्ष्ण, कड़वी, विरेचक, ऋतुस्राव-नियामक और मूत्रल होती हैं। ये पित्तविकार, कटिवात, मस्तिष्क की गर्मी, नेत्रों के व्रण, बवासीर, प्राचीन ब्रोंकाइटीज, प्राचीन ज्वर, दमा, जुकाम और रगड़ में लाभदायक होती हैं।

रेवन्दचीनी में कटु, दीपन, यकृत के लिये उत्तेजक और आनुलोमिक इतने धर्म रहते हैं। इसको छोटी मात्रा में देने से क्षार बढ़ती है, आमाशय में पाचन रस अधिक पैदा होता है, भूख बढ़ती है, अन्न पचता है और यकृत को उत्तेजना मिलने से पित्त का संचालन ठीक तरह से होने लगता है। इसको छोटी मात्रा में देने से इसका संकोचक अथवा ग्राही धर्म स्पष्ट दिखलाई देने लगता है। लेकिन बड़ी मात्रा में इसको देने से यह जुलाब का काम करती है। बड़ी मात्रा में इसको लेने से बड़ी आँत की क्रिया बढ़कर ६ से ८ घंटे में दस्त लगते हैं और पेट में मरोड़ पैदा होती है। फिर भी यह सौम्य होने की वजह से आँतों में दाह पैदा नहीं करती। जुलाब होने के पश्चात् इसका संकोचक धर्म प्रारम्भ होता है और दस्त अपने आप बन्द हो जाते हैं। इससे पेशाब का रंग गाढ़ा हो जाता है।

शिथिलता प्रधान अजीर्ण रोग में जब कभी-कभी दस्त होने लगते हैं तब इसके अर्क को देने से काफी लाभ होता है। वातरक्त के रोगियों को दस्त दिलाने के लिये यह एक उत्तम वस्तु है। इस रोग में अगर अन्न का पाचन बराबर न होता हो तो उस हालत में इसको थोड़ी मात्रा में देने से लाभ होता है। छोटे बच्चों को दस्त लाने के लिये इसका उपयोग करने में कोई हानि नहीं होती। बवासीर के रोग में रेवन्दचीनी का जुलाब देने से बहुत लाभ होता है। पुरानी कब्जियत के अन्दर इसका जुलाब नहीं देना चाहिये। छोटे बच्चों को अधिक दूध पीने की वजह से अगर पेट में दूध सड़ जाय और अम्लता बढ़कर अगर दस्त लगने लगे तो ऐसी स्थिति में रेवन्दचीनी को देने से सड़ा हुआ दूध बाहर निकल जाता है, अम्लता कम हो जाती है और पेट साफ होने के पश्चात् दस्त अपने आप बन्द हो जाते हैं। पहिले दस्त लगाकर उसके पश्चात् कब्ज करने वाली दो ही औषधियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक रेवन्द चीनी और दूसरा अरण्डी का तेल। दोनों ही सौम्य-स्वभावी होते हैं। लेकिन अरण्डी का तेल क्षार-स्वभावी न होने की वजह से पेट की अम्लता को कम नहीं करता। मगर रेवन्दचीनी पेट की अम्लता को भी कम करती है। इसलिये बच्चों के लिये अरण्डी के तेल की अपेक्षा रेवन्दचीनी विशेष उपयोगी होती है। रेवन्दचीनी का यह क्षारस्वभावी धर्म बहुत सौम्य होता है। इसलिये अगर इसके इस धर्म को कुछ उग्र करना हो तो सजीक्षार के समान कोई क्षार-स्वभावी पदार्थ इसमें मिला देना चाहिये। रेवन्दचीनी को लेने से पेट में मरोड़ी भी चलती है। इसके इस दोष को दूर करने के लिये इसमें सूँठ के समान कोई सुगंधित पदाथ मिलाना चाहिये। पेट के अन्दर ग्रहणी में अम्लता बढ़ने से अगर दस्त होते हों तो उस अम्लता को दूर करने के लिये रेवन्दचीनी का जुलाब बहुत उपयोगी होता है। रेवन्दचीनी को ठण्डे पानी में पीसकर सूजन पर लगाने से भी लाभ होता है।

मात्रा—रेवन्द चीनी की मात्रा बारम्बार देने के लिये १ से लेकर ५ रत्ती तक और एक बार देने के लिए ८ से लेकर १५ रत्ती तक की होती है। एक वर्ष तक बच्चों को इसकी १ रत्ती की मात्रा देनी चाहिये।

रासायनिक विश्लेषण—रेवन्द चीनी में एक विरेचक अम्ल होता है। यह अम्ल सनाय के अन्दर भी पाया जाता है। इसको जलाने से इसकी राख ६ प्रतिशत पड़ती है। इस राख में जवाखार और चूने का अंश रहता है। रेवन्द चीनी में यह विरेचक अम्ल ४ प्रतिशत, एक प्रकार की अलकोहल में घुलनेवाली राल ४ प्रतिशत, पानी में घुलनेवाला गोंद ४ प्रतिशत और कषायद्रव्य ११ प्रतिशत रहते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार रेवन्द्चीनी पश्चिमी चिकित्साशास्त्र के अन्दर एक विरेचक द्रव्य की तरह बहुत बड़ी तादाद में उपयोग में ली जाती है। बच्चों के रोगों में यह एक बहुत उपयोगी और घरेलू औषधि मानी जाती है। मतलब यह कि यह गृहस्थ के घर में प्रतिदिन काम में आनेवाली वस्तु है। यह वस्तु विशेष करके चीन से परसिया होती हुई हिन्दुस्तान में आती है। लंदन से भी निश्चित मात्रा में यह हिन्दुस्तान में आती है। हिमालय के अन्दर नेपाल और सिकिम में ४ हजार से लेकर १२ हजार फीट की ऊँचाई तक इसकी खेती की जाती है। हिमालय में पैदा होनेवाली रेवन्दचीनी; चीनी रेवन्दचीनी की अपेक्षा गहरे रङ्ग की और बनावट में कुछ भद्दी होती है। हिमालय की रेवन्दचीनी का चूर्ण कुछ भूरापन लिये हुए पीले रङ्ग का होता है। जब कि चीनी रेवन्दचीनी का चूर्ण चमकीले पीले रङ्ग का होता है। इसीसे यहाँ की रेवन्दचीनी, चीनी रेवन्दचीनी से हलकी समझी जाती है।

देशी रेवन्दचीनी को इंडिजेनस ड्रग कमेटी ने अनुभव में लिया लेकिन उसको यह विशेष संतोषदायक मालूम नहीं हुई। लेकिन इस कमेटी ने इसके सम्बन्ध में जो कारण दिये वे निर्णयात्मक नहीं कहे जा सकते। नीचे लिखे हुए रासायनिक विश्लेषण से देशी रेवन्दचीनी, इंग्लिश रेवन्दचीनी तथा रशियन रेवन्दचानी में पाये जानेवाले रासायनिक तत्त्वों का पता लगता है और उससे मालूम होता है कि देशी रेवन्दचीनी दूसरी रेवन्दचीनियों से विरेचक तत्त्वों में किसी भी प्रकार कम नहीं है।

	चीनी हलकी	चीनी उत्तम	देशी	रशियन
आर्द्रता (Moisture)	६·०६	७·९	५·४	१२·६
राख	९·३३	४·९	९·२८	६·६३
पानी में घुलनेवाला लुआब	६·५	४·८	४·०	५·५
केथेर्टिक एसिड	३·५	३·२	४·५	३·२
गैगिल एसिड इत्यादि	३·३	२·२	३·०	४·५
अलकोहल में घुलनेवाला रालीय पदार्थ··········	२·६	२·०	४·६	५·२
चर्बी और पेट्रोलियम ईथर में घुलनेवाला क्रिसाफेमिक एसिड	·४	·३	·७	१·५

उपरोक्त तालिका से मालूम होता है कि भारतवर्ष में पैदा होनेवाली रेवन्दचीनी सावधानी के साथ पैदा की जाय तो चीन से आनेवाली रेवन्दचीनी से उत्तम होती है। बंगाली रेवन्दचीनी (Rumex Nepalensis) हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सों में पैदा की जाती है और यह रेवन्दचीनी के नाम से बंगाल के बजारों में बिकती है। इसके विरेचक तत्त्व चीनी रेवन्दचीनी के समान ही होते हैं और यह घरेलू औषधि की तरह बंगाल में उपयोग में ली जाती है। मगर चीनी रेवंदचीनी की तुलना में इसकी उपयोगिता के बारे में कोई भी निश्चित मत अभी तक प्राप्त नहीं है।

रेनुक

नाम—संस्कृत—रेणुका। हिन्दी—शंभालुकाबुल। बंगाल—रेनुक। लेटिन—Piper aurantlcum (पायपर ओरेंटिकम)।

वर्णन—यह एक लता होती है जो नेपाल और आसाम में पैदा होती है। इसका रंग सूखने पर पीला हो जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसका फल कड़वा और कसैला होता है। नह ज्वर तथा प्यास को शमन करनेवाला होता है।

रेल्लू

नाम—हिंदी—एला, कांदो, करंज, रेलू, उड़ी। बम्बई—चिल्लारा। गुजराती—चिल्लर। मराठी—चिल्लारा, चिल्लारी। उर्दू—एला। उड़िया—गोदचिल्ली। काश्मीर—कांडो। अंग्रेजी—Bahama Soppan (बहामा सोपान)। तामील—इंदु, पुलिता। दुक्की। तेलगू—गोडाकोरिंडा। लेटिन—Caesalpinia sepiaria (केसलपीनिया सेपिएरिया)।

वर्णन—यह एक कंटकरंज के वर्ग की झाड़ीनुमा बेल होती है। जो प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। इसके पत्ते ९ से लेकर १४ इञ्च तक लम्बे होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से इसके पत्ते मीठे, मृदुविरेचक, पौष्टिक, शांतिदायक, ज्वर नाशक, ऋतुस्राव नियामक और पित्तविकार को शमन करनेवाले होते हैं।

सेवरी के मतानुसार चम्बा में इसके पत्तों को कुचलकर जले हुए स्थान पर लगाया जाता है।

चीन में इसकी जड़ को एक विरेचक द्रव्य की तरह काम में लिया जाता है।

लारियूनियन में इसके पत्ते ऋतुस्राव नियामक माने जाते हैं।

मेडागास्कर में इसकी जड़ का उपयोग एक ऋतुस्राव नियामक पदार्थ की तरह किया जाता है। इसके पत्तों का शीतनिर्यास एक प्रभावशाली विरेचक और वमनकारक द्रव्य की तरह उपयोग में लिया जाता है।

रोहिणी

नाम—संस्कृत—मांसरोहिणी, रोहिणी, अग्निरुहा, अतिरुहा, चन्द्रवल्लभा, चर्मकशा, कशामांसी, लोमकर्णी, वीरवती, रसायनी इत्यादि। हिन्दी—रोहिणी, रोहण, रक्तरोहण। मराठी—रोहिणी, मांसरोहिणी, पोटर। बंगाल—रोहन, रोहिणा। बम्बई—रोहन। गुजराती—रोहणी। काठियावाड़—रोना। तामील—सेम। तेलगू—सेमी। उर्दू—रोहन। इंग्लिश—Red wood Tree लेटिन—Soymiba febrifuga (सोयमिडा फेब्रीफ्यूगा)।

वर्णन—यह एक जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते जुड़मा, ३ से लेकर ६ के जोड़ों में लगते हैं। इसके फूल कुछ हरापन लिये हुए सफेद रङ्ग के होते हैं। इसके फल छोटी सेव की तरह और पकने पर काले हो जाते हैं। इसकी लकड़ी और छाल गहरे लाल रंग की, मोटी और कड़वी होती है। यह छाल कुचले की छाल की तरह दिखलाई देती है। औषधि में इसकी छाल ही उपयोग में ली जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मांसरोहिणी वीर्यवर्द्धक, मृदुविरेचक, कसेली, ज्वरनाशक, कृमनाशक, कामोद्दीपक और त्रिदोषनाशक होती है। यह गले के व्रण, वात, त्रिदोष, ज्वर, खांसी, दमा, रक्तविकार, व्रण, कुष्ठ और अतिसार में लाभदायक होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी छाल आँतों का संकोचन करनेवाली और ज्वर में लाभदायक होती है।

रोहिणी की छाल में उत्तम संकोचक, कटुपौष्टिक और थोड़ी मात्रा में पार्यायिक ज्वरनाशक धर्म रहते हैं। बड़ी मात्रा में इसको देने से चक्कर आ जाते हैं और जी घबराता है। जीर्ण ज्वर और आँतों की शिथिलता में यह बहुत उपयोगी वस्तु है। इसकी छाल को काढ़ा बनाकर देने की अपेक्षा इसका चूर्ण देना विशेष लाभदायक होता है। प्राचीन अतिसार में इसको ले लेने से उत्तम परिणाम दृष्टिगोचर होता है।

मलेरिया ज्वर अथवा पार्यायिक ज्वरों में और उनसे होनेवाली कमजोरी में, पुराने और हठीले अतिसार में, प्रवाहिका में तथा दूसरे ऐसे रोगों में जिनमें संकोचक औषधि की जरूरत होती है। इस वनस्पति का उपयोग सफलता के साथ किया जा सकता है।

कोमान के मतानुसार इस वृक्ष की छाल कटु-पौष्टिक और मलेरिया के विष को नष्ट करने के लिये सिनकोना की छाल के समान मानी जाती है। हमने इसकी छाल का काढ़ा १ औंस की मात्रा में दिन में तीन बार मलेरिया ज्वर के रोगियों को दिया और उसमें यह लाभदायक पाई गई। मगर इसकी क्रिया बहुत ही धीरे और सिनकोना के उपचारों की अपेक्षा बहुत ही कम दर्जे में पाई गई।

इसकी छाल का काढ़ा ओक की छाल के प्रतिनिधि रूप में व्रणों को धोने, एनिमा देने और कुल्ले करने के काम में लिया जा सकता है।

इसकी छाल में एक कड़वा, रङ्गरहित और रालपूर्ण पदार्थ पाया जाता है। यह पानी में नहीं घुलता लेकिन अलकोहल में घुल जाता है। इसका स्वाद बहुत कड़वा होता है। इस पदार्थ के सिवाय इसकी छाल में कषायअम्ल भी बहुत रहते हैं।

मात्रा—इसकी छाल के चूर्ण की मात्रा ३० रत्ती की है जो दिन में ३ बार दी जाती है। इसकी छाल का फांट बनाकर २ तोले की मात्रा में दी जाती है।

उपयोग—**गठिया**—इसकी छाल का क्वाथ पिलाने से और इसकी छाल की पुल्टिस बाँधने से गठिया की सूजन मिटती है।

योनि का व्रण—इसकी छाल का क्वाथ बनाकर उससे धोने से योनि का व्रण मिटता है।

मुँह के छाले—इसकी छाल के क्वाथ से कुल्ले करने से मुँह के छाले मिटते हैं।

अतिसार—इसकी छाल के चूर्ण की फक्की देने से पुराना और हठीला अतिसार और आमातिसार मिटता है।

मलेरिया ज्वर—इसके चूर्ण की ३० रत्ती की मात्रा में दिन में तीन बार देने से मलेरिया ज्वर छूट जाता है। मगर यदि मात्रा अधिक हो जाती है तो स्नायु जाल में विकार पैदा होकर पहले चक्कर आते हैं और फिर मूर्च्छा आ जाती है। इसलिये इसको अधिक मात्रा में नहीं देना चाहिये।

रोशाघास

नाम—संस्कृत—रोहिष, रोहिष तृण, सुगन्धिका, धूपगन्धिका, इत्यादि। हिन्दी—रोसाघास, रूसा, गंधेज-घास, मिरचिया गन्ध, पालखड़ी। बंगाल—अगिया घास, गन्धवेना, रामकपूर। बम्बई–रोहिष। गुजराती–रोशा-घास, रूष, रोशड़ो। मराठी—रोहिष। पंजाब—रानुश। सहारनपुर—मिरचागन्ध। फारसी—खवालमामून। अरबी—अजखर। इङ्गलिश—Geramium Grass, Rusa grass। लेटिन—Andropogon schoenanthus (एण्ड्रोपोगान स्कोइनेंथस) Cymbopogon schoenanthus।

वर्णन—रूसा घास एक सुगन्धित घास होता है। इसके पौधे २ से लेकर ४ हाथ तक ऊँचे होते हैं। जिस जगह पर यह पैदा होता है वहाँ इसके पड़ाव के पड़ाव पड़ते हैं। इसके पत्ते नीचे से चौड़े और फिर क्रमशः पतले होते हुए ऊपर बारीक नोक वाले होते हैं। इसके पौधे के सिरे के ऊपर फूल की चँवरी आती है। इसके पत्ते और फूल को मसलने से उसमें से बहुत मनमोहक खुशबू आती है। इस घास को ढोर नहीं खाते। यह घास राजपूताना, मालवा, नेमाड़ और कच्छ कठियावाड़ में बहुत पैदा होता है।

इस घास में से एक उड़नशील तेल प्राप्त किया जाता है। जो रोशे का तेल या रोशे के अतर के नाम से गन्धियों के यहाँ बिकता है। बहुत से अतर उतारने वाले लोग संदल के तेल की जगह रोशे के तेल का उपयोग करते हैं।

रोशा घास दो प्रकार का होता है। एक को संस्कृत में कत्तृण और दूसरे को दीर्घरोहिष कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से रोशा घास कड़वा, कसेला, चरपरा और ज्वर, खांसी, कुष्ठ, हृदय रोग, गले के रोग और बच्चों को होनेवाली मृगी को दूर करता है।

इसका तेल गरम, पसीना लानेवाला, मूत्रल, ज्वर को दूर करनेवाला, उत्तेजक और चेतना लाने वाला होता है।

नवीन आमवात और गठिया में इसकी मालिश करने से लाभ होता है मगर पुरानी गठिया और आमवात में इसकी मालिश से लाभ नहीं होता। सिर के बाल यदि उड़ गये हों तो वहाँ पर इस तेल की मालिश करने में फायदा होता है। सर्दी, जुकाम और खाँसी में इसका काढ़ा बनाकर देने से फायदा होता है।

उपयोग—गठिया—इसके तेल की मालिश करने से गठिया में लाभ होता है।

सिर की गंज—सिर में इसके तेल की मालिश करने से सिर की गंज मिटती है।

स्नायविक पीड़ा—रोशे के तेल की मालिश से स्नायविक वेदना मिटती है।

पेट का दर्द—रोशा घास का फांट बनाकर पिलाने से पेट का दर्द मिटता है।

चर्म रोग—इसके तेल की मालिश करने से खाज, खुजली इत्यादि चमड़े के रोग मिटते हैं।

ज्वर—इस घास का क्राथ बनाकर पिलाने से ज्वर और जुकाम मिट जाता है।

हाथ-पैरों की शून्यता—इसके पत्तों की मालिश करने से हाथ-पैरों की शून्यता मिट जाती है।

रोजमरी

नाम—हिन्दी—रोजमरी। लेटिन—Rosmarinus officinalis (रोजमरीनस आफिसिनेलिस)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का फूल वाला सुगन्धित क्षुप बहुत से बगीचों में लगाया जाता है। औषधि प्रयोग में इसके पत्ते काम में लिये जाते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—रोझमरी के अन्दर वायुनाशक, उत्तेजक और संकोच-विकास प्रतिबन्धक ये तीन धर्म रहते हैं। इसका वायुनाशक धर्म उत्तम होता है। उदरशूल, कोष्ठवायु और वायुगोला में इसका उपयोग किया जाता है। भूतोन्माद के अन्दर अगर उपरोक्त लक्षणों की प्रधानता हो तो इसको देने से लाभ होता है।

लंगली

नाम—संस्कृत—लंगली—बंगाल—ईश लांगुली, कसपरा। लेटिन—Hydrolea zeylanica (हाइड्रोलिया झेलेनिका)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी वनस्पति होती है जो भारतवर्ष की तर जमीनों में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्तों को कुचल कर उनकी लुगदी बनाकर पुल्टिस की तरह बाँधने से कठोर और न भरनेवाली विद्रधि आराम हो जाती है। इन पत्तों के अंदर कुछ कृमिनाशक (Antiseptic) तत्व भी रहते हैं।

लजालू

नाम—संस्कृत—लज्जा, लज्जालु, लज्जिका, महाभीतिका, दण्डमालिका, शमीपत्रा, स्पर्शलज्जा, ताम्रमूला, महौषधि इत्यादि। हिन्दी—लजालू, लाजवन्ती, शमपेट, छुईमुई। गुजराती—लजालु, रिसामणि। मराठी—लजालू, लाजली। बंगाल—लजक, लजाबेत। नेपाल—लजानिया। पंजाब—लाजवंती। तामील—समगाई। तेलगू—मुनुगुदामरमु, पेड़ निद्रकांति। उर्दू—लजालू। इंग्लिश—Sensetive Plant। लेटिन—Mimosa pudica (मिमोसा पुडिका)।

वर्णन—छुईमुई के छोटे-छोटे क्षुप लता के समान होते हैं। इसके पत्ते खैर के समान बारीक होते हैं। इसके फूल गुलाबी, नीले तथा मिश्रित रङ्ग के होते हैं। इसकी जड़ लाल होती है। इस पौधे को स्पर्श करने से यह सिकुड़ जाता है। यह दो प्रकार की होती है एक कांटे वाली और एक बिना कांटे वाली एक मनुष्य का हाथ लगते ही मुरझा जाती है और दूसरी उसकी छाँह पड़ने से मुरझा जाती है।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से लजालू की जड़ कड़वी, कसैली, शीतल, घाव को अच्छा करनेवाली, विषनाशक और कफ-पित्त, कुष्ठ, अतिसार और योनि रोगों को दूर करनेवाली होती है।

लजालू चरपरी, शीतल, पित्तातिसार नाशक तथा सूजन, दाह, श्रम, श्वास, घाव, कोढ़, कफ और रक्तविकार को दूर करनेवाली होती है।

विपरीत लजालू अर्थात् बृहद्दला चरपरी, गरम, कफनाशक, पारे को बाँधने वाली और अनेक प्रकार के चमत्कार दिखलाने वाली होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ धातुपरिवर्तक, फोड़े को भरने वाली और रक्तदोष तथा पित्तदोष से होनेवाली बीमारियों में लाभदायक होती है। पित्त ज्वर, बवासीर, पीलिया, कुष्ठ, व्रण और चेचक में भी यह उपयोगी होती है।

लजालू के अन्दर रक्तसंग्राहक धर्म बहुत उत्तम होता है। इससे छोटी रक्तवाहिनियों का संकोचन होता है। रक्त और पित्त प्रधान रोगों में इसका बहुत उपयोग होता है। रक्तातिसार के अन्दर इसकी जड़ों का काढ़ा देने से लाभ होता है। शरीर की विनिमय क्रिया के बिगड़ने से अगर पेशाब के साथ सिकता जाने लगे अथवा शरीर के अन्दर सिकता (रेती) जम जाय तो इसकी जड़ का काढ़ा देने से लाभ होता है। बवासीर में इसके पत्तों को दूध के साथ देते हैं।

मलाबार में इसका काढ़ा मूत्रकृच्छ्र, पथरी और मूत्ररेणु की शिकायतों में उपयोगी माना जाता है। बवासीर और भगंदर में इसके पत्ते और इसकी जड़ का चूर्ण थोड़े दूध के साथ मिलाकर दिये जाते हैं।

कोकण में इसके पत्तों को कुचलकर अण्डकोष की सूजन पर लेप करने के काम में लेते हैं और इसके पत्तों का रस समान भाग घोड़े के पेशाब में मिलाकर आँख के अन्दर आनेवाली झिल्ली को दूर करने के लिये अंजन करते हैं। इसके पत्तों के रस में रुई को भिगोकर उसको हर प्रकार के नासूर की ड्रेसिंग करने के काम में लिया जाता है।

गोल्डकास्ट में इसके पत्ते नारू की बीमारी को दूर करने के काम में लिये जाते हैं।

मेडागास्कर में इसका पौधा मूत्रल, संकोचक और आक्षेप-निवारक माना जाता है। बच्चों के आक्षेप रोग को दूर करने के लिये इसका बहुत उपयोग किया जाता है।

गायना में इसके पत्ते एक प्रभावशाली पसीना लानेवाली वस्तु की तरह उपयोग में लिये जाते हैं। इनका हलका निर्यास कटु पौष्टिक पदार्थ की तरह दिया जाता है। इसके बीज और इसकी जड़ एक वमनकारक पदार्थ की तरह उपयोग में लिये जाते हैं। बड़ी मात्रा में ये विषैले और जलन करनेवाले माने जाते हैं।

ब्राझील में इसकी जड़ वमनकारक मानी जाती है और इसके पत्ते कंठमाला में दिये जाते हैं।

कम्बोडिया में इसका सारा पौधा अन्तरंग उपचार में पथरी को दूर करने के लिये दिया जाता है। इसका बाहरी उपयोग गठिया, पुट्ठों की गठिया, सूजन और गर्भाशय के फोड़े को दूर करने के लिये किया जाता है।

रसरत्नाकर के मतानुसार इसके पत्ते और इसकी डालियाँ सर्पविषकी चिकित्सा में दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर काम में ली जाती हैं। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह औषधि सर्पविष में बिलकुल निरुपयोगी है।

पथरी—लजालू की जड़ का क्वाथ बनाकर पिलाने से पथरी गल जाती है।

बवासीर—इसके पत्तों का तोला भर चूर्ण दूध में मिलाकर पिलाने से बवासीर में लाभ होता है।

नासूर—इसकी जड़ को घिस कर लेप करने से नासूर मिटता है।

कामला—इस वनस्पति का प्रयोग करने से पहले सप्ताह में सब प्रकार के ज्वर और पित्त के विकार मिटते हैं। दूसरे सप्ताह में बवासीर, कामला इत्यादि रोग मिटते हैं और तीसरे सप्ताह में कोढ़, उपदंश और कीलें इत्यादि रोग मिटते हैं।

मूत्रातिसार—इसके पत्तों का लेप करने से मूत्रातिसार मिटता है।

खाँसी—इसकी जड़ को गले में बाँधने से खाँसी मिटती है।

गंडमाला—लजालू के रस को नियमपूर्वक पिलाने से गंडमाला मिटती है।

स्तनों का ढीलापन—लजालू और असगंध की जड़ को पीसकर स्तनों पर लेप करने से स्तनों का ढीलापन मिटकर वे गोल और कठोर हो जाते हैं।

लजालु [२]

नाम—संस्कृत—लज्जालुका, पीतपुष्पा, पंक्तिपत्रा, जलपुष्पा इत्यादि। हिन्दी—लजालू, झरेर। गुजराती—रिसामणी, झरेर। बंगाल—झलाइ। मराठी—झरेर, लटजीरी, लहानमुलका। लेटिन—Biophytum senvitivum (बियाफिटम सेंविटिवम)।

वर्णन—यह लाजवन्ती की एक दूसरी जाति होती है। इसके पौधे बहुत छोटे और पतले होते हैं। इसके पत्ते भुई आवला के पत्तों के समान होते हैं। इनको छूने से ये कुम्हला जाते हैं। इसमें छोटे-छोटे पीले रंग के फूल और छोटे-छोटे गोल-गोल फल लगते हैं। इसके बीज लाल रङ्ग के और बहुत महीन होते हैं। यह वनस्पति सारे भारतवर्ष के गरम प्रान्तों में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसके पत्ते कड़वे, मूत्रल और मूत्रकृच्छ्र को दूर करने वाले होते हैं।

इसके पत्तों को पानी के साथ पीसकर देने से ये अपना मूत्रल प्रभाव दिखलाते हैं। पित्त ज्वर के अन्दर प्यास को दूर करने के लिये भी इनका उपयोग होता है। इसके बीजों का चूर्ण जखम के ऊपर लगाने से फायदा होता है। इसको मक्खन के साथ फोड़े पर लगाने से यह फोड़े को पका देता है। इसकी जड़ के काढ़े को पिलाने से सुजाक और पथरी में लाभ होता है।

फिलिपाइन में इसके पत्तों का काढ़ा एक कफ निःसारक पदार्थ की तरह उपयोग में लिया जाता है और इसके कुचले हुए पत्तों का लेप जखम और रगड़ पर किया जाता है।

जावा में इसके पत्तों का काढ़ा दमा, क्षय और सर्पविष की शांति के लिये उपयोग में लिया जाता है।

लटकन

नाम—संस्कृत—सिंदूरपुष्पी, सिंदूरी, तृणपुष्पी, सुकोमला, रक्तबीजा, रक्तपुष्पी, करच्छदा, इत्यादि। हिन्दी—लटकन, सिंदूरिया, जाफर। मराठी—शदरी। बंगाल—लटकन, बटकन। बम्बई—जाफजर, केसरी, केसूरी, सेंद्रा। गुजराती—सिंदूरी। तामील-कुरुगूमंजलू, मंजिट्ठी। तेलगू—जाबुरा। अंग्रेजी—Annato। लेटिन—Bixa oiellana (बिक्सा ओऐलेना)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का हमेशा हरा रहनेवाला वृक्ष होता है। यह प्रायः हिन्दुस्तान के बगीचों में लगाया जाता है। इसके पत्ते बेल के पत्तों के समान होते हैं। इसके फूल लाल-लाल सिंदूर के समान लगते हैं। इसके फल धतूरे के फलों के समान होते हैं। हर एक फल में ४ फांके रहती हैं। इनमें बहुत बीज रहते हैं। इन बीजों को जल में डालने से जल लाल हो जाता है। इस वनस्पति से लाल रङ्ग भी प्राप्त किया जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से सिंदूरपुष्पी का पौधा कड़वा, चरपरा, शीतल, हलका, कसेला तथा रक्तविकार, वातरक्त, तृषा, विषदोष, पित्त, वातपित्त, वमन, कफ, मस्तक शूल, और भूतबाधा को दूर करने वाला होता है।

इसके फलों में रहनेवाला केसरिया रङ्ग विषैला नहीं होता। इसके फल का गूदा संकोचक और बड़ी मात्रा में कुछ स्रंसन होता है। इसके बीज और जड़ रुचिकारक, ज्वरनाशक और संकोचक होते हैं।

इसकी जड़ की छाल मलेरिया ज्वर और दूसरे ज्वरों को दूर करने वाली होती है। इसका पार्यायिक ज्वर, मलेरिया ज्वर और अविराम ज्वर में बहुत उपयोग होता है।

इसके बीज हृदय के लिये पौष्टिक, संकोचक और ज्वरनाशक होते हैं। सुजाक के लिये ये एक उत्तम औषधि हैं। इनमें पार्यायिक ज्वरनाशक तत्त्व रहते हैं। मगर ये तत्त्व इस वनस्पति की जड़ की छाल की अपेक्षा इन बीजों में कम रहते हैं।

यह वनस्पति संकोचक और अधिक मात्रा में कुछ हलकी विरेचक होती है। रक्तातिसार और गुर्दे की बीमारियों में यह बहुत लाभ पहुँचाती है। इसके बीजों में रहनेवाले रंगदार तत्व को पानी में घोलकर सारे शरीर पर लगाने से मच्छर काटने का डर नहीं रहता।

फ्रेंचगायना में इसके पत्ते मृदु विरेचक और शोधक समझे जाते हैं। इनका निर्यास अतिसार के अन्दर विरेचक वस्तु की तरह दिया जाता है।

बापट के मतानुसार इसकी जड़ दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर सर्प-विष को दूर करने के लिये पिलाने के काम में ली जाती है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्प-विष में निरुपयोगी होती है।

लतमी

नाम—बंगाल—लतमी, अमूर। बरमा—पिटनी। लेटिन—Amoora cucullata (एमूरा क्यूक्यूलेटा)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है। इसके पत्ते १२ से लेकर १५ इञ्च तक लम्बे होते हैं। यह वनस्पति बंगाल के जंगलों में और बरमा में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्तों को कुचलकर लेप करने से सूजन कम हो जाती है।

लकड़ी का कोयला

नाम—हिन्दी—लकड़ी का कोयला। लेटिन—Carbo Ligni (कारबो लिगनी)।

वर्णन—लकड़ी का कोयला लकड़ी को जलाकर तैयार किया जाता है। यह सब ओर जलाने के काम में आता है।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार लकड़ी का कोयला अजीर्ण, मन्दाग्नि, अतिसार, प्रवाहिका और मोतीजरे (Typhoid Fever) में उपयोग में लिया जाता है।

लटमहूरिया (लटूर)

नाम—संस्कृत—कुणंजर, कुणंजी, कुणंज, अरण्य वास्तुक, दुर्भिक्षवल्लभ, मंजरी इत्यादि। हिंदी—लटमहूरिया, लेसुवा, लटूर। मराठी—गीतना। गुजराती—कणेफरो। बङ्गाल—गुंगेटिया, लुटमुहूरिया। पंजाब—लेसवा, सरतारा, टंडाला। संथाल—कड़ी गन्धारी। बम्बई—गेटन। तेलगू—चंचलीकुरा। लेटिन—Digera arvensis (डिगेरा अरवेन्सिस)।

वर्णन—यह एक प्रकार की घास होती है। इसके क्षुप १ से लेकर दो हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते चौलाई के समान होते हैं। इसके फूल की मंजरी लम्बी और गुलाबी होती है। इसके फल बदाम के समान और छोटे-छोटे होते हैं। यह वनस्पति बरसात के दिनों में बहुत अधिक मात्रा में पैदा होती है। इसका घास भैंस को खिलाया जाता है। जिससे भैंस का दूध बढ़ता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से लटूर त्रिदोषनाशक, मधुर, रुचिकारक, दीपन, संकोचन, पित्तश्लेष्मनाशक और हलका होता है। यह छोटी मात्रा में आँतों का संकोचन करता है लेकिन बड़ी मात्रा में यह मृदुविरेचक होता है। इसके फूल और बीज अनैच्छिक वीर्यस्राव अथवा प्रमेह में उपयोगी होते हैं।

इसके पत्तों का गरीब लोग शाग बनाते हैं। इसके पत्तों को पीसकर फोड़े-फुन्सियों पर बाँधने से लाभ होता है। इसके बीज प्रमेह के अन्दर उपयोगी होते हैं।

लतामेंहदी

नाम—लखीमपुर—लता मेंहदी। बङ्गाल—नानमन्तूर। नेपाल—हलागेंरी। लेटिन—Croton caudatus (क्रोटन कोडेटस)।

वर्णन—यह एक जमालगोटे के वर्ग की वनस्पति होती है। इसकी बड़ी झाड़ी होती है। इसके पत्ते १·३ से २·५ सेंटिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल छोटे और कुछ पीलापन लिये हुए हरे रंग के होते हैं। इसके बीज काले और चमकीले होते हैं। यह वनस्पति पूर्वी हिमालय, आसाम और बंगाल में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्तों को कुचल कर उनका पुल्टिस बनाकर चोट और मोच के ऊपर बाँधा जाता है। लखीमपुर में इसके पत्तों की कोपलों को पतंग नामक वनस्पति के साथ मिलाकर यकृत के रोगों को दूर करने के काम में लिया जाता है।

लफा

नाम—आसाम—लफा । लेटिन—Malwa verticillata (मालवा व्हर्टिसिलेटा)।

वर्णन—यह खबाजी के वर्ग की एक वनस्पति होती है । इसका सारा पौधा रुएँदार होता है । इसके पत्ते २ इंच से लेकर ६ इंच तक लम्बे होते हैं । इसके फूल बहुत छोटे होते हैं । यह वनस्पति हिमालय में १२ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है ।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़का हूपिंग कफ में देने से बमन होकर रोगी को शान्ति मिलती है । इसके पत्ते और कोमल डालियाँ पाचक होती हैं और यह गर्भावस्था की उत्तर अवस्था में स्त्रियों को दी जाती है । इसके सूखे पत्तों की राख पिलाने से गीली खुजली में लाभ होता है ।

लमतानी

नाम—बम्बई—लमतानी । मराठी—काबली । कनाड़ी—मलबाल्लि । लेटिन—Anodendron paniculatum (एनोडेंड्रोन पेनिक्यूलेटम)।

वर्णन—यह एक बहुत बड़ी २ शाखाओं वाली झाड़ी होती है । इसकी डालियों की छाल भूरी, मोटी और मुलायम होती है । इसके पत्ते ९ से १५ सेंटिमीटर तक लम्बे और ३·८ से ६·३ सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं । इसके फूल बहुत छोटे और पीले रंग के होते हैं । इसके बीज कुछ ललाई लिये हुए भूरे रग के होते हैं । यह वनस्पति सिलहट, उड़ीसा, मैसूर, कोंकण और पश्चिमी घाट में पैदा होती है ।

गुण, दोष और प्रभाव—अतिसार के अन्दर यह वनस्पति लाभ पहुँचाती है इसमें प्रायः वे ही तत्त्व होते हैं जो इपेकिकोना में पाये जाते हैं ।

लहसन

नाम—संस्कृत—लशुन, महाकन्द, अरिष्ट, रसोन, म्लेच्छकन्द, महौषधि, दीर्घपत्र, उग्रगन्ध, राहूच्छिष्ट इत्यादि । हिंदी—लहसन, लसन । गुजराती—ज़सन । बङ्गाल—लशन, रसून । बाम्बे—लुसून । मराठी—लसून । तामील—बेलोईपुंडू । तेलगू—तेल्लगड्डूँ । उर्दू—लहसुन । अरबी—सौम, तौम । फारसी—सीर । इंग्लिश—Garlic (गारलिक)। लेटिन—Allium sativum (एलियम सेटिवम)।

वर्णन—लहसन एक मशहूर वस्तु है जो हिन्दुस्तान में शाग–तरकारी के साथ मसाले के रूप में खाने के काम में ली जाती है । इसकी खेती सारे भारतवर्ष में की जाती है । इसका पौधा प्याज के पौधे की तरह होता है । इसकी गठान जमीन के अन्दर प्याज की गठान की तरह ही लगती है ।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से लहसुन ५ रसों से युक्त होता है । सिर्फ अम्लरस इसमें नहीं पाया जाता । इसकी जड़ में चरपरा रस, पत्तों में कड़वा रस, नाल में कसेला रस, नाल के अगले भाग में लवण रस और बीजों में मधुर रस रहता है ।

लहसन पौष्टिक, कामोद्दीपक, स्निग्ध, उष्ण, पाचक, सारक, रस और पाक में चरपरी, तीक्ष्ण, मधुर, टूटी हड्डी को जोड़नेवाली, कण्ठ को सुधारनेवाली, भारी, रक्तपित्त को बढ़ानेवाली, बलकारक, कांतिवर्द्धक, मस्तिष्क को शान्ति देनेवाली, नेत्रों को हितकारी और रसायन होती है । यह हृदय रोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, कब्जियत, वायु-गोला, अरुचि, खाँसी, सूजन, बवासीर, कोढ, मन्दाग्नि, कृमि, वात, श्वास और कफ को हरनेवाली होती है ।

लहसन शरीर की सब प्रकार की वात की पीड़ा को नष्ट करती है । यह सारक, कामोद्दीपक, स्निग्ध, भारी, अरुचि को दूर करनेवाली, खाँसी को हरनेवाली, ज्वर को नष्ट करनेवाली तथा कफ, श्वास और गुल्म का विनाश करनेवाली, केशों को हितकारी, कृमिनाशक और प्रमेह, बवासीर, कुष्ठ और सूजन को कम करनेवाली, गरम, टूटी हुई हड्डी को जोड़नेवाली, रक्तपित्त को कुपित करनेवाली, शूल को शान्त करनेवाली और बुढ़ापे की व्याधियों को दूर करनेवाली होती है ।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका कन्द चरपरा, मूत्रल, पेट के आफरे को दूर करनेवाला और कामोद्दीपक होता है। यह सूजन, पक्षाघात, जोड़ों का दर्द तथा तिल्ली, यकृत और फेफड़े के रोगों में लाभ पहुँचाता है। यह स्वर को शुद्ध करती है और जीर्ण ज्वर, कटिवात, प्यास, दाँतों की सड़ान और धवल रोग में लाभ पहुँचाती है और रक्त को पतला करती है।

लहसन गरम, लघु दीपन, वायुनाशक, कृमिनाशक, उत्तेजक, कफनाशक, मूत्रल, वातनाशक और कामोद्दीपक होता है। इसके अन्दर रहनेवाला उड़नशील तेल त्वचा, मूत्रपिण्ड और फुफ्फुस के द्वारा निकलता है। इसको लेने से श्वासनलिका के अन्दर कफ ढीला होता है और बाहर निकल जाता है। इससे कफ की दुर्गन्ध कम होती है और कफ के अन्दर रहनेवाले रोगजन्तुओं का नाश होता है। मज्जा-तन्तुओं के ऊपर लहसन की जोरदार उत्तेजक क्रिया होती है। बड़ी मात्रा में लहसन का देने से वमन और दस्त होते हैं।

लहसन और वातरोग—सब प्रकार के वातविकारों में लहसन का अन्तरंग और बाह्य दोनों प्रकार का उपयोग होता है। गृध्रसी, अर्दित, पक्षाघात, ऊरुस्तम्भ इत्यादि रोगों में लहसन और वायबिडंग को समान भाग लेकर आधे दूध और आधे पानी में औटाते हैं। जब पानी का भाग जलकर दूध मात्र रह जाता है। तब उस दूध को छानकर पिलाते हैं। इस काढ़े से मज्जातंतुओं की शक्ति सुरक्षित रहती है और स्नायुओं की शक्ति बढ़ती है। सब प्रकार के वातरोग में यह प्रयोग बहुत लाभ पहुँचाता है।

वमन, अजीर्ण, सफेद दस्त और कृमि रोग में लहसन का बहुत उपयोग होता है। गुल्म और उदावर्त में भी इसका प्रयोग लाभ पहुँचाता है। जीर्ण आमवात और संधियों की सूजन में इसको पेट में देने से और इसका लेप करने से बहुत लाभ होता है लेकिन इस लेप को अधिक समय तक नहीं रखना चाहिये। क्योंकि इससे छाला उठने का भय रहता है।

प्राचीन कफ रोगों में और राजयक्ष्मा रोग में फुफ्फुस के अन्दर क्षत पड़ने पर लहसन और वायबिडंग का काढ़ा पिलाने से और लहसन को पीसकर छाती पर लेप करने से बहुत लाभ होता है। राजयक्ष्मा रोग में लहसन और वायबिडंग का यह मिश्रण बहुत गुणकारी होता है। बच्चों की सूखी खाँसी भी इस मिश्रण से नष्ट हो जाती है।

हृदय रोग के अन्दर लहसन को देने से पेट का फूलना कम होकर हृदय का दबाव हलका हो जाता है। हृदय को बल मिलता है व पेशाब होता है।

व्रण, शोथ, विद्रधि, फोड़े फुन्सी, इत्यादि रोगों में लहसन का लेप प्रारम्भ से ही करने पर रोग नहीं बढ़ता मगर पीब पैदा होने के पश्चात् इसका लेप उपयोगी नहीं होता। कर्णशूल में लहसन को तेल में औटाकर उस तेल को कान में टपकाने से लाभ होता है। विषम ज्वर में लहसन को देने से थकावट पैदा नहीं होती।

क्षयरोग और लहसन—आधुनिक खोजों के अन्दर लहसन महाभयंकर और असाध्य क्षय रोग के ऊपर बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध डॉक्टर एम० डब्ल्यू० मेकडाफ का कथन है कि क्षयरोग के सम्बन्ध की जो खोज और जानकारी गत दो वर्षों में हमने प्राप्त की है उसमें १०८२ क्षय के रोगियों के ऊपर भिन्न-भिन्न प्रकार के ५६ जाति के प्रयोग अजमाकर उनके परिणामों का सूक्ष्म अध्ययन कर के उनका बाकायदा रेकार्ड रक्खा गया है। इस रेकार्ड से मालूम होता है की इन ५६ जातियों के प्रयोगों में क्षय के कीटाणुओं और उनकी वजह से होनेवाले भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों पर विश्वसनीय रूप से असर करनेवाली सिर्फ दो ही औषधियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें से एक औषधि वनस्पति वर्ग का लहसन है और दूसरा खनिज वर्ग का पारा है।

लहसन में अलीलसल्फाइड जाति का उड़नशील तेल रहता है और यही तेल लहसन में रहनेवाले सब प्रकार के व्याधिनाशक गुणों का जनक है। यह तेल प्रबल जन्तुनाशक होता है और क्षय के जन्तुओं की वृद्धि को रोकने का इसमें अद्भुत गुण रहता है। शरीर के अन्दर जाकर यह तेल ऑक्सिजन वायु में मिलकर सलफ्यूरिक एसिड नामक अम्ल तत्व को पैदा करता है और फुफ्फुस, त्वचा, मूत्रपिण्ड और यकृत के द्वारा इन सब अंगों की विनिमय क्रिया को सुधारता हुआ यह शरीर के बाहर निकलता है। शरीर के किसी भाग के ऊपर इस तेल की मालिश करने से यह शरीर में बहुत जल्दी गहराई के साथ प्रवेश कर जाता है। हमारे अनुभव में लहसन ने क्षय रोग के ऊपर उत्तम परिणाम बतलाये हैं। क्षय के कीटाणु फिर चाहे वे त्वचा, हड्डी, फुफ्फुस, ग्रंथियाँ तथा शरीर के और किसी

भाग में घर करके बैठे हों लहसन के प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं और इन कीटाणुओं की वजह से पैदा होनेवाले सब प्रकार के रोगों में भी इससे लाभ पहुँचता है।

डॉक्टर मिचीन लिखते हैं कि एक जवान मनुष्य जिसके कि सारे पर और पैर के पंजे की हड्डी में क्षय रोग लगा हुआ था वह मेरे पास सलाह लेने के लिये आया। उस रोगी को देखकर मैंने उसे पैर कटवाने की सलाह दी। परन्तु उस रोगी ने ऐसा करने से इन्कार किया। छः महीने के पश्चात् वही रोगी मुझे बिलकुल तन्दुरुस्त हालत में मिला। मैंने आश्चर्य चकित होकर उससे सब हाल पूछा। उसने बतलाया कि लहसन, नमक और गेंशिल इन तीनों चीजों को समान भाग लेकर इनको पीसकर इनका लेप करने से ही मैं अच्छा हुआ हूँ। यह देखकर मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ और उसी समय से मुझे लहसन के गुणों की जानकारी हुई। उसके पश्चात् स्वयं अनुभव लेने के लिये मैंने अनेक रोगियों पर इसे अजमाया और इसमें मुझे आश्चर्यजनक सफलता मिली। लहसन में अलीलसलफाइड नामक जो तत्त्व रहता है वह इसके रस में ३ प्रतिशत से भी अधिक पाया जाता है। यही तत्त्व क्षय के जन्तुओं को नष्ट करके शरीर के भिन्न-भिन्न भागों से क्षय रोग को नष्ट करता है।

अलीलसलफाइड कितनी चमत्कार-पूर्ण रीति से मनुष्य के सारे शरीर में फैल जाता है इसका अनुभव लेना हो तो इसकी २।४ कलियों को पीसकर उनकी लुग्दी किसी के पैर की पगतली में बाँध देना चाहिये। १५–२० मिनिट के पश्चात् ही उस मनुष्य की श्वास को सूँघने से मालूम होगा कि उसकी श्वास में लहसन की गन्ध आने लगी है। इससे मालूम होता है कि लहसन में रहने वाला अलीलसलफाइड नामक तत्व अति शीघ्रता-पूर्वक पगतली की त्वचा के परदों में घुसकर रस और रक्तवाहिनी नसों के द्वारा सारे शरीर में फैलकर अन्त में फेफड़ों में होता हुआ श्वास मार्ग के द्वारा बाहर निकलता है। इस प्रकार यह तत्व रस और रक्त के द्वारा फुफ्फुस, त्वचा, स्नायु जाल, यकृत, मूत्रपिण्ड, हड्डियाँ वगैरह शरीर के प्रत्येक छोटे-बड़े भागों में प्रविष्ट हो जाता है। इसलिये अगर इसका उपयोग नियमित रूप से जारी रक्खा जावे तो शरीर के किसी भी भाग में रहनेवाले ट्यूबरक्युलबेसिलीं नामक क्षय के कीटाणुओं को नष्ट करके सब प्रकार के क्षय के उपद्रवों को शान्त करता है।

क्षय के जन्तुओं की वजह से होनेवाली हर प्रकार की व्याधियों को अर्थात् फेफड़े के क्षय से लेकर चमड़ी की सड़ान के समान विकट रोग भी सिर्फ लहसन के उपयोग से अच्छा करने के दृष्टान्त उपरोक्त डॉक्टर अपने अनुभव से बतलाते हैं। वे और एक दस वर्ष के बच्चे का उदाहरण बतलाते हैं। इस बच्चे के हाथ की हड्डी में क्षय का रोग लग गया था। जिससे उसके हाथ की एक उँगली भी काट डाली गई थी। फिर भी उसकी हथेली में तीन गहरे नासूर पड़े हुए थे जिनसे हमेशा पीब बहता रहता था। इस रोग के ऊपर जब सब उपाय असफल हो गये तब लहसन की कुछ कलियों को बारीक पीसकर उनको चर्बी में मिलाकर २४ घंटे में एक बार उस सड़े हुए हाथ के ऊपर बाँधी जाती थी। चर्बी मिलाने का कारण लहसन के दाह के असर को कम करना था। इस प्रकार चर्बी मिला देने पर भी प्रारम्भ में उस बच्चे को बहुत जलन सहन करनी पड़ी। लेकिन उसको बहुत शीघ्र फायदा दिखाई देने लगी और सब मिलाकर करीब डेढ़ महीने में उसका हाथ बिलकुल अच्छा हो गया।

यूरोप में सन् १९१४ में जो भीषण युद्ध चला उसमें भी इस सम्बन्ध के कुछ अनुभव एक आर्मी सर्जन को हुए। उनका कहना है कि लहसन के रस में थोड़ा गरम करके ठण्ढा किया हुआ पानी मिलाकर उस पानी को चाहे-जैसे चेप लगे हुए घाव पर लगाने से अथवा उस पानी से उस घाव को धोने से अथवा उस पानी में कपड़े को तर करके उस घाव पर बाँधने से सड़ान उत्पन्न करनेवाले चेपी कीटाणुओं का नाश होकर बहुत जल्दी घाव भर जाता है। चाहे जितने बड़े और हठीले घाव पर भी लहसन का रस और पानी मंत्र शक्ति की तरह लाभ पहुंचाता है। उपरोक्त आर्मी सर्जन ने यूरोप के सारे रणक्षेत्र में अपने इस अनुभव का प्रचार कर दिया था। उसने स्वीकार किया था कि यह आविष्कार मेरा स्वयं का नहीं बल्कि एक फ्रेंच किसान की स्त्री का है जो कि युद्ध क्षेत्र के अन्दर घायलों के घावों को आश्चर्यजनक रीति से दुरुस्त करती हुई मेरे दृष्टिगोचर हुई थी। उसके पश्चात् मैंने भी अनेक रोगियों पर इसका अनुभव किया और पूर्ण विश्वास होने के पश्चात् ही मैं इस योग को दुनियाँ के लाभ के लिये प्रकाशित कर रहा हूं।

लहसन में सैंधानिमक अथवा शक्कर समान भाग मिलाकर उसको बारीक खरल करके अवलेह के समान बना लेना चाहिये। इस अवलेह में से ६ माशा अवलेह ६ माशे जमे हुए घी के साथ मिलाकर दिन में ३ बार

सवेरे, दोपहर और शाम को चाटने से पहली स्टेज का क्षय, मन्दाग्नि, अजीर्ण, आफरा, उदर शूल, खाँसी, इन्फ्लूएंझा, नासूर, संधिवात, चीभें चलना इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। अगर इसका टिंक्चर बनाना हो तो लहसन को पीसकर तीन-चार गुने रेक्टिफाइड स्पिरिट में डालकर तीन दिन तक पड़ा रहने देना चाहिये उसके पश्चात् उस स्पिरिट को छानकर स्टेपर्ड बोतल में भर लेना चाहिये। इस टिंक्चर की मात्रा २ ड्राम तक की होती है।

इंडियन एण्ड ईस्टर्न ड्रगिस्ट नामक पत्र के मई १९२२ के अंक में लहसन के ऊपर एक नोट प्रकाशित हुआ था, वह इस प्रकार है।

'लहसन उत्तेजक और चर्मदाहक होता है। एक शान्तिदायक और पाकस्थली को उत्तेजित करनेवाले द्रव्य की तरह लहसन पाचन क्रिया को सहायता करता है और अन्न को रस बनाने में मदद करता है और कोष्ठ वायु को नष्ट करता है। एक कफ-निस्सारक द्रव्य की तरह वायु-नलियों पर फुफ्फुस-सम्बन्धी ग्रंथि-रस पर अपना विशेष प्रभाव डालता है। जिससे यह ऐसे केसों में-जिनमें वायु-प्रणाली फैली हुई रहती है और दुर्गन्धयुक्त कफ गिरता रहता है-यह उपयोगी होता है। फेफड़े के क्षय में इसका उपयोग करने से यह कफ गिरने को कम करता है। रात्रि के पसीने को रोकता है। भूख को बढ़ाता है और नींद को सुखपूर्वक लाता है।'

'एक ऋतुस्राव—नियामक पदार्थ की तरह यह मासिकधर्म के प्रभाव को बढ़ाता है। शक्ति देता है, त्वचा और गुर्दे को उत्तेजना देता है और शांति प्रदान करता है। यह मूत्र की तादाद को बढ़ाता है इसलिये इसका उपयोग जलोदर में भी होता है। हिस्टीरिया रोग में मूर्च्छित लड़कियों के नाक में इसको सुंघाने से उनकी मूर्च्छा भंग हो जाती है। इसको नमक के साथ देने से यह कॉलिक उदरशूल और स्नायविक मस्तकशूल को दूर करता है। छाती के ऊपर पुल्टिस की तरह इसका लेप किया जाता है। इसी प्रकार बच्चों के आक्षेप रोग में उनकी पीठ की रीढ़ पर इसका उपयोग किया जाता है। पेट और हृदय के बीच में इसका लेप करने से यह पाकस्थली की खराबी से पैदा हुए जुकाम को दूर करता है। पेट के कृमियों को नष्ट करता है। बीमारी के कीटाणुओं को दूर करता है। क्षय के जन्तुओं को नष्ट करता है। ज्वर को शमन करता है। पीड़ा को दूर करता है। सूजन को बिखेरता है। चमड़े को जला देता है और आर्द्रता का शोषण कर लेता है।'

इसकी गठानों को तेल में भूँजकर उस तेल की मालिश करने से जोड़ों का दर्द और जोड़ों की सूजन दूर होती है। इस तेल को कान में टपकाने से कर्णशूल दूर होता है।

लहसन के चिकित्सा सम्बन्धी प्रयोग और शरीर पर होनेवाली इसकी सूक्ष्म क्रियाओं का ज्ञान आयुर्वेद-शास्त्रियों का बहुत प्राचीन काल से था। आज का आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी उनके उस ज्ञान का समर्थन करता है। भारतवर्ष में लहसन का एक रोग कीटाणु नाशक द्रव्य की तरह प्रचुर मात्रा में उपयोग होता आया है और यह बात भी हाल ही में जानकारी के अन्दर आई है कि जो लोग नियमपूर्वक लहसन को भोजन की तरह सेवन करते हैं वे इन्फ्लूएँझा और बेरीबेरी के समान भयंकर रोगों से बचे हुए रहते हैं। ऐसे लोगों में भी अगर इस प्रकार के रोगों का कभी-कभी आक्रमण होता हुआ दिखाई देता है, तो इसका मूलकारण उनकी रहने की गंदी आदतें और उनके आस-पास के दूषित वातावरण की गंदगी ही होती है।

प्रसूतिकाल के समय प्रसूता स्त्रियों को लहसन देने का आम रिवाज है और उससे बहुत लाभ भी होता है। डिप्थेरिया अथवा रोहिणी रोग के संदिग्ध केसों में और कुछ छूत की बीमारियों में भी जो कि एक रोगी से दूसरे रोगी को लगता है इसको उपयोग करने से लाभ होता है। हाल की आधुनिक शोधों में यह मालूम हुआ है कि ट्यूबर क्यूलसिस अथवा क्षय की चिकित्सा में भी यह एक प्रभावशाली औषधि है। मतलब यह कि इस वनस्पति के सम्बन्ध में जो जानकारी प्राप्त हुई है उससे मालूम होता कि लहसन का बिना फिल्टर किया हुआ ताजा रस एक बहुत उत्तम वस्तु है और हर बीमारी में उसको इसी प्रकार से उपयोग करना चाहिये। एलकोहल के अन्दर इसके तेल को मिलाकर अगर इसका इञ्जेक्शन दिया जाये तो वह लाभ के बजाय हानिकारक प्रतिक्रिया करती है। इसलिये इस रूप पर इसको व्यवहार नहीं करना चाहिये।

लहसन और वाजीकरण—कामोद्दीपन के लिये भी लहसन एक बहुमूल्य वस्तु है। बुढ़ापे के प्रारम्भ में जब मनुष्य की कामशक्तियाँ जीर्ण होने लगती हैं तब अगर लहसन की कलियों को घी में तल कर उनको नियम-

पूर्वक सेवन किया जाये तो मनुष्य की कामशक्ति हमेशा स्थिर और उत्तेजित रहती है। कहा जाता है कि मारवाड़ के अन्दर एक वैद्य ने एक ७५ वर्ष के वृद्ध सेठ को एक षोडशी से दूसरा विवाह करवा दिया और उस वृद्ध को एक छटाँक लहसन की कलियाँ प्रतिदिन घी में तलकर खिलाना प्रारम्भ किया। जिसके परिणाम स्वरूप दो वर्ष में उस षोडशी को उस ७५ वर्ष के वृद्ध से एक लड़का पैदा हुआ और यह एक विशेष ताज्जुब की बात थी कि जब वह लड़का बड़ा हुआ तो उसके पसीने में लहसन की गंध आती थी।

मतलब यह कि लहसन में क्षय कीटाणु नाशक, कफ निस्सारक, वाजीकरण, उत्तेजक और वात तथा वेदना नाशक इतने धर्म प्रधान रूप से रहते हैं। इसका हर एक धर्म बहुत जोरदार और प्रभावशाली होता है।

उपयोग—विद्रधि—लहसन को पीसकर उसको ह्वेसलीन में मिलाकर लेप करने से विद्रधि मिटती है।

वातरोग—लहसन की लुग्दी और उससे सिद्ध किये हुए तेल का, सेवन करने से और उसकी मालिश करने से वात के समस्त रोग मिटते हैं। विषम ज्वर और अर्दित में भी इसके सेवन से लाभ होता है।

आमवात—लहसन के एक तोला रस में गाय का एक तोला घी मिलाकर पीने से आमवात मिटता है।

बिच्छू का विष—लहसन और अमचूर को पीसकर लगाने से बिच्छू का विष उतरता है।

पागल कुत्ते का विष—लहसन को सिरके में पीसकर काटी हुई जगह पर लगाने से और लहसन का सेवन करने से पागल कुत्ते का विष उतरता है।

लकवा—लहसन का पाक बनाकर खाने से लकवा में लाभ होता है।

गठिया—लहसन के तेल की मालिश करने से गठिया और त्वचा की शून्यता मिटती है।

आधाशीशी—लहसन की कली को पीसकर कनपटी पर लगाने से आधाशीशी और दूसरे प्रकार के मस्तक रोग मिटते हैं।

त्वचा के रोग—राई के तेल में लहसन की कलियों को तलकर उस तेल का मर्दन करने से खुजली और दूसरे प्रकार के चर्मरोग मिटते हैं।

दमा—लहसन के रस को गरम जल के साथ लेने से दमे में लाभ होता है।

हूपिंग कफ—बच्चों को इसकी छिली हुई कलियों की माला पहनाने से और बच्चों की छाती पर इसके तेल की मालिश करने से हूपिंग कफ और दूसरी खाँसी में लाभ होता है।

कान का बहिरापन—लहसन की दो कलियों को सवा तोले तिल्ली के तेल में तलकर उसकी एक दो बूंद कान में टपकाने से कुछ दिनों में कान का बहिरापन मिट जाता है।

चोट और मरोड़—लहसन की कली को नमक के साथ पीसकर उसका पुल्टिस बाँधने से चोट और मरोड़ में लाभ होता है। इसकी पुल्टिस बाँधने से गठिया में भी लाभ होता है।

फोड़े—जिन फोड़ों में कीड़े पड़ जाते हैं उन पर लहसन लगाने से वे अच्छे हो जाते हैं।

गले के रोग—लहसन को सिरके में भिगोकर खाने से दुखते हुए गले की ढीली पड़ी हुई रगों का संकोचन होता है और शब्दवाहिनी नाड़ियों का ढीलापन मिट जाता है।

ज्वर—लहसन का प्रयोग करने से बार बार आनेवाला ज्वर छूट जाता है। शीत ज्वर के शीत को मिटाने के लिये इसके तेल की मात्रा दी जाती है।

लहसन के बाह्य प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि यह एक बहुत तीव्र जलन करनेवाली और चर्मदाहक वस्तु होती है। इसके लेप को अधिक समय तक रखने से शरीर पर छाला उठ जाता है और काफी वेदना होती है इसलिये कोमल स्वभाव के लोगों पर इसका लेप करते समय सावधानी रखना चाहिये।

लहसन एककली

नाम—संस्कृत—क्षुद्रलशुन। बंगाल—गंधुन। उर्दू—लहसुन। हिन्दी—एककली लहसन। गुजराती—एककलियो लसण। मराठी—एक कली लसूण। इंग्लिश—Shallot शेलोट। लेटिन—Allium ascalonicum (एलियम एस्कलोनिकम)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का लहसन होता है। इसके कन्द में सिर्फ एक ही कली रहती है। इसका पौधा लहसन के समान ही होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह एक उत्तम कामोद्दीपक वस्तु होती है। इसको घी में भूनकर शहद में मिलाकर खाने से प्रबल कामोद्दीपन होता है।

कर्णरोगों में भी यह वनस्पति लाभदायक होती है। इसका एक छोटा सा टुकड़ा कान के अन्दर रखने से कर्णशूल आराम हो जाता है।

गोल्डकास्ट में इसके कन्द को पीस कर ज्वर पीड़ित बच्चों के बदन पर मालिश करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इस उपचार से बच्चे ज्वर से बच जाते हैं।

सर्प-दंश और दूसरे विषों का निवारण करने के लिये भी इसको उपयोग में लिया जाता है।

लक्ष्मणा

नाम—संस्कृत—लक्ष्मणा, पुत्रदा, पुत्रकंदा, पुत्ररंजनी, पुत्रजननी, तूलिनी, नागिनी, नागपुत्री, पुच्छदा इत्यादि। हिन्दी—लक्ष्मणा, बनकलमी। बंगाल—वनकलमी। मराठी—आमटी, आमटीवेल। गुजराती—हनुमान वेल। कच्छ—रातीगुमड़ वेल। तेलगू—मेट्टातूती। अँगरेजी—Spotted Leaved Ipomaea (स्पाटेड लीव्ह्ड् इपोमिया)। लेटिन—Ipomaea sepiaria (इपोमिया सेपिएरिया)।

वर्णन—लक्ष्मणा के सम्बन्ध में चिकित्सक समुदाय के अन्दर बहुत बड़ा मतभेद है। आयुर्वेद की इस सुप्रसिद्ध वनस्पति का आधुनिक वैद्य समाज को अभी तक वास्तविक पता नहीं चल सका है। इस वनस्पति के सम्बन्ध में लोग तरह-तरह की अटकलें लगाते हैं। राजनिघंटु और धन्वन्तरि निघंटु के कर्ता ने सफेद फूलवाली कटेरी अथवा भोरींगणी के बीजों को लक्ष्मणा माना है। शालिग्राम निघंटु के कर्ता लिखते हैं कि इस वनस्पति की जड़ में एक सफेद रङ्ग का कन्द निकलता है इसके पत्ते चौड़े होते हैं और उन पर लाल चन्दन के समान बिन्दु लगे हुए रहते हैं। यह वनस्पति पहाड़ों के दुर्गम स्थानों में कहीं २ पैदा होती है और बड़ी कठिनाई से हाथ आती है। बंगाल के कविराज हरलाल गुप्त अपने ग्रन्थ में लिखते हैं कि लक्ष्मणा एक जाति का कन्द होता है जो हिमालय के अत्यन्त दुर्गम प्रदेशों में पैदा होता है। ऐसा सुनने में आता है कि इसके पत्ते रात्रि में दीपक के समान चमकते हैं और सूर्योदय होते ही सब पत्ते गिर जाते हैं। रात्रि में सब पत्ते नये फूटते हैं। इसके कन्द का आकार पुतली के समान होता है और उस पर लाल रङ्ग के छींटे पड़े हुए रहते हैं और इसमें बकरी के दूध के समान गन्ध आती है।

लेकिन गुजरात के सुप्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री जयकृष्ण इन्द्रजी और इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स् के रचयिता लेफ्टनेंट कीर्तिकर और मेजर वसु ने हनुमानबेल अथवा बनकलमी (Ipomaea sepiaria) को ही लक्ष्मणा माना है और उसी मत को मानकर हम भी यहाँ इसी नाम के नीचे इस वनस्पति का वर्णन दे रहे हैं।

अभिनव निघंटु में इस वनस्पति की पहचान बताते हुए लिखा है कि:—

पुत्रकाकार-रक्ताल्प-बिन्दुभिर्लाञ्छिता सदा ॥
लक्ष्मणा पुत्रजननी बस्तगन्धाकृतिर्भवेत् ॥
कथिता पुत्रदाऽऽख्यं लक्ष्मणा मुनिपुंगवैः ॥

अर्थात्—लक्ष्मणा, पुत्रजननी और पुत्रिका ये इसके संस्कृत के नाम होते हैं। इसकी आकृति और इसकी गन्ध बकरे के समान होती है और इसके पत्तों पर लाल रंग के खून के समान छींटे होते हैं।

बहुत से लोग सासपच्ची की मादा को भी लक्ष्मणा कहते हैं। अस्तु, हम जिस हनुमान बेल को लक्ष्मणा मानकर चले हैं उसके लक्षण इस प्रकार होते हैं।

यह एक जाति की बेल होती है जो प्रायः बारहों मास देखने में आती है। इसके पत्ते गिलोय के पत्तों की तरह होते हैं। पत्तों पर तथा उनकी बीच की नस के पास बेंगनी रंग के छींटे और धारियाँ होती हैं। कोई-कोई पत्ते तिकोने होते हैं और उन पर छींटे नहीं भी होते हैं। इसके फूल गुलाबी रंग के होते हैं और छोटे-छोटे गोलाई लिये हुए अन्वीदार होते हैं। हर एक फल में ४ खण्ड और चार बीज होते हैं। जिनमें दो दो बीज एक

सूक्ष्म और पतले तार से बँधे हुए रहते हैं। यह बेल काठियावाड़ में थूहर की बाढ़ों पर बहुत अधिक तादाद में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—निघंटु में इस वनस्पति के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

लक्ष्मणा मधुरा शीता स्त्रीबन्ध्यत्वविनाशिनी। रसायनकरी बल्या त्रिदोषशमनी परा॥

अर्थात्—लक्ष्मणाकन्द मधुर, शीतल, स्त्री के बन्ध्यत्व को हरनेवाला, रसायन, बलकारक और त्रिदोष को शान्त करने वाला होता है।

गुजरात में हनुमान बेल गर्भस्थान की शुद्धि के लिये उपयोग में ली जाती है और यह विश्वास किया जाता है कि यह वनस्पति गर्भस्थान के विकारों को मिटाकर उसको सन्तानोत्पत्ति के योग्य बना देती है।

इसके पत्तों को पीसकर देहाती लोग फोड़े फुन्सियों के ऊपर बाँधते हैं। इसका रस एक मूत्रल और बाधा नाशक वस्तु की तरह उपयोग में लिया जाता है।

संखिया के विष को नष्ट करने के लिये भी यह वनस्पति बहुत सफल और उपयोगी मानी जाती है।

इसकी एक सफेद फूलवाली जाति भी होती है और कई लोगों का विश्वास है कि वही वास्तविक लक्ष्मणा है।

लसोड़ा छोटा

नाम—संस्कृत—श्लेष्मान्तकः, शेलू, उद्दाल, भूकर्बुदार, लघु श्लेष्मान्तक। हिन्दी—लिसोड़ा, बड़गूंदा। बंगाल—चालतागाछ, बहुवड़ा, बोहोदरी, बोहरी। बम्बई—बड़गूंद, लेसरी, गेदुरी, भोकर। गुजराती—गूँदोमोटो, लेपिस्तां। बड़गूंदो। मराठी—बड़गूंद, भोकर। पंजाब—लेसवाड़ा। मारवाड़—बड़गूंदा, लिसोड़ा। उर्दू—लिसोड़ा सपिस्तां। फारसी—सपिस्तां। अंग्रेजी—Sebesten Plum (सेबेस्टन प्लम)। लेटिन—Cordia obliquus, C. myxa (कोर्डिया आँबलिकस, कोर्डियामिक्सा)।

वर्णन—लिसोड़े के वृक्ष मध्यम कद के होते हैं। इसके पिंड की गोलाई ४ से लेकर ६ फुट तक की होती है। इसकी फैली हुई और ऊँची बहुत सी शाखें होती हैं। इसकी छोटी शाखाएँ कुछ ललाई लिये हुए भूरे रङ्ग की होती है इसकी छाल एक इंच मोटी हलके भूरे रङ्ग की, खरदरी और कभी-कभी कुछ काले रंग की होती है। इसके छोटे पत्ते चिकने होते हैं जो पूरे बढ़ने पर थोड़े बहुत खरदरे हो जाते हैं। इसके फूल सफेद रंग के गुच्छों में लगते हैं और इसके फल झूमकों में लगते हैं। ये कच्ची हालत में हरे और पकने पर भूरे हो जाते हैं। इन फलों के भीतर लुआब भरा हुआ रहता है। फागुन और चैत में इसके फूल लगते हैं। वैशाख से आषाढ़ तक इसके फल पकते हैं। इस वृक्ष में एक प्रकार का गोंद भी लगता है। इसके मगज में से तेल निकाला जाता है जो सूंघने और लगाने के काम में आता है। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेद मत से लिसोड़े का फल कुछ मीठा, कुछ शीतल, कृमिनाशक, कफनिस्सारक, संकोचक और फेफड़े की सब प्रकार की बीमारियों में बहुत उपयोगी होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल गर्मी और सरदी में मातदिल होता है। यह निमोनिया और सन्निपात के अन्दर लाभदायक होता है। निमोनिया में इसको देने की विधि इस प्रकार है। ९ दाने सपिश्ता को लेकर आधा पाव पानी में जोश दें। जब तिहाई पानी शेष रह जाय तब उसको छानकर ३ तोले गरम घी और ३ तोले मिसरी मिलाकर उँगली से हिलाकर पी लें।

सपिश्ता पेट को मुलायम और फेफड़े को साफ करता है। इससे दस्त साफ होता है। यह कफ को छाँट कर निकाल देता है। पित्त के विकार को दस्त की राह से निकाल देता है। पित्त और खून की गरमी को दूर करता है। प्यास और पेशाब की जलन को मिटाता है। आँतों की खराश को दूर करता है। दमा सूखी खाँसी और सीने के दर्द में लाभ पहुँचाता है। मेदे के कृमियों को नष्ट करता है। शरीर की भीतर से शुद्धि करता है। जुलाब की तेजी और उनसे पैदा होनेवाली घबराहट को दूर करता है। जिनकी प्रकृति गर्म होती है उनके लिये मृदुविरेचक पदार्थ का काम करता है। अगर पित्त, कफ, खून तीनों के विकार से ज्वर आने लगे तो इसको देने से बड़ा लाभ होता है।

जुकाम में इसके पेड़ के ४-५ कोंपलों को बारीक कतर कर रात में पानी के अन्दर भिगोकर प्रातःकाल उनको मल छान कर पीने से लाभ होता है। इससे प्रमेह, मसाने का जखम और बार-बार पेशाब का आना बन्द हो जाता है। इसके पेड़ की सूखी हुई छाल को जलाकर उसकी राख को अग्नि से जले हुए स्थान पर लगाने से फायदा होता है।

जावाद्वीप में इसकी छाल का काढ़ा जीर्ण ज्वर के अन्दर तथा शक्ति बढाने के लिये दिया जाता है। इसी के फलों का काढ़ा खाँसी में कफ को ढीला करने के लिये, पेशाब की जलन को कम करने के लिये और अतिसार को दूर करने के लिये दिया जाता है। इससे आँतों को उत्तेजना मिलती है।

इसकी छाल का रस नारियल के तेल के साथ मिलाकर उदरशूल (Gripes) को दूर करने के लिये दिया जाता है। इसकी छाल और इसके कच्चे फल हलके पौष्टिक पदार्थ की तरह उपयोग में लिये जाते हैं। इसकी गुठली की मगज दाद की एक उत्तम औषधि है। इसको पीसकर लेप करने से दाद मिट जाता है। व्रण और मस्तकशूल पर इसके पत्तों का लेप करने से लाभ होता है।

संथाल जाति के लोग इसकी छाल के चूर्ण को एक विशेष प्रकार की खुजली (Prurigo) पर लेप करने के काम में लेते हैं।

सुश्रुत और वाग्भट के मतानुसार इस वृक्ष का हर एक हिस्सा साँप और बिच्छू के विष में लाभदायक होता है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार इसका हर एक हिस्सा सर्प के विष में निरुपयोगी होता है।

उपयोग—सूखी खाँसी—सपिश्ता के फलों का क्वाथ बनाकर पिलाने से सूखी खाँसी मिटती है।

अतिसार—गुठली निकाले हुए सूखे गून्दे का चूर्ण करके खिलाने से अतिसार मिटता है।

मूत्रकृच्छ्र—गून्दे के कच्चे फलों का लुआब सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

घाव—इसके पत्तों की राख को घी में मिलाकर लगाने से घाव भर जाता है।

बदगांठ—इसके पत्तों को गरम करके बदगांठ पर बाँधने से वह बैठ जाती है।

लिसोड़ा बड़ा

नाम—संस्कृत—बहुवर्का, भूतद्रुमा भूतवृक्षा, द्विज कुत्सित, गन्धपुष्प, सेलू, श्लेष्मांतक, इत्यदि। हिन्दी—बड़ा लिसोड़ा। बंगला--बहुबड़ा, बोहोदरी। बम्बई—बड़गून्द, मोटाभोकर। गुजराती—बड़गून्दी, पिस्तान, सपिस्तान। तामील—अलि, नमाविरी। तेलगू—नेक्केरा। फारसी—सपिश्ता। अम्बी—मोखताह। इंग्लिश—Large Sebesten। लेटिन—Cordia wallichii (कोर्डिया वेलिचि)।

वर्णन—यह लिसोड़े की एक बड़ी जाति होती है। इसका वृक्ष लिसोड़े की तरह ही होता है। मगर इसके फल उससे कुछ बड़े होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका पौधा कड़वा, मीठा, कसेला और अग्निवर्द्धक, कृमिनाशक, केशों को हितकारी, पाचक तथा शूल, आमरक्त, विस्फोटक, व्रण, पित्त, विसर्प और सब प्रकार के विषों को हरनेवाला होता है। इसके कच्चे फल शीतल, मधुर, कड़वे, हलके, कसेले, वातवर्द्धक, पित्त को शान्त करनेवाले, रुचिकारक, ग्राही और रुधिर विकार, नेत्र विकार तथा कफ को नष्ट करनेवाले होते हैं। इसके पके हुए फल मधुर, चिकने, शीतल, पौष्टिक, ग्राही, रूखे, भारी, वातनाशक, पित्तनिवारक और रुधिर विकार को दूर करनेवाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ का काढ़ा मुखशोथ के अन्दर कुल्ले करने के काम में लिया जाता है। इसके पत्ते कामोद्दीपक होते हैं और ये सुजाक के अन्दर काम में लिये जाते हैं। इन पत्तों की राख घाव को भरने वाली होती हैं और इस राख के पानी से आँखों को धोने से आँख की जलन शान्त होती है। इसके फल मीठे, मूत्रल, कृमिनाशक और ज्वर को दूर करनेवाले होते हैं। ये छाती और गले की सूजन, सूखी खाँसी, ज्वर की खराबी, प्यास, पित्तविकार और कंठनाली के प्रदाह में उपयोगी होते हैं। मूत्रकृच्छ्र और पेशाब की जलन में भी ये बहुत उपयोगी होते हैं।

सिंध में इसका फल एक संकोचक, कफनिस्सारक और शान्तिदायक पदार्थ की तरह उपयोग में लिया जाता है। इसके कच्चे फल का लुआब सुजाक के अन्दर लाभ पहुँचाता है।

कोमान का कथन है कि वनस्पति ब्रोंकाइटीज या वायुनलियों की विकृति में तथा पेशाब के साथ होनेवाली जलन में उपयोगी मानी जाती है। हमने इसके फल का काढ़ा ब्रोंकाइटीज के कुछ बीमारों पर उपयोग में लिया मगर उसका परिणाम असन्तोषजनक रहा।

उपयोग—पागल कुत्ते का विष—इसके १ तोले पत्ते और १५ काली मिरचों को पीस छानकर पिलाने से पागल कुत्ते के विष में लाभ होता है।

गुदा से काँच निकलना—गुदा पर घी चुपड़कर गूँदे की भस्म भुरभुराने से काँच का निकलना बंद हो जाता है।

कंठमाला—गूँदे के कोमल पत्तों को आगपर तपाकर कंठमाला पर बाँधने से १० दिन में कंठमाला मिटती है।

अतिसार—इसकी कोंपलों को पीसकर उसकी गोलियाँ बनाकर देने से अतिसार मिटता है।

मूत्रातिसार—इसके कोमल पत्तों का १ तोला लुआब निकाल कर उसमें शक्कर मिलाकर पीनेसे मूत्रातिसार मिटता है।

जुकाम—गूँदे की छाल का क्वाथ बनाकर पिलाने से जुकाम मिटता है।

मूत्रकृच्छ्र और पथरी—गूँदे की छाल का हिम बनाकर उसमें मिश्री मिलाकर पीने से मूत्रकृच्छ्र और पथरी मिटती है।

पेट की कठोरता—गूँदे के पत्तों को तेल में चुपड़ कर उनको गरम करके पेट पर बाँधने से बादी से कठोर पड़ा हुआ पेट मुलायम हो जाता है।

ज्वर—इसकी छाल को औटा कर पिलाने से ज्वर छूटता है।

खुजली—इसकी छाल को पीसकर लेप करने से खुजली मिटती है।

पेट की मरोड़ी—गूँदे की छाल का रस और नारियल का तेल मिलाकर पिलाने से पेट की मरोड़ी मिट जाती है।

दाद—गूँदे की मगज को पीसकर लेप करने से दाद मिटते हैं।

मसूड़ों की कमजोरी—इसके क्वाथ से कुल्ले करने से मसूड़े दृढ़ हो जाते हैं।

मूत्रनाली की जलन—इसके फलों के लुआब में मिश्री मिलाकर पिलाने से मूत्राशय और मूत्र-नाली की जलन मिटती है।

मुजिर—सर्दिशतं ठण्डी प्रकृतिवाले लोगों को और हृदय रोगवालों को हानिकारक होता है। यह मेदे को ढीला करता है।

दर्पनाशक—आँवला, गुलाब का फूल और उन्नाब।

प्रतिनिधि—खतमी और उन्नाव। **मात्रा**—८ दाने से २० दाने तक।

लाख

नाम—संस्कृत—लाक्षा, अलक्तः, रक्ता, पित्तारि, कृमिजा, रंगमाता इत्यादि। हिन्दी—लाख, लाही। बंगाल—लाही, गाला। मराठी—लाख। गुजराती—लाख। अंगरेजी—Shellac। लेटिन—Cocus lacca (कोकस लेका)।

वर्णन—लाख नामक उपयोगी पदार्थ भारतवर्ष में कई प्रकार के वृक्षों पर पाया जाता है। चिपकने वाले लसलसे पदाथ राल के रूप में यह वृक्ष की पतली टहनियों पर देखा जाता है।। यह एक प्रकार के छोटे से कीड़े के कौशल से पैदा होता है। वैसे तो भारतवर्ष में ४०-४१ प्रकार के वृक्षोंपर लाख जमती है पर विशेष रूप से यह ढाक या पलाश के वृक्षों पर जमती है। भारत के प्राचीन साहित्य में पलाश का पर्यायवाची शब्द ही लाक्षातरु है। चिकित्सा शास्त्र की अपेक्षा औद्योगिक दृष्टि से लाख का महत्त्व बहुत अधिक है। लाख का व्यवसाय भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से जब कि दुनिया की सभ्यता जाग्रत भी नहीं हुई थी चला आ रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि भारत में लाख का उद्योग अत्यन्त प्राचीनकाल से श्रृङ्खलाबद्ध रूप से चला आ रहा है। महाभारत के समान प्राचीन ग्रंथ में भी लाक्षा भवन की चर्चा आई है।

भारत के इस प्राचीन उद्योग धंधे की ख्याति अन्य विदेशों में कब और कैसे पहुँची इसका कोई विश्वसनीय प्रमाण तीसरी शताब्दी के पूर्व का नहीं मिलता। पर सन् २५० ईसवी में एलियन नामक पाश्चात्य विद्वान ने सब से पहिले इसकी चर्चा की है। इसने लिखा है कि भारत में एक ऐसा भी कीड़ा होता है जो रङ्ग के काम में आने वाले पदार्थ को पैदा करता है। इसके बाद शताब्दियों तक इतिहास में लाख की कहीं चर्चा तक नहीं मिलती। हाँ आइने अकबरी में लाख और लाख के सहयोग से तैयार की जानेवाली बारनिश का जिकर जरूर आया है। सन् १४९० ईसवी में सम्राट अकबर ने दरवाजों और राजप्रसाद के फाटकों पर पोती जानेवाली लाख की बारनिश के सम्बन्ध में नियम बनाये थे। इसके कुछ ही समय बाद पुर्तगाल के सम्राट ने जान ह्यु गलेन बानलिन्योटन नामक एक डच जानकार को लाख की वैज्ञानिक खोज करने के लिये भारत भेजा था। इसने अपने अनुभव सन् १५९८ ईसवी में पुस्तकाकार प्रकाशित किये। आबूहनीपा नामक एक जानकार ने लाख को औषधि के काम में लाने की सलाह दी है। डाक्टर केयर ने सन् १७८१ ईसवी में लाख के कीड़ों का विस्तृत विवरण प्रकाशित कराया था। सन् १७९० ईसवी में वनस्पति शास्त्री डाक्टर राक्सबर्ग ने इन कीड़ों का जीवन वृत्तान्त लिखा था। सन् १८६१ ईसवी में डाक्टर कार्टन ने इन कीड़ों की शरीर रचना पर प्रकाश डाला था। इस प्रकार भारतवर्ष की यह प्राचीन वस्तु धीरे-धीरे विदेशियों की जानकारी में आई और आज तो इस वस्तु की इतनी उपयोगिता है कि बिजली के सामान में, बारनिश के काम में, ग्रामोफोन के रेकार्ड में, बीमा पार्सल की मोहर में, लीथो स्याही में, नकली रबर की ढलाई में, बटन और जूतों के साज में, इत्यादि अनेक कामों में लाख का उपयोग होता है।

लाख से चपड़ा तैयार करने की विधि—उत्तम और स्वच्छ लाख जो देखने में मसूर की दाल के समान चमकदार होती है। उससे चपड़ा तैयार किया जाता है। पहिले इस चाँवरी लाख को धूप में सुखाकर साफ की जाती है। इसके बाद हरताल को पीसकर पानी में मिलाकर इसी साफ चाँवरी लाख पर छिड़कते हैं और लाख को मसल-मसल कर छिड़की हुई हरताल को सब जगह बराबर कर दिया जाता है। एक मन लाख पर करीब पाव भर से लेकर आधा सेर तक हरताल देते हैं। लाख में हरताल मिलाकर चपड़ा बनाने से चपड़े का रंग सोने के समान पीला और चमकदार दिखाई देता है।

चपड़ा बनाने के लिए एक विशेष प्रकार की थैली तैयार की जाती है जिसकी लम्बाई ३० से लेकर ३५ फीट तक की होती है इसका मुँह ३ इंच तक चौड़ा होता है। यह दोहरे कपड़े का होता है। हरताल मिली हुई चाँवरी लाख को इसी लम्बी थैली में भर दिया जाता है और फिर यह भरी हुई थैली एक बड़ी भट्टी के पास रक्खी जाती है। भट्टी ४ फीट लम्बी और अण्डाकार होती है। इसमें धधकता हुआ कोयला भरा रहता है। इसी धधकती हुई भट्टी के सामने चपड़ा बनानेवाला कारीगर लाख से भरी हुई लम्बी थैली को हाथ में लेकर बैठता है और चतुराई से थैली को घुमा-घुमाकर उसके अन्दर की लाख को पिघलाता है और साथ ही थैली को निचोड़-निचोड़ कर पिघली हुई लाख को थैली से बाहर टपकाता जाता है। दूसरा आदमी जो वहाँ उपस्थित रहता है निचोड़कर निकाली गयी लाख को एक मिट्टी के चिकने बर्तन में भरता है। इस बर्तन में गर्म पानी भरा रहता है। अतः पिघली लाख गुड़ की पात के समान कुछ ऐंठ-सा जाता है। पानी से लाख के पत्तर को निकाल कर भट्टी के सामने चद्दर की भाँति हाथ और पैर की सहायता से खींच-खींचकर बढ़ाया जाता है। इस क्रिया से बड़े-बड़े पतले तख्ते तैयार हो जाते हैं। इसी का नाम चपड़ा होता है। ४० सेर लाख में २० सेर चपड़ा बनता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से लाख शरीर के वर्ण को उज्ज्वल करनेवाली, शीतल, बलकारक, स्निग्ध, कसेली, हलकी तथा कफ, रक्तपित्त, हिचकी, खाँसी, ज्वर, व्रण, उरःक्षत विसर्प, कुष्ठ, कृमि, विष, रक्तदोष और विषम ज्वर को हरनेवाली होती है।

लाख कड़वा, कसेली, टूटी हड्डी को जोड़नेवाली, स्निग्ध, हलकी, बलकारक, शीतल, वर्णकारक तथा कफ पित्त, विष, रक्तविकार, हिचकी, खाँसी, ज्वर, विषमज्वर, उरःक्षत, बिसर्प, नाक के रोग, कृमि, कोढ़, व्रण, चर्मरोग और दाह को दूर करनेवाली होती है।

लाख या महावर रजोरोधक और रक्तपित्त, क्षय, प्रदर और रक्तातिसार को दूर करनेवाली होती है। लाख, पलाश, पीपल, बेर, सीसम इत्यादि अनेक वृक्षों पर होती है। लेकिन चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से सबसे श्रेष्ठ लाख पीपल की होती है।

उपयोग—नारू—नारू की सूजन को मिटाने के लिये लाख और देशी साबुन को पीसकर गर्म कर के लेप करना चाहिये।

मासिक धर्म की अधिकता—लाख के चूर्ण और शक्कर की फक्की देने से कफ के साथ रुधिर का आना और मासिक धर्म में प्रमाण से अधिक रुधिर का निकलना बन्द हो जाता है।

रक्तपित्त—लाख के चूर्ण को शहद और दूध में पिलाने से रक्तपित्त मिटता है।

रक्तप्रदर—लाख के चूर्ण को घी के साथ चाटने से रक्तप्रदर मिटता है।

वमन—लाख के चूर्ण को घी, शहद और दूध के साथ फक्की लेने से शोष रोग से पैदा हुई वमन मिटती है।

हिचकी—दूध के साथ लाख की नस्य लेने से हिचकी मिटती है।

रुधिर की वमन—लाख का पानी बनाकर उसमें शहद मिलाकर पिलाने से रुधिर की वमन बन्द होती है।

लांगुलीलता

नाम—बंगाल—लांगुलीलता। तामील—पुल्लिचोवड़ी। तेलगू—मेकामाडुग्गु। अंगरेजी—Tiger's foot। लेटिन—Ipomoea pestigrides (इपोमिया पेस्टिग्रिडिस)।

वर्णन—इस वनस्पति का पौधा झाड़ीनुमा और रुएँदार होता है। इसके पत्ते ३–८ से लेकर १० सेंटिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल बिना डंठल के होते हैं। इसके बीज भूरे और चमकीले होते हैं। यह वनस्पति कम ज्यादा मात्रा में सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ एक विरेचक द्रव्य की तरह काम में ली जाती है। इसी प्रकार यह कारबंकल, विस्फोटक और बालतोड़ पर भी उपयोग में ली जाती है। पागल कुत्ते के विष के इलाज में भी इसका उपयोग होता है।

लास

नाम—

वर्णन—लास। लेटिन—Porphira vulgaris (पोरफिरा व्हलगेरिस)।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति शांतिदायक, धातुपरिवर्तक और कंठमाला रोग में उपयोगी होती है।

लाल मुरगा

नाम—संस्कृत—झण्डु, स्थूलपुष्प। हिन्दी—लाल मुरगा, मखमली कलगा। मराठी—झेंडू, मखमाल। गुजराती—मुखमल, गुलझारी। बङ्गला—गेंदा। बम्बई—गुलजाफरी, मखमाल। पंजाब—सदबर्गी, मेनतोक, टाँगला। उर्दू—गेंदा। फारसी—सदाबर्ग, काजेखरूस। अरबी—हमाहम। अंग्रेजी—Freneh Marigold (फ्रेञ्च मेरीगोल्ड)। लेटिन—Tagetes erecta (टेगेटीस इरेक्टा)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी क्षुप होता है। यह विशेष रूप से पंजाब और सिन्ध के बगीचों में लगाया जाता है। इसके फूल बड़े २ और पीले रंग के होते हैं। इसमें कुछ अफीम के समान गन्ध आती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से लाल मुरगा चरपरा, कसैला तथा ज्वर, भूत और ग्रह की पीड़ा को दूर करनेवाला होता है।

इसके अन्दर अंग्रेजी दवा 'आर्निका' के समान सूजन को नष्ट करनेवाला तथा रक्तसंग्राहक धर्म रहता है। इसके फूलों की पंखड़ियों को छः माशे से एक तोले तक की मात्रा में बवासीर का खून बन्द करने के लिए देते।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते बवासीर, गुर्दे के रोग और मांसपेशियों की वेदना में लाभ पहुँचाते हैं। इनका रस कर्णशूल और नेत्ररोग में टपकाने से लाभ होता है। इसके फूल कड़वे, संकोचक, शांतिदायक

और अग्निवर्द्धक होते हैं। ये दाँत और मसूड़ों की बीमारियों में लाभ पहुँचाते हैं, सूजन को दूर करते हैं तथा खुजली, यकृत के रोग, खूनी बवासीर और साँप तथा बिच्छू के विष में लाभ पहुंचाते हैं।

इसके पत्ते विस्फोटक और कारबंकल पर लगाने के काम में लिये जाते हैं और इनका रस कर्णशूल में कान के अन्दर टपकाया जाता है। इसके फूल नेत्र रोग और हठीले व्रण पर बाह्य प्रयोग में और खून को साफ करने के लिए और बवासीर का खून बन्द करने के लिए पिलाने के काम में लिये जाते हैं।

लिबिडिबी

नाम—बम्बई—लिबिडिबी। दक्षिण—अमरीकाकासुमाक। कनारी—दिविदिवी। तेलगू—दिविदिवी। तामील—तिवीदिवी। अरबी-सुमाके मरीकाह। इंग्लिश—Dividivi। लेटिन—Caesalpinia coriaria (केसलपीनिया कोरिएरिया)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते जुड़मा लगते हैं। इसके फूल छोटे, हलके पीले या हलके हरे, मीठी खुशबूवाले और इसकी फलियाँ आड़ी, मुड़ी हुई और कांटेदार होती हैं। इसकी छाल चमड़ा रंगने के काम में आती है। यह वनस्पति पश्चिमी भारत में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी फलियाँ संकोचक, पौष्टिक और पर्यायिक ज्वरों को दूर करनेवाली होती है और इसकी छाल एक प्रभावशाली संकोचक वस्तु होती है। इसकी अखंड फलियों का चूर्ण पाली के बुखार में दिया जाता है। इसकी फलियों के काढ़े से एनिमा लेने से खूनी बवासीर सूख जाते हैं। जीर्णज्वर में दस्तों को बन्द करने के लिये इसकी छाल का काढ़ा दूसरे सुगंधित द्रव्यों के साथ दिया जाता है। इसकी छाल ज्वरनाशक होती है और जीर्णज्वर में इसका उपयोग किया जाता है।

मात्रा—इसकी फलियों की और इसकी छाल की मात्रा १ से लेकर ३० रत्ती तक की होती है।

लिंबाड़ा

नाम—बम्बई—लिंबाड़ा। बंगाल—चेर्नेजी, कपियाकुशी। मराठी—गुंदीड़ा। अलमोड़ा—वनरीठा। नेपाल—अखटरुआ। लेटिन—Heynea trijuga (हेनिया ट्रिजुगा)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते जोड़े में लगते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं। यह वनस्पति हिमालय और खासिया पहाड़ियों में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी छाल और पत्तों में कड़वे और पौष्टिक पदार्थ रहते हैं। मलाया के अन्दर चोर लोग इसके फलों को दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर लोगों को बेहोश और मूर्छित करने के काम में लेते हैं।

लीनपिन

नाम—बरमा—लिनपिन, लेनपेन। लेटिन—Terminalia pyrifolia (टर्मिनेलिया पायरीफोलिया)।

वर्णन—यह अर्जुन के वर्ग का एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है जो बरमा में पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—केस, महस्कर और इसाक के मतानुसार इस वृक्ष की छाल एक उत्तम, बलवान् हृदय को उत्तेजना देनेवाली वस्तु होती है।

लीची

नाम—हिन्दी—लीची। बम्बई—लीची। इंग्लिश—Litchi। तामील—लीची। उर्दू—लिचुर। लेटिन—Litchi chinensis (लीची चाइनेंसिस)।

वर्णन—यह एक हमेशा हरा रहनेवाला छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते एक के पश्चात् एक लगते हैं। इसके फूल कुछ हरे रङ्ग के होते हैं। इसके फल भूरे रङ्ग के अखरोट से कुछ बड़े होते हैं। इसके ऊपर

पतला छिलका रहता है। इस छिलके को निकाल देने पर भीतर से मुर्गी के अण्डे के आकार का सफेद रंग का फल निकल जाता है। इस फल का गूदा बहुत मीठा और स्वादिष्ट होता है। हर एक फल के अन्दर एक बड़ा भूरे रंग का बीज निकलता है। इस फल का मूल उत्पत्ति स्थान चीन है। मगर आज कल भारतवर्ष में बहुत बड़े पैमाने पर इसकी खेती होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत—यूनानी मत से इसके फल में गुलाब के फूल के समान मधुर और मीठी खुशबू आती है। इसका फल हृदय, मस्तिष्क और यकृत को शक्ति देनेवाला होता है। यह प्यास को बुझाता है। शरीर के लिए यह एक उत्तम स्वास्थ्यवर्द्धक वस्तु होती है।

इण्डोचायना में इसके फल के छिलके को पीसकर उसको अलकोहल में मिलाकर आँतों की शिकायतों को दूर करने के लिये देते हैं। इसका कच्चा फूल बच्चों को होनेवाली शीतला की बीमारी में दिया जाता है। इसकी जड़, छाल और फूलों का काढ़ा गले के विकारों को दूर करने के लिये कुल्ले करने के काम में लिया जाता है।

इसके बीज वेदनाशक होते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार की स्नायविक वेदनाओं को दूर करने के लिये और अण्डकोष की जलन को दूर करने के लिये मलाया में इनका उपयोग किया जाता है।

लीलकण्ठी

नाम—नागपुरी—लीलकंठ, नीलकंठ। गुजराती—राती भोंयशण। लेटिन—Polygala crotalarioides (पोलिगेला क्रोटेलेरिआईडस)।

वर्णन—इस वनस्पति के पौधे बरसात में बहुत पैदा होते हैं। इसके पौधे आधे से लेकर १॥ फुट तक लम्बे होते हैं। इसके पत्ते और फूल सन के पत्ते और फूलों की तरह होते हैं। इस सारे पौधे के ऊपर सफेद रंग का रुआँ होता है। यह वनस्पति कच्छ-काठियावाड़, शिमला सिकिम और खासिया पहाड़ी में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इस वनस्पति के पत्तों का लेप नारू की सूजन पर किया जाता है। इनकी जड़ों को इमली के साथ पीसकर जहरी जानवरों के डङ्क पर लगाया जाता है। इसके पौधे को औटाकर उसकी भाप ज्वर वाले को दी जाती है।

मुण्डा जाति के लोग इसकी जड़ों को पानी के साथ पीसकर पीते हैं जिससे गले का कफ बाहर निकल जाता है।

पहाड़ी लोग कफ ज्वर के अन्दर कफ को पतला करने के लिये और वमन लाने के लिये इसके पञ्चांग का काढ़ा बनाकर देते हैं।

सर्पविष के अन्दर भी इसकी जड़ें उपयोगी मानी जाती है।

लीलजहरी

नाम—उत्तर पश्चिमी प्रान्त—लीलजहरी। काश्मी—काओ अशुद। पुस्तु—ममीरा। लेटिन—Geranium wallichianum (जेरेनियम वेलिचिएनम्)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी वनस्पति होती है इस वनस्पति पर रुआँ होता है। यह वनस्पति काश्मीर, गढ़वाल, नेपाल, सिकिम, कुर्रमव्हेली और खासिया पहाड़ियों में पैदा होती है।

इस वनस्पति के अन्दर संकोचक तत्त्व रहते हैं। इसकी जड़ को पीसकर नेत्रों के ऊपर लेप करने से नेत्रों की सूजन उतर जाती है। अतिसार, रक्तस्राव, सुजाक, श्वेतप्रदर और दन्तशूल पर भी इसका उपयोग किया जाता है।

लुकाट

नाम—हिन्दी—लुकाट, लोगाट। उर्दू—लखोटा। तामील—नकोटा। इंग्लिश—Loquat। लेटिन—Eriobotrya Japanica (इरियोबोट्रिया जापानिका)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का हमेशा हरा रहनेवाला फलदार वृक्ष होता है। इसके पत्तों पर बहुत मुलायम

हुआँ रहता है। ये पत्ते ६ से लेकर ८ इञ्च तक लम्बे और १॥ से ३ इञ्च तक चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के और सुगन्धित होते हैं। इसके फल पकने पर पीले रंग के मीठे और पतले छिलके वाले होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल कच्चो हालत में खट्टा और पक्की हालत में मीठा होता है। यह ज्वरनाशक, उपशामक, वमन में लाभदायक और प्यास को दूर करनेवाला होता है। इसका निर्यास प्रवाहिका रोग में बहुत लाभ करता है और इसका टिंक्चर अपचन रोग की बीमारी में दिया जाता है।

इसके पत्ते संकोचक होते हैं और इनका उपयोग प्रवाहिका को दूर करने के लिये किया जाता है।

इसके फूल कफनिस्सारक होते हैं और चीन में इनका उपयोग खाँसी, दमा, राजयक्ष्मा और संन्यास रोग में किया जाता है।

लुनिया छोटा

नाम—संस्कृत—लोणी, क्षुद्रलोनिका, लघुलोनिका। हिन्दी—छोटा नोनियाँ, छोटा लूणिया, खाटी भाजी, लोनियाँ। मराठी—भुइंघोढ़, चनलइकी भाजी, चवली, गोलकी भाजी। गुजराती—झीनीलूनी। मद्रास—सिरुपलई। बम्बई—चवलकी भाजी, कोटा। पोरबन्दर—घाघी। झिनकी लूणी। पञ्जाब—लूनक, लूनकी बूटी, हकशा। तामील—पसलई किरलई। तेलगू—गोड्डुवेली, कुग, पवली। मारवाड़ी—लुणक्यो। लेटिन—Portulaca quabriffba (पोर्चूलेका क्वाड्रिफिडा)।

वर्णन—यह एक तरकारी होती है जो भारतवर्ष में सभी ओर पैदा होती है और सभी जगह खाने के काम में ली जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से यह वनस्पति तूरी, कड़वी, पित्तजनक, सारक, कफकारक, जीर्णज्वरनाशक और श्वास, खाँसी, वायगोला, प्रमेह और सूजन को दूर करनेवाली है। यह वात विनाशक, धातुपरिवर्तक, उष्णवीर्य, खट्टी तथा नेत्ररोग, चर्मविकार और व्रण को नष्ट करती है।

एन्सली के मतानुसार इसके कुचते हुए ताजे पत्ते, तामील वैद्यों के द्वारा नेत्ररोगों और श्लीपद में काम में लिये जाते हैं। इसका शीतनिर्यास मूत्रशूल में मूत्रल वस्तु की तौर पर काम में लिया जाता है।

गोल्डकास्ट में यह वनस्पति दाँतों के दर्द में उपयोगी समझी जाती है।

पूर्वी अफ्रिका में इस वनस्पति का काढ़ा कृमिनाशक माना जाता है। वहाँ पर इसे पेट की शिकायतों और सुजाक पर भी काम में लेते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—इसके पत्तों के रासायनिक विश्लेषण से इसमें एक प्रकार का लुआब और पोटेशियम ऑक्झेलेट पाया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति गुर्दे के रोगों में, चर्मरोगों में, मूत्ररोगों में और फेफड़े के रोगों में उपयोगी है।

उपयोग :—विसर्प रोग और अन्य चर्मरोग—इसके ताजे पत्तों को कुचलकर विसर्प रोग, खुजली तथा अन्य प्रकार के चर्मरोगों में लगाने से, लाभ होता है।

गुर्दे के रोग—यह एक मूत्रल औषधि है। इसका शीतनिर्यास देने से पेशाब अधिक होकर गुर्दे और मूत्राशय की पीड़ायें मिटती हैं।

पित्तशोथ—मुँह की ओर से सिर की ओर बढ़नेवाले जलयुक्त पित्त की सूजन पर इसके ताजे पत्तों का लेप करने से फायदा होता है।

ज्वर—ज्वर के तीव्र बेग में इसके पत्तों का हिम पिलाना चाहिये।

सिरदर्द—इसके पत्तों का कनपटी पर लेप करने से गर्मी से होनेवाली सिर की पीड़ा मिटती है।

रुधिर का थूँकना—इसके पत्तों का अर्क पिलाने से रुधिर का थूँकना बन्द हो जाता है। इसके पंचांग का शीतनिर्यास मूत्राशय का दाह, मूत्राघात, मूत्र के साथ रुधिर का आना, रुधिर की वमन, रुधिर का थूँकना और मूत्रकृच्छ्र में लाभदायक होता है।

दस्त की बार बार शंका होना—इसके बीजों की फक्की लेने से अँतड़ियों की ऐंठन मिटकर बार-बार दस्त की शंका होना बन्द हो जाता है।

बुखार की गर्मी—बुखार की भयंकर गर्मी को दूर करने के लिये बरफ की जगह इसके पत्तों का लेप करने से भी काम चल जाता है।

मुहाँसे—इसके बीजों को गाय के दूध के साथ पीसकर मलने से मुहाँसे मिटते हैं।

लुदुत

नाम—पंजाब—लुदुत। लेटिन—Codonopsis ovata (कोडोनापूसिस ओव्हेटा)।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से लेकर गढ़वाल तक ८ हजार फीट से १२ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—एटचिसन के मतानुसार इसकी जड़ और पत्तों का पुल्टिस बनाकर व्रण, जखम और चोट के ऊपर बाँधने के काम में आता है।

लूयून

नाम—मलाया—लूयून। लेटिन—Mylitta lapidescens (मायलिटा लेपिडिसेन्स)। तामील—करोम्पल्लमम्।

वर्णन—यह जमीन पर पैदा होनेवाली छत्रक वर्ग की वनस्पति होती है। यह त्रावनकोर और तिनेवेल्लिकी चूने की टेकरियों पर पैदा होती है। जंगली लोग त्रिवेन्द्रम के बाजार में इसको बेचने के लिये लाते हैं। इसका काले रंग का एक छोटा कन्द होता है। यह ताजी हालत में मोम के समान मुलायम लेकिन सूखने पर कठिन हो जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति मूत्रल होती है। चीन में यह मृगी, हैजा और बच्चों को होनेवाली स्नायुजाल सम्बन्धी बीमारियों में उपयोग में ली जाती है। त्वचा में रहनेवाले परोपजीवी कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये भी इसका उपयोग होता है।

ल्यूबिसफरम्यून

नाम—हिन्दी—ल्यूबिसफरम्यून। लेटिन—Litospermum officinale (लिथोसपरमम ऑफिसीनेल)।

वर्णन—यह वनस्पति काश्मीर में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इस वनस्पति के बीज पथरी को नष्ट करनेवाले और उत्तम मूत्रल होते हैं।

लेंडो

नाम—पञ्जाब—लेंडो। लेटिन—Solenanthus Sp. (सोलेनेन्थस एस् पी)।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति फोड़ों को पकाने के लिये लगाने के काम में ली जाती है।

लोखंडो (कटकुड़ा)

नाम—मराठी—लोखंडी, कटकुड़ा। तामील—माशाग्नि, उदाप्पु। लेटिन—Ixora nigricans (इक्सोरा निग्रीकेन्स)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्ते अतिसार को नष्ट करनेवाले होते हैं।

लोटलोटी

नाम—हिन्दी—लोटलोटी, कुंजुया। बंगाळ—कुंजिया। बंबई—तापकोट। मराठी—लीची, राम कोपासी। काठियावाड़–बगडाऊभिंडो। तामील–ओटादि। तेलगू–नाल्लावेडा। लेटिन–Urena sinuata (यूरेना सिन्यूएटा)।

वर्णन—इस वनस्पति के पौधे १॥ लेकर २ फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते ५ कोनेवाले होते हैं। इसके फूल फीके गुलाबी रङ्ग के होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—छोटा नागपुर में इसकी जड़ को कटिवात पर लेप करने के काम में लेते हैं।

फिलिपाइन में इसकी जड़ शांतिदायक, ज्वरनाशक और फोड़े को पकानेवाली मानी जाती है। इसके पत्ते आँतों की सूजन और मूत्राशय की सूजन को दूर करने के काम में लिये जाते हैं।

लोध

नाम—संस्कृत—लोध्र, तिरीटक, शाबर, गाल्व, हस्ती, हेमपुष्पक इत्यादि। हिन्दी–लोघ। बंगाल–लोघ। गुजराती—लोद्र। मराठी—लोघ। बंबई—हुरा, लोध। मध्यप्रान्त—लोघ, निनसाह। तेलगू—लोड्डुगा। उर्दू—लोघ पठानी। इंग्लिश—Lodh Tree। लेटिन—Symplocos recemosa (सिम्प्लोकोस—रेसीमोसा)।

वर्णन—लोध के वृक्ष बंगाल, आसाम और हिमालय तथा खासिया पहाड़ियोंमें पैदा होते हैं। यह एक छोटी जाति का हमेशा हरा रहनेवाला वृक्ष होता है। इसके पत्ते ३ से ६ इंच तक लंबे, अंडाकृति और कगूरेदार होते हैं। इसके फूल पीले रंग के और सुगंधित होते हैं। इसमें प्रायः आधा इंच लंबा और अंडाकृति का फल लगता है। यह फल पकने पर बैंगनी रंग का होता है। इस फल के अंदर एक कठोर गुठली रहती है। उस गुठली में दो दो बीज रहते हैं। इसकी छाल गेरुए रंग की और बहुत मुलायम होती है। इसकी छाल और पत्तों में से रंग निकाला जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसकी छाल कसेली, शीतल, पचने में हलकी, आँतों का संकोचन करनेवाली और नेत्र रोग और मसूड़े के रोगों में लाभदायक होती है। कफ, पित्त, रक्त रोग, अतिसार, सूजन, कुष्ठ, प्रदर, गर्भपात और गर्भस्राव में भी यह बहुत लाभदायक होती है। यह योनिपथ के व्रणों को मिटाती है। इसके फूल चरपरे, कसेले, मीठे, कड़वे, शीतल और आँतों का संकोचन करनेवाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी छाल, कड़वी, कसेली, कामोद्दीपक, ऋतुस्रावनियामक और रक्तपित्त के रोगियों के लिये पौष्टिक होती है। आँखों का दुखना, आँखों से पानी का बहना तथा सब प्रकार के नेत्र रोगों में यह बहुत उत्तम वस्तु है।

लोध संकोचक, कफनाशक, रक्तस्तम्भक, व्रणरोपक और शोषनाशक होती है। इसकी मुख्य क्रिया छोटी रक्तवाहिनियों पर होती है। इससे छोटी रक्तवाहिनियों का संकोचन होता है। जिससे रक्तस्राव बन्द हो जाता है और सूजन उतर जाती है। श्लेष्म त्वचा को लोध से शक्ति मिलती है, जिससे कफ पैदा होना कम हो जाता है।

श्वेत प्रदर और अत्यार्तव रोग में लोध एक उत्तम वस्तु है। इस प्रकार के रोग प्रायः गर्भाशय की शिथिलता से पैदा होते हैं। लोध गर्भाशय की शिथिलता को दूर करती है और वहाँ की रक्तवाहिनियों का संकोचन करती है। इन्हीं गुणों की वजह से यह इन रोगों पर विजय प्राप्त करती है। गर्भावस्था के सातवें-आठवें महीने में गर्भपात का अँदेशा होने पर लोध को शहद के साथ देते हैं। इससे गर्भाशय की शिथिलता दूर होकर उसकी आकृति ठीक हो जाती है और गर्भ को सहारा मिल जाता है। प्रसूतिकाल में योनि के अंदर क्षत पड़ने पर लोध का लेप करने से लाभ होता है।

त्वचा के रोगों में भी लोध का उपयोग किया जाता है। रक्तपित्त-रोग में रक्तस्राव को रोकने के लिये और कुष्ठ तथा दूसरे चर्मरोगों में लोध को खाने और लगाने में उपयोग किया जाता है। नेत्ररोगों में आँखों की सूजन और लाली को दूर करने के लिये लोध का लेप आँखों की पलकों पर किया जाता है। अतिसार और रक्तातिसार रोग में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

हिन्दू चिकित्सा शास्त्र में योनिपथ के रोगों को दूर करने के लिये लोध का उपयोग बहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है आयुर्वेद में यह वस्तु शीतल, संकोचक, आँतों की शिकायतों को दूर करनेवाली और नेत्र रोगों में लाभदायक मानी जाती है। मसूढ़ों की सूजन और मसूढ़ों से खून बहने पर इसके क्वाथ से कुल्ले किये जाते हैं।

के० सी० बोस का कथन है कि उपरोक्त सब बीमारियों पर इंडिजिनस ड्रग कमेटी के सामने इस वनस्पति को कच्ची हालत में चूर्ण के रूप में, ताजा काढ़े के रूप में, एलकोहेलिक एक्स्ट्रेक्ट के रूप में उपयोग किया गया। मगर इसका परिणाम कमजोर और असन्तोषजनक ही पाया गया।

चरक, सुश्रुत इत्यादि प्राचीन आयुर्वेद-शास्त्रियों के मतानुसार इस वनस्पति की छाल साँप और बिच्छू की चिकित्सा के काम में ली जाती है।

रॉबर्टस् के मतानुसार सर्पविष में इस वनस्पति की छाल को चूर्ण के रूप में सेवन कराया जाता है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्प और बिच्छू के विष की चिकित्सा में निरुपयोगी होती है।

उपयोग—रक्तप्रदर—दस रत्ती लोध को, दस रत्ती मिश्री के साथ दिन में तीन बार लेने से चार पाँच दिनों में गर्भाशय की शिथिलता से पैदा हुआ रक्त प्रदर मिटता है।

मसूढ़ों के रोग—लोध के क्वाथ से कुल्ले करने से मसूड़ों का ढीलापन मिटता है। उनमें से रक्त का बहना बन्द हो जाता है।

गर्भपात—सातवें आठवें महीने में गर्भपात के लक्षण दीखने पर लोध और पीपल के चूर्ण को शहद के साथ चटाना चाहिये।

स्तनों की पीड़ा—लोध को पीसकर लेप करने से स्तनों की पीड़ा मिटती है।

नेत्ररोग—लोध, जीरा, भुनी हुई फिटकरी, इन तीनों चीजों को पीस कर घीगुवार के गूदा में मिलाकर कपड़े में उसकी पोटली बाँधकर उस पोटली को पानी में भिगोकर नेत्रों पर फेरने से नेत्रपीड़ा मिटती है।

कान का बहना—लोध के चूर्ण को कान में भुरभुराने से उसका बहना बन्द हो जाता है।

जीर्ण ज्वर—लोध, चन्दन, पीपरामूल और अतीस का चूर्ण शक्कर, घी, शहद और दूध के साथ देने से जीर्ण ज्वर में लाभ होता है।

लोध पठानी

नाम—संस्कृत—पट्टिकालोध्र, लाक्षाप्रसादन, स्थूलवल्कल, वल्कलोध्र, इत्यादि। हिन्दी—पठानी लोध। पंजाब—पठानी लोध। बङ्गाल—पाटिया लोध। गुजराती—पठानी लोधर। मराठी—लोध। उर्दू—पाठानी लोध। लेटिन—Symplocos crataegoides (सिम्प्लोकस क्रेटेगाइडेस्)।

वर्णन—पठानी लोध के वृक्ष हिमालय में सिंध नदी से आसाम तक ९ हजार फीट की ऊँचाई तक और बरमा में पैदा होते हैं। इस वृक्ष की ऊँचाई २० फुट तक की होती है। इसका तना सीधा और गोल होता है। इसकी छाल सफेद या भूरे रंग की और कुछ खरदरी होती है। इसके पत्ते दो से चार इंच तक लम्बे, तीखे और कंगूरेदार होते हैं। इसके फूल सफेद और सुगन्धित होते हैं। इन फूलों की सुगन्ध से बहुत दूर तक की हवा सुगन्धित हो जाती है। इस वृक्ष के फल की लम्बाई १-२ इंच होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से पठानी लोध शीतल, हलकी, कसेली, संकोचक और बलवर्द्धक होती है। इसके सब गुण दूसरी लोध के समान ही होते हैं। मगर यह उसकी अपेक्षा कुछ विशेष प्रभावशाली होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से लोध सर्द और खुश्क होती है। यह आँखों को शक्ति देती है। आँख के दर्द और ललाई को दूर करती है। कफ के उपद्रव को नाश करती है। मासिक धर्म को नियमित करती है। धातु को गाढ़ा करती है। वायु और कफ को मिटाती है। दस्तों को रोकती है और गर्भाशय को शुद्ध करती है।

प्रतिनिधि—इसकी जड़ की प्रतिनिधि अशोक की जड़ होती है।

लोभान

नाम--संस्कृत-ऊद, श्यामधूप, कपर्दक ऊद। हिन्दी--लोभान। गुजराती--कोड़ियो लोभान। मराठी-ऊद। लेटिन--Styrax benzain (स्टोरेक्स बेंझाइन)।

वर्णन—लोभान यह एक वृक्ष का गोंद होता है। यह वृक्ष स्याम और सुमात्रा द्वीप में पैदा होता है। इसकी नकल में यहाँ पर नकली लोभान भी तैयार किया जाता है। अथवा इस असली लोभान में दूसरी वस्तुओं की मिलावट भी की जाती है। इसलिये इसको लेते समय इसकी असलियत का हमेशा ध्यान रखना चाहिए। स्याम से आया हुआ लोभान बहुत उत्तम होता है। इसकी चौकोर टिकड़ियाँ होती हैं। उत्तम लोभान में बदाम के समान या कौड़ी के समान रवे होते हैं। ये एक से दो इञ्च तक लम्बे, दूध के समान सफेद और एक दूसरे से चिपके हुए रहते हैं। हलके दर्जे के लोभान में ये सफेद रवे न होकर इनकी जगह राल के समान भूरे रंग के रवे रहते हैं और छाल के टुकड़े भी उसमें मिले हुए रहते हैं। स्यामी लोभान में किसी तरह का स्वाद नहीं होता मगर गन्ध मधुर होती है।

सुमात्रा द्वीप से आनेवाला लोभान स्याम के लोभान की अपेक्षा कुछ हलके दर्जे का होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—लोभान पीवनाशक, त्वचाकी रक्तवाहिनियों को उत्तेजना देनेवाला, व्रणशोधक, व्रणरोपक, रक्तसंग्राहक, कफनाशक, मूत्रल और उत्तेजक होता है। यह पेट में जाने के पश्चात् श्वासनलिका के द्वारा बाहर निकलता है। इसलिये श्वास-नलिका की सूजन में इसको बादाम और गोंद के साथ देने से बहुत लाभ होता है। बहुत गाढ़ा और दुर्गन्धियुक्त कफ और जीर्ण श्वास-नलिका की सूजन में यह बहुत उपयोगी होता है। इससे श्वास-नलिका की श्लेष्म त्वचा को शक्ति मिलकर कफ का पैदा होना कम हो जाता है और पूर्वसंचित कफ शीघ्रता से बाहर निकल कर खाँसी आराम हो जाती है। क्षय और दमे के रोग में इससे बहुत लाभ होता है। फुफ्फुस के सब प्रकार के रोगों में लोभान का धुआँ बहुत लाभदायक होता है।

आमाशय के अन्दर अन्न का पाचन ठीक न होने की हालत में अगर गले के अन्दर जलन होती हो और उबाक आता हो तो लोभान को देने से लाभ होता है। सुजाक और वस्तिशोथ में भी यह लाभदायक वस्तु है।

लोभान का अर्क ताजे जखम पर लगाने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। व्रण, जखम, भगन्दर, कण्ठमाला और हठीले व्रणों पर लोभान का अर्क मन्त्र शक्ति की तरह काम करता है। त्वचा में इन सब रोगों में लोभान, घीगुवार का रस और उत्तम शराब मिलाकर उसका उपयोग किया जा सकता है।

लोभान के फूल

लोभान के अन्दर एक अम्ल-स्वभावी द्रव्य-जिसको लोभान का फूल कहते हैं-रहता है। सुमात्रा के लोभान की अपेक्षा स्याम के लोभान में ये फूल ज्यादा रहते हैं। ये गर्मी पा करके उड़ जाते हैं। इनके निकालने की तरकीब इस प्रकार है।

लोभान का चूर्ण १ सेर, स्वच्छ धुली हुई बालू पाव भर इन दोनों वस्तुओं को अच्छी तरह से मिला कर एक मिट्टी की हँड़िया के अन्दर रख देना चाहिये। इस हँड़िया के ऊपर एक दूसरी हँड़िया डमरू यन्त्र की तरह जमाकर दोनों के जोड़ पर कपड़ मिट्टी कर देना चाहिये। फिर इस डमरूयन्त्र को कोयले की आँच पर रख देना चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिये कि आँच बहुत हलकी हो। इस प्रकार करने से नीचे की हँड़िया से लोभान के फूल उड़कर ऊपर की हँड़िया में जम जाते हैं। पूरी क्रिया होने सर उस यन्त्र को बहुत आहिस्ते से उतार कर ऊपर की हाँडी को अलग करके उसके अन्दर जमे हुए सफेद रवों को निकाल लेना चाहिये। ये लोभान के फूल १०० तोला उत्तम लोभान में से १५ तोला निकलते हैं।

लोभान के फूल बहुत तीव्र और उत्तम पीवनाशक, पसीना लानेवाले, मूत्रल, उत्तेजक, ज्वरनाशक, कफनाशक और जीवन विनिमय क्रिया को उत्तेजना देने वाले होते हैं। पेट में जा करके ये त्वचा और फुफ्फुस के मार्ग से बाहर निकलते समय ये त्वचा की विनिमय क्रिया को शुद्ध करते हैं और पसीना लाते हैं। फुफ्फुस से बाहर निकलते समय ये कफ का शोषण करते हैं और खाँसी को दूर करते हैं। लेकिन इनका कफनाशक धर्म लोभान के

कफनाशक धर्म की अपेक्षा कमजोर होता है। मूत्रपिंड से बाहर निकलते समय ये पेशाब की तादाद को बढ़ाते हैं जिससे जीर्ण बस्तिशोथ और मूत्र विसर्जन की खराबी से पैदा हुई सूजन दूर हो जाती है। ये फूल पेशाब के साथ मूत्राशय में जाकर वहाँ की क्रिया को शुद्ध करते हैं जिससे क्षारयुक्त और दुर्गन्धियुक्त मूत्र की शुद्धि होती है। मूत्रपिंड की सूजन में यह बहुत उपयोगी वस्तु है। पुरातन सुजाक में इसको लेने से मूत्र की जलन कम होती है।

तीव्र और नवीन आमवात में लोभान के फूलों को १५ रत्ती की मात्रा में सज्जीक्षार के साथ देने से बहुत लाभ होता है। इस कार्य के लिये ये सेलिसिलिक एसिड के समान ही लाभ दिखलाते हैं।

मात्रा—लोभान की मात्रा २ से लेकर १५ रत्ती तक और इसके फूलों की मात्रा ३ से ८ चावल तक होती है।

बनावटें—**अर्क लोभान**—लोभान १० तोला, शिलारस १० तोला, उत्तम एलुआ २ तोला और रेक्टिफाइड स्पिरिट १०० तोला। इन सब वस्तुओं को मिलाकर १५ दिन तक पड़ी रखनी चाहिये। उसके पश्चात् कपड़े में छान कर बोतल में भर लेना चाहिये। इस अर्क को बादाम और गोंद के चूर्ण के साथ पानी में घोट कर देने से श्वासनलिका के जीर्णशोथ में बहुत लाभ होता है। ताजा जखम पर इस अर्क को तुरन्त लगा देने से रक्त का बहना फौरन बन्द हो जाता है। इसके अतिरिक्त व्रण, जखम, भगंदर, कंठमाला और भरनिगर फोड़ों पर भी इस अर्क को लगाने से बहुत लाभ होता है।

लोभान का मिश्रण—लोभान के फूल और सज्जीक्षार दोनों को पानी में मिलाकर औटाना चाहिये। दोनों चीजें बिलकुल घुल जाने पर उस पानी को छान कर फिर आग पर चढ़ा कर सुखा लेना चाहिये और शेष रहे हुए चूर्ण को शीशी में भर लेना चाहिये। इस मिश्रण की मात्रा ३ से १५ रत्ती तक की होती है। यह मिश्रण यकृत को उत्तेजना देता है। खाँसी, दमा इत्यादि कफ रोगों में यह बहुत उत्तम वस्तु है। इससे चिकना और जमा हुआ कफ पतला होकर निकल जाता है।

लोभान (कुन्दर)

नाम—संस्कृत—कुन्दर। हिन्दी—लुबान कुन्दर। मराठी—इसेस। अंग्रेजी—Ollbanum frankiacense (ओलाबेनम फ्रेन्कीसेन्स)। लेटिन—Boswellia floribunda (बोसवेलिया फ्लारिबंडा)।

वर्णन—यह एक वृक्ष का गोंद होता है। जो अफ्रिका और अरबस्तान से भारतवर्ष में आता है। इसका रंग हलका पीला होता है। पानी में इसको मिलाने से पानी दूध के समान हो जाता है। यह सुगंधित और स्वाद में कुछ कड़वा होता है। यह सालई वृक्ष के गोंद से बहुत मिलता हुआ होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह गोद सुगन्धित और उत्तेजक होता है। इसकी क्रिया श्लेष्मत्वचा के ऊपर होती है। खास करके श्वासमार्ग की श्लेष्मत्वचा के ऊपर होती है। पेट में इसको देने से यह श्वासनलिका के द्वारा बाहर निकलता है और निकलते समय वहाँ की विनिमय क्रिया को सुधार कर उसको उत्तेजित करता है। श्वासनलिका की प्राचीन सूजन में इसको पेट में भी देते हैं और इसका धुआँ भी देते हैं। इससे कफ की दुर्गन्ध मिट जाती है और कफ का पैदा होना कम हो जाता है तथा खाँसी की कमी हो जाती है और श्वास में होनेवाली रुकावट भी बन्द हो जाती है।

सुजाक में इसको ५ रत्ती की मात्रा में देने से लाभ होता है। इसका मलहम ग्रन्थिशोथ को कम करनेवाला और उत्तम होता है। छोटे बच्चों के फोड़े-फुन्सियों पर इसको लगाने से वे जल्दी पक कर फूट जाते हैं और अच्छे हो जाते हैं।

कारबंकल के ऊपर कुन्दर का मलहम एक रामबाण औषधि होती है।

कुन्दर का मलहम—कुन्दर १ तोला, खसखस का तेल १ तोला और सफेद मोम १ तोला इन चीजों को अग्नि पर गला करके कपड़े में छान देना चाहिये।

लोलोरी

नाम—उड़िया--लोलोरी। बम्बई—कम्बल, कम्बली। लेटिन-Gnetum scandens (नेटम स्केण्डन्स)।

वर्णन—यह एक बेल होती है। जो सिकिम, आसाम, खाँसिया पहाड़, चटगांव और बरमा में पदा होती है।

इसकी जड़ें और इसकी डालियाँ ज्वरनाशक होती हैं। पेट में किसी जानवर का सींग गड़ जाने से जो विदारित घाव हो जाता है उसमें इसकी डालियों का निर्यास पिलाया जाता है।

लौंग

नाम—संस्कृत-लवँग, देवकुसुम, श्रीसंज्ञ, श्रीपुष्प, वारिपुष्प, दिव्यगन्ध, ग्रहणीहर, इत्यादि। हिंदी-लौंग। बंगाल—लवङ्ग। मराठी—लवंग। गुजराती—लवग। अरबी—करनफूल। फारसी—मेहक। तामील—किराम्बु। अंग्रेजी—Cloves (क्लोवस)। लेटिन—Caryophyllus aromaticus (केरियोफिलस एरोमेटिकस)।

वर्णन—लवंग के वृक्ष बहुत सुन्दर और सुगंधित होते हैं। ये वृक्ष झंजीबार में बहुत पैदा होते हैं। हिन्दुस्तान के दक्षिणी भाग में भी कुछ दिनों से इनकी खेती होने लगी है। इसके पत्ते बहुत सुगंधित होते हैं। इसके फूल की कलियों को लौंग कहते हैं। बाजार में जो लौंग मिलते हैं उनमें से बहुतों का तेल निकाला हुआ होता है। असली लौंग वेही होते हैं जिनमें से तेल न लिकाला गया हो।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—भावप्रकाश के मतानुसार लौंग चरपरी, कड़वी, नेत्रों को हितकारी, शीतल, दीपन, पाचन, रुचिकारक तथा कफ, पित्त, रक्तरोग, तृषा, मूर्च्छा, आफरा, शूल, खाँसी, श्वास, हिचकी और क्षय रोग को नष्ट करती है।

राजनिघंटु के मतानुसार लौंग गरम, तीक्ष्ण, पाक के समय मधुर, शीतवीर्य तथा त्रिदोष, आम, क्षय और खाँसी को नष्ट करती है।

लौंग का तेल अग्निवर्द्धक, वातनाशक तथा दन्तशूल, कफ और गर्भिणी की वमन को दूर करनेवाला होता है।

लौंग पाचन क्रिया के ऊपर सीधा प्रभाव डालता है। इससे क्षुधा बढ़ती है, आमाशय की रसक्रिया को बल मिलता है, रुचि पैदा होती है और मन में प्रसन्नता होती है।

इसका दूसरा धर्म कृमिनाशक होता है। आमाशय और आँतों के अन्दर रहने वाले सूक्ष्म जन्तुओं की वजह से मनुष्य का पेट फूलता है। उन जन्तुओं को यह नष्ट करता है जिसकी बजह से पेट का फूलना मिट जाता है।

लौंग का तीसरा गुण रक्त के अन्दर श्वेतकणों को बढ़ाने का होता है। इस गुण की वजह से शरीर के अन्दर रहनेवाले रोगमूलक कीटाणुओं का नाश होता है।

इसका चौथा धर्म चेतना शक्तिको जाग्रत करना है। इसका यह गुण हृदय, रक्ताभिसरण और श्वासोच्छ्वास के ऊपर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इसी कारण त्रिदोष और सन्निपात में दी जानेवाली औषधियों में इसको मिलाया जाता है।

इसका पाँचवाँ गुण शरीर के अन्दर की वायु-नलियों का संकोच-विकास और उसकी वजह से होनेवाली पीड़ा को कम करने का है। इसीसे दमा इत्यादि रोगों में इसका उपयोग किया जाता है।

इसका छठा गुण शरीर की दुर्गन्धि को नष्ट करने का है। इस गुण की वजह से कफ, लार और मुँह में आनेवाली दुर्गन्ध को दूर करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

लौंग का सातवाँ गुण मूत्रल है। इस गुण की वजह से यह मूत्रपिंड के मार्ग की शुद्धि करता है और शरीर के विजातीय द्रव्यों को मूत्र के द्वारा निकाल देता है।

इसका आठवाँ गुण यह है कि शरीर के किसी बाहरी भाग पर इसको लगाने से यह चेतनाकारक, वेदनानाशक, व्रणशोधक और व्रणरोपक असर बतलाता है।

मात्रा—लौंग की मात्रा एक रत्ती से दो रत्ती तक की होती है।

उपयोगः— कब्जियत—१। रत्ती लौंग और १। रत्ती जेलप की गोली बनाकर देने से कब्जियत मिटती है।

गर्भवती की वमन—लौंग को पीसकर मिश्री की चाशनी में मिलाकर चटाने से गर्भवती स्त्री की वमन और होबड़ मिटती है।

ज्वर—लौंग और चिरायता दोनों समान भाग लेकर पानी में पीसकर पिलाने से ज्वर छूट जाता है और ज्वर के पश्चात् की निर्बलता भी मिट जाती है।

गठिया—लौंग के तेल की मालिश करने से गठिया की पीड़ा में लाभ होता है।

मस्तकपीड़ा—लौंग के तेल को ललाट पर मालिश करने से मस्तक पीड़ा मिटती है।

दन्तशूल—लौंग के तेल को दाँत की कोचर में रखने से दन्तशूल मिटता है।

स्नायविक मस्तकशूल—लौंग को जल में पीसकर गरम कर ललाट और कनपटियों पर लेप करने से स्नायविक मस्तकशूल मिटता है।

श्वास की दुर्गन्ध—लौंग को मुँह में रखने से मुँह और श्वास की दुर्गन्ध मिटती है।

दमा—लौंग, आकड़े के फूल और काले नमक की गोली बनाकर मुँह में रखकर चूसने से दमा और श्वासनलिका के रोग मिटते हैं।

नेत्ररोग—तांबे के पात्र में लौंग को पीसकर शहद मिलाकर अञ्जन करने से नेत्र के सफेद हिस्से के रोग मिटते हैं।

हृदय की जलन—लौंग को ठंडे पानी में पीस-छानकर मिश्री मिलाकर पीने से हृदय की जलन मिटती है।

कुक्कुर खाँसी—लौंग को आग पर भूनकर शहद में मिलाकर चाटने से कुक्कुर खाँसी मिटती है।

नजले का मस्तकशूल—२ लौंग और ४ रत्ती अफीम को पानी के साथ पीसकर गरम करके ललाट पर लेप करने से नजले की मस्तक पीड़ा मिटती है।

अजीर्ण—लौंग और हरड़ का काथ बनाकर उसमें थोड़ा सा सेंधा नमक डालकर पिलाने से अजीर्ण मिटता है और विरेचन होता है।

जी मिचलाना—लौंग को पानी के साथ पीसकर कुनकुने करके पिलाने से तृषा और जी का मिचलाना मिटता है।

नासूर—लौंग और हलदी को पीसकर लगाने से नासूर मिटता है।

बट्टटाली

नाम—मलयालम—बट्टटाली। लेटिन—Acalypha hispida (एकेलिफा हिस्पिडा)।

वर्णन—यह जमालगोटे के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसका पौधा छोटा होता है। यह वनस्पति भारतवर्ष के बगीचों में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके फूलों को पानी में उबालकर उनका मुरब्बा बनाकर देने से प्रवाहिका और अतिसार में लाभ होता है।

रीड के मतानुसार इसके पत्तों को तम्बाकू के हरे पत्तों के साथ कूटकर चावल के माँड में मिलाकर लगाने से प्राचीन और हठीले व्रणों में लाभ होता है।

वचगन्धा

नाम—संस्कृत—वचगंधा। हिन्दी—फोदड़बेल। मराठी—पीली भँवरी। गुजराती-गुम्मड़बेल, गुम्बड़वेल, वजबेल, वाड़फुदरड़ी। कच्छी-गुमड़ीयार, छटारी बेल। लेटिन—Ipomoea obscura (इपोमिया आब्स्क्यूरा)।

वर्णन—यह एक जाति की लता होती है। इसकी बेलें बरसात के दिनों में बहुत दिखलाई देती हैं। इसके पत्ते हृदय की आकृति के और बोथरी अणीवाले होते हैं। इसके फूल कुछ पीलापन लिये हुए सफेद रंग के और नीचे की तरफ से बैगनी रंग के होते हैं। इसका फल गोलाई लिये हुए नोकदार, ४ खंड वाला और ४ बीज वाला होता है। इसके पत्तों में वच के समान गंध आती है। इस वनस्पति की बेल खेत की बाड़ी पर, रास्ते की बाजुओं पर और झाड़ियों में सारे भारत के अन्दर दिखलाई देती है। देहात के लोग फोड़े-फुन्सी की औषधि के बतौर इस औषधि को पहिचानते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इस वनस्पति के पत्तों को पीसकर बदगाँठ और चाहे जैसे फोड़े-फुन्सियों पर लगाने से वे आराम हो जाते हैं।

बूटीप्रचार वैद्यक में लिखा है कि इस वनस्पति के पत्ते ढाई तोला और शुद्ध हरताल बरकी १ तोला, इन दोनों वस्तुओं को कूटकर इनकी ६ माँशे की गोलियाँ बना लेनी चाहिये। इनमें से कुष्ठ के रोगी को एक एक गोली

प्रतिदिन २१ दिन तक खिलाई जाय और पथ्य में सिर्फ बिना नमक की चने की रोटी घी के साथ खिलाई जाय तो कुष्ठ आराम होता है। नपुंसकता के रोगी को इसकी एक एक गोली ७ दिन तक खिलाई जाय और पथ्य में रोटी, दाल, घी और मोदक खूब खिलाये जायँ तथा खटाई, तेल और गुड़ से ६ मास तक परहेज किया जाय तो नपुंसकता मिट जाती है। मगर यह खयाल रखना चाहिये कि हरताल एक उग्र औषधि है। इसका प्रयोग बिना उत्तम वैद्य के नहीं करना चाहिये।

जुकाम और सर्दी वालों को इसके पत्तों को मसलकर कुछ देर तक सुंघाने से सरदी मिट जाती है।

एन्सली के मतानुसार इसके पत्ते मनमोहक खुशबूवाले और खुआबदार होते हैं। इसके पत्तों को भून कर चूर्ण करके घी में मिलाकर मुखक्षत पर लगाने से बहुत लाभ होता है।

बटदला

नाम—संस्कृत—बटदला। तेलगू—काकूपला। कनाड़ी—चितिपला। तामील—कादिक्काई। इंग्लिश—Jagged jujube जागेड जुजुबे। लेटिन—Zizyphus trinervia (झिझिफस ट्रिनेरविया)।

वर्णन—यह बेर के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसका वृक्ष छोटा होता है। इसके पत्ते २.५ से ७.५ सेण्टिमीटर तक लम्बे और १.६ से ३.८ सेण्टिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल कुछ हरापन लिये हुए पीले होते हैं। इसके फल पकने पर पीले हो जाते हैं। यह वृक्ष गुजरात, पश्चिमीघाट, मद्रास प्रेसिडेन्सी और कोइम्बतूर में पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्तों का काढ़ा रक्तकणों की विकृति से होनेवाली दुर्बलता (Gachexia) में रक्त को शुद्ध करने के लिये दिया जाता है और प्राचीन मैथुनसम्बन्धी नपुंसकता में धातुपरिवर्तक औषधि की तरह इसका उपयोग होता है।

बनशेरूपगा

नाम—संस्कृत—बनशेम्पगा। मलयालम—कनीला। तेगेलाग—पिराल। लेटिन—Evodia lunurankenda (इवोडिया लूनर-एंकेण्डा)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल मुलायम और भूरी होती है। इसके बीज काले और चमकीले होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ की छाल को तेल के अन्दर उबाल कर कान्ति को बढ़ाने के लिये उपयोग में लिया जाता है। इसके पत्तों का रस ज्वर को दूर करने के लिये दिया जाता है। इण्डोचायना में यह पौधा एक कटु पौष्टिक पदार्थ की तरह उपयोग में लिया जाता है। इसकी छाल और पत्ते ज्वर के अन्दर उपयोग में लिये जाते हैं।

बनमल्लिका

नाम—संस्कृत—बनमल्लिका। कनाड़ी—वरामल्लिगे। मलयालम—कट्टुमल्लिगेई। लेटिन—Jasminum rotlerianum (जेसमिनम रोटलेरिएनम)।

वर्णन—यह एक जुही के वर्ग की सुगन्धित पुष्पोंवाली झाड़ीनुमा लता होती है। इसके फूल सफेद और सुगन्धित होते हैं। इसका फल चिकना और काला होता है। यह वनस्पति पश्चिमी पेनिन्शुला में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्ते एक्झिमा नामक कठिन चर्मरोग पर उपयोग में लिये जाते हैं।

बरसिंगी

नाम—बम्बई—बरसिंगी। मराठी—अस्सुल। कनाड़ी—रायभोटे। संथाल—गर्भा गोंजा। तामील—हिरूवट्ट। तेलगू—नक्किनी। उड़िया—गाजोरानी। इंग्लिश—Ceylon boxwood। लेटिन—Canthium didymum Plectronia didyma (केंथियम डिडिमम और प्लेक्ट्रोनिया डिडिमा)।

वर्णन—यह हमेशा हरी रहनेवाली झाड़ी हिमालय में सिकिम के पास, खासिया जयंतिया पहाड़ पर तथा मद्रास प्रेसिडेंसी में पैदा होती है। इसके पत्तों में धनिये के समान गंध आती है।

गुण, दोष और प्रभाव—हड्डी में मोच आ जाने पर इसकी छाल के चूर्ण का लेप किया जाता है। ज्वर में भी इसकी छाल लाभदायक मानी जाती है।

वल्ली कांजिरम

नाम—मलयालम—वल्ली कांजीरम। लेटिन—Strycnos Bourdilloni (स्ट्रिकनस बोर्डीलोनी)।

वर्णन—यह एक कुचले वर्ग की वनस्पति है। इसकी लता होती है। यह ट्रावनकोर और दक्षिणी कनाडा में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ का काढ़ा संधिवात, व्रण, फीलपाँव, ज्वर और मृगी के ऊपर मालिश करने के काम में आता है।

वल्लभोम

नाम—मलयालम—वल्लभोम। लेटिन—Carallia lucida (केरेलिया लूसिडा)।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह एक फल होता है जो संक्रामक व्रणों के ऊपर काम में आता है।

वल्लिपान

नाम—मलयालम—वल्लिपान। तिरहुत—कलाझा। लेटिन—Lygodium flexuosum (लिगोडियम फ्लेक्सुओसम)।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में ५ हजार फीट की ऊँचाई तक और दक्षिणी भारत में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसका पौधा कफनिस्सारक होता है। तिरहुतमें इसकी ताजी जड़ सरसों के तेल में औटा कर संधिवात, गीली खुजली, व्रण, एक्झिमा, कटे हुए घाव और मोच के ऊपर लगाने और मालिश करने के काम में ली जाती है। विशेष तौर से इस तेल का उपयोग कारबंकल के ऊपर लगाने के लिये होता है।

वागटी

नाम—संस्कृत—गुच्छकंज। बम्बई—वागटी, वाकेरी। कोकण—वागटी। मराठी—वागटी, वाकेरी। तामील—ओक्काडिकोढ्ढि। लेटिन—Wagatea spicata (वागेटिया स्पिकेटा)।

वर्णन—यह एक मजबूत और काँटेवाली झाड़ी कंटकरञ्ज की झाड़ी के समान होती है। इसकी डालियाँ लम्बी-लम्बी और तीक्ष्ण काँटोंवाली होती है। इसके पत्ते कंटकरंज के पत्तों के समान और फूल सिंदूरी रंग के मंजरियों की तरह होते हैं। इसकी फलियाँ बड़ी-बड़ी होती हैं और हरएक फली में ४ या ५ बीज होते हैं। औषधि प्रयोग में इसकी जड़ें काम में आती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इस वनस्पति की जड़ निमोनिया रोग में उपयोगी होती है और चर्म रोगों पर इसकी छाल का लेप करने से लाभ होता है। इसकी फलियों में कषायाम्ल काफी मात्रा में रहता है और इसकी छाल में एक जाति का रंग पाया जाता है।

वांजि

नाम—तामील—वांजि। मलयालम—एट्टिरिप्पा। कनाड़ी—नानेल। लेटिन—Bassia malabarica (बेसिया मलेबारिका)।

वर्णन—यह एक महुए के वर्ग का मध्यम कद का वृक्ष पश्चिमी प्रायद्वीप में पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके फूलों को पानी में भिगो कर गुर्दे की शिकायतों को दूर करने के काम में लिया जाता है। इसके फल कृमिनाशक माने जाते हैं और वे सन्धिवात, पित्तविकार, क्षय और दमे के अन्दर दिये जाते हैं। इसके बीजों का तेल संधिवात के ऊपर मालिश करने के काम में लिया जाता है।

वामी

नाम—सिंहाली—वामी। बरमा—माउ। लेटिन—Sarcocephalus cordatus (सरकोसेफेलस कोरडेटस)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है जो मलाया और फिलिपाइन में पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी छाल पौष्टिक और ज्वरनाशक होती है।

विखारी

नाम—हिन्दी—बिखारी, वेहकलि। मराठी—विखारी, वेखली। बम्बई—येकदी। नेपाल—टिबिलोटी। तामील—ननजुनडाइ, टमाटा। तेलगू—रक्कामुकी। लेटिन—Pittosporum floribundum (पिटोसपोरम फ्लोरिबंडम) Senecia napaulensis (सेनेसिया नेपोलेन्सिस)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल हलके रङ्ग की, कड़वी और सुगंधित होती है। इसके पत्ते बरछी के आकार के होते हैं। इसके फूल कुछ पीलापन लिये हुए सफेद रंग के और फल बहुले के समान होते हैं। यह वनस्पति हिमालय में पंजाब से लेकर सिकिम तक ५ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी छाल कड़वी, सुगन्धित और नशीली होती है। यह ज्वरनाशक, कफनिस्सारक और सर्पविष को दूर करनेवाली होती है। इसकी प्रधान क्रिया त्वचा पर और श्वासनलिका की श्लेष्म त्वचा पर होती है।

ज्वर को नष्ट करने के लिये इसको २ से ५ रत्ती तक की मात्रा में देते हैं और सर्पविष को नष्ट करने के लिये इसको २५ रत्ती तक की मात्रा में देते हैं। प्राचीन ब्रोंकाइटीज में इसकी सूखी छाल का चूर्ण २ से ५ रत्ती तक की मात्रा में देने से बहुत लाभ होता हुआ देखा गया है। यह एक उत्तम कफनिस्सारक पदार्थ है। मगर कभी कभी इसके प्रयोग से रोगी को अतिसार या प्रवाहिका होने का डर रहता है।

ट्रावनकोर में इसको आधे चाय के चम्मच की मात्रा में कुष्ठ के रोगियों को खिलाया जाता है और इसको अरण्डी के तेल के साथ पीसकर सूखी खुजली पर लगाने के काम में लेते हैं।

इसका तेल धातुपरिवर्तक, पौष्टिक और बाह्य-उत्तेजक होता है। चर्मरोगों के ऊपर इसको लगाने से बहुत लाभ पहुँचाता है। संधिवात, कुष्ठ, मोच और रगड़, गृध्रसी, वात, छाती के रोग, क्षय और आँखों का दुखना इत्यादि रोगों पर इसकी मालिश करने की सिफारिश की गई है। इसको १५ बून्द से लेकर २ ड्राम तक की मात्रा में देने से कुष्ठ, चर्मसम्बन्धी दूसरी बीमारियाँ, उपदंश की दूसरी अवस्था और प्राचीन संधिवात में बहुत लाभ होता है।

यद्यपि यह एक बहुत प्रभावशाली औषधि है। फिर भी इसका अन्तःप्रयोग करते समय बहुत सावधानी रखने की जरूरत है। ऐसा देखा गया है कि कुछ विशेष प्रकार के बीमारों पर इसका प्रयोग करने से उनकी पाकस्थली में जलन पैदा होकर दस्त और उल्टी शुरू हो जाती है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्पविष पर निरुपयोगी होती है।

वीरी बादरी

नाम—तामील—वीरी बादरी। बरमा—ठाकुतमा। सिंहाली—डागा। मलयालम—निर्पोन्याक्षम। लेटिन—Dolichandrone spathacea (डोली चेंड्रोन स्पेथेसिया)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है जो मलाबार, त्रावनकोर, सुन्दरवन और लोअर बरमा में पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके बीजों को सोंठ के साथ मिलाकर आक्षेप रोग के अन्दर देते हैं।

वेट्टि

नाम—मलयालम—वेट्टि। तामील—विट्टिल। कनाड़ी—सेराली। लेटिन—Aporosa lindleyana (एपोरोसा लिंडलिएना)।

वर्णन—यह एक छोटे या मध्यम कद का वृक्ष पश्चिमी प्रायद्वीप और सीलोन में पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ का काढ़ा पीलिया, ज्वर, मस्तकशूल, उन्माद और धातुदौर्बल्य में दिया जाता है।

वेखरियो

नाम—गुजराती—वेखरियो, अड़बाउगली। लेटिन—Indigofera trita (इंडिगोफेरा ट्रीटा)।

वर्णन—यह एक नील की जाति का पौधा होता है। इसका पौधा २ से ३ फीट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते तीन तीन साथ लगते हैं। फूल कुछ बैंगनी छाया लिये हुए लाल रंग के होते हैं। इसकी फलियाँ सीधी होती हैं और उन पर ४ से ५ खड़ी धारियाँ होती हैं। हर एक फली में ८ से १२ तक बीज होते हैं। ये बीज पीले रंग के होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके बीज पौष्टिक होते हैं। इसके पौधे का रस एक पौष्टिक, रक्तशोधक और मूत्रल वस्तु की तरह दिया जाता है।

वेल्लाइनवल

नाम—तामील—वेल्लाइनवल। मलयालम—पायनावेल। लेटिन—Eugenia hemispherica (इगूनिया हेमिस्फेरिका)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का मुलायम छालवाला वृक्ष पश्चिमी प्रायद्वीप में पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी छाल का काढ़ा पित्तविकार और उपदंश रोग में लिया जाता है।

वेल्लाकुरिंजी

नाम—मलयालम—वेल्लाकुरिंजी। लेटिन—Psychotria curviflora (सीचोट्रिया कर्विफ्लोरा)।

वर्णन—यह इपिकेकोना के वर्ग की एक वनस्पति होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ का काढ़ा संधिवात, निमोनिया, मस्तक की खराबी और आँख, कान तथा गले की बीमारियों में काम में लिया जाता है।

वेनकुरुंजी

नाम—मलयालम—वेनकुरुंजी। लेटिन—Barleria courtallica (बारलेरिया कोर्टेलिका)।

वर्णन—यह झाड़ीनुमा वनस्पति पश्चिमी प्रायद्वीप में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ का काढ़ा सन्धिवात और निमोनिया में दिया जाता है और इसके पत्तों को तेल में उबालकर उस तेल को आँख और कान की बीमारी के काम में लेते हैं।

शकरकन्द

नाम—संस्कृत—स्वादुकन्दक, वन्दग्रन्थि, पिंडालु, पिंडीतक, इत्यादि। हिन्दी—शकरकन्द, मितालु। गुजराती—साकरिया, रतालू। मराठी—रताली। बंगाल—लालआलू, लाल शकरकन्दालू। सिंध—गाजर लाहोरी। उर्दू—शकरकन्द। फारसी—लर्दक, लाहौरी जमीकन्द। अंग्रेजी—Sweat Potato। लेटिन—Ipomoea batatas (इपोमिया बटाटाज्)।

वर्णन—शकरकन्द भारतवर्ष में सब ओर खाने के काम में लिया जाता है। इसकी गठानें लाल और सफेद के भेद से २ प्रकार की होती हैं। इस वनस्पति का मूल उत्पत्ति स्थान अमेरिका है। मगर भारतवर्ष में बहुत बड़े पैमाने पर इसकी खेती होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से शकरकन्द मीठा, शीतल, कामोद्दीपक, मूत्रकृच्छ्र को दूर करनेवाला तथा प्यास, प्रमेह और दाह को दूर करनेवाला होता है। यह कफ और वात को पैदा करता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी गठानें मीठी, मोटापा लानेवाली, प्रवाहिका को रोकनेवाली और छाती तथा फेफड़े को नुकसान पहुँचानेवाली होती हैं।

शकरकन्द मृदु विरेचक भी माना जाता है।

मलाया में इसके कन्द का पेय बनाकर ज्वर के अन्दर प्यास को बुझाने के लिये दिया जाता है। इसके कन्द से उत्तम जाति की शराब तैयार की जाती है। आलू की अपेक्षा इसमें शकर की मात्रा अधिक होती है मगर मांसवर्द्धक द्रव्य इसमें कम रहते हैं।

शंखाहूली [श्यामक्रान्ता]

नाम—संस्कृत—मेध्या, श्यामक्रांता, चंडा, शंखपुष्पी, शंखकुसुमा, पीतपुष्पी, रक्तपुष्पिका, नीलपुष्पी, विष्णुक्रांता, इत्यादि। हिंदी-शंखाहुली, शंखपुष्पी, कौडियाला, श्यामक्रांता। गुजराती-शंखावली। बंगाल—शंखाहुली, डाकुनी। मराठी—शंखावड़ी। लेटिन—Evolvulus alsinoides (इव्होलवूलस अलसीनाइडेस)।

वर्णन—शंखाहुली की छोटी छोटी वेलें जमीन के ऊपर फैली हुई रहती हैं। इसके पत्ते छोटे और धूसर रंग के होते हैं। इसके फूल लाल, सफेद और नीले ३ रंग के होते हैं। ये फूल शंख की आकृति के होते हैं। फूलों के रंग के भेद से शंखाहुली भी लाल, सफेद और नीली ३ प्रकार की होती है। इसके सारे पौधे पर सफेद या भूरे रंग का मुलायम रुआँ रहता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से शंखाहुली, बुद्धिवर्धक, आयुवर्द्धक, मानसिक रोगों को हटानेवाली, रसायन, कसेली, गरम, स्मरणशक्तिवर्द्धक, कांतिजनक, बलवर्द्धक, अग्निदीपक, चरपरी, सारक, शीतल, स्वर को उत्तम करनेवाली, मंगलकारक, अवस्थास्थापक, पाचक तथा कोढ़, कृमि, विष, पित्त, अपस्मार और सब प्रकार के उपद्रवों को दूर करनेवाली होती है। सब प्रकार की शंखाहुली गुणों में समान होती है।

निघंटुरत्नाकर के मतानुसार सफेद शंखाहुली बुद्धिवर्द्धक, शीतल, वशीकरण, सिद्धिदायक, रसायन, सारक, स्वर को सुन्दर करने वाली, किंचित् उष्ण, कसैली तथा स्मरण शक्ति, कांति और अग्नि को बढ़ानेवाली होती है। यह चरपरी, पाचक, अवस्थास्थापक, मंगलकारक तथा पित्त, विषदोष, मृगी, कफ, कृमि, विष, कोढ़, त्रिदोष, ग्रहदोष और सब प्रकार के उपद्रवों को दूर करती है। लाल और नीली शंखाहुली के गुण भी इसी के समान ही होते हैं।

यूनानी हकीमों के मतानुसार यह वनस्पति मस्तिष्क और स्मरण शक्ति को बल देनेवाली होती है।

शंखाहुली की प्रधान क्रिया मनुष्य के मस्तिष्क पर होती है। आयुर्वेदिक चिकित्सा विज्ञान में मनुष्य के मस्तिष्क को शक्ति देनेवाली जितनी वनस्पतियाँ बतलाई गई हैं उनमें ब्राह्मी, शंखाहुली और बच ये तीन सर्वप्रधान हैं। शंखाहुली मस्तिष्क को शक्ति देती है और उन्माद, मृगी, स्मरणशक्ति की कमजोरी, इत्यादि मस्तिष्क-सम्बन्धी बीमारियों में लाभ पहुँचाती है। इसका स्वरस शहद और कूट के साथ देने से सब प्रकार के पागलपन में लाभ पहुँचाता है। इसके पंचांग की लुग्दी दूध के साथ देने से मस्तिष्क को शक्ति मिलती है। बुद्धि में सुधार होता है और खाली पड़ा हुआ मस्तिष्क भर जाता है। सारक गुण होने की वजह से भी यह मस्तिष्क पर उत्तम असर पहुँचाती है। इसको थोड़े दिनों तक खाने से मनुष्य की स्मरणशक्ति बढ़ जाती है। इसके चूर्ण की मात्रा ३ माशा और स्वरस की मात्रा २ तोले तक होती है।

धरमपुर के वकील नरभेराम गोविन्दराम ने मधुप्रमेह के ऊपर इस वनस्पति का प्रयोग किया। वे अपने अनुभव से इस वनस्पति के सम्बन्ध में लिखते हैं कि—

'शंखाहुली से नवजीवन प्राप्त होता है। यह शरीर के प्रत्येक तत्त्व को नया जीवन प्रदान करती है। मस्तिष्क की भ्रमण, अशक्ति इत्यादि में यह बहुत लाभ करती है। मुझे एक साधु ने यह औषधि बतलाई थी। उसके बाद मैंने स्वयं इसका काफी अनुभव किया। प्रतिदिन सबेरे इसके पञ्चांग का आधा तोला चूर्ण गाय के मक्खन के साथ लेना चाहिये। यद्यपि इससे मेरा मधुप्रमेह दूर नहीं हुआ पर मेरी कमजोरी बिलकुल दूर हो गई और मुझे नया जीवन प्राप्त हुआ है।'

बूटीप्रचार वैद्यक में लिखा है कि शंखाहुली शरीर के बहते हुए रक्त को रोकती है। उँगली या अँगूठा पक गया हो तो उसमें लाभ पहुँचाती है। दमा और पुरानी खाँसी पर इसके पत्तों की सीगरेट बनाकर पीने से लाभ होता है।

महर्षि चरक ने 'मेध्या विशेषेण तु शंखपुष्पी' लिखते हुए बतलाया है कि स्मरणशक्ति को बढ़ानेवाली औषधियों में शंखाहुली प्रधान है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि शंखाहुली मस्तिष्क और मज्जातन्तुओं को बल देनेवाली, दीपन, आनुलोमिक, ज्वरनाशक, पौष्टिक और गर्भाशय को शक्ति देनेवाली होती है। ज्वर के अंदर अथवा ज्वर के बाद की कमजोरी को दूर करने के लिये पौष्टिक वस्तु की तरह इसका बहुत उपयोग किया जाता है। ज्वर में जब रोगी बेसुध हो जाता है और प्रलाप करने लगता है उस समय उसके मस्तिष्क को शक्ति देने के लिये और उसे नींद आने के लिये शंखाहुली की फांट बनाकर देते हैं अथवा शंखाहुली को जीरा और दूध के साथ पीसकर देते हैं। बच्चों के विषम ज्वर में इसकी जड़ दी जाती है। आँतों के रोगों में और विशेषकर आमातिसार में इसके पञ्चांग की फाँट बनाकर दी जाती है। दमा और जीर्ण श्वासनलिका की सूजन में इसके पत्तों को चिलम में रखकर उनका धूम्रपान किया जाता है। रक्तस्राव को बंद करने के लिये इसका स्वरस दिया जाता है।

डॉक्टर खोरी लिखते हैं कि शंखाहुली मृदुविरेचक, रक्तशोधक, रसायन और ज्ञानतंतुओं को बल देनेवाली होती है। इसका ताजा रस उन्माद, कमजोरी, कण्ठमाला और अजीर्ण वगैरह रोगों में दिया जाता है।

डायमाक का कथन है कि वेदों के समय में शंखाहुली गर्भदाता मानी जाती थी परंतु उसके बाद के समय में वह मस्तिष्क को शक्ति देनेवाली मानी जाती है।

एंसली के मतानुसार तामील लोग इसके पत्ते, डंठल और जड़ों का निर्यास बनाकर चाय के आधे कप की मात्रा में दो बार आँतों के कुछ निश्चित रोगों को दूर करने के लिये देते हैं। अतिसार या पेचिश की बीमारी में यह एक बहुमूल्य औषधि मानी जाती है।

सीलोन में इसका पौधा कटुपौष्टिक और ज्वरनाशक माना जाता है।

मेडागास्कर में इसकी जड़ प्रवाहिका रोग को दूर करनेवाली मानी जाती है।

प्राचीन खाँसी और दमे के अंदर इसकी सिगरेट बनाकर पीने से लाभ होता है।

बनावटें—शंखपुष्पी चूर्ण—शंखाहुली के पञ्चांग को छाया में सुखाकर उसका चूर्ण कर लेना चाहिये यह शंखाहुली का चूर्ण कहलाता है।

इस चूर्ण को ३ माशे की मात्रा में दूध के साथ लेना चाहिये। जङ्गलनी जड़ी बूटी के लेखक अपना निजी अनुभव बतलाते हुए लिखते हैं कि संस्कृत भाषा के कठिन विषय तथा अङ्गरेजी भाषा में मैट्रिक बी० ए० वगैरह का अभ्यास करनेवाले अनेक विद्यार्थियों को यह चूर्ण पेटेंट औषधि की तरह दिया गया था। इन विद्यार्थियों का मगज जब पढ़ते-पढ़ते थक जाता था और अधिक पढ़ने में जब अपने को असमर्थ पाते तब एक ब्रेनटॉनिक की तरह इस चूर्ण को तीन माशे की मात्रा में वे दूध के साथ पी लेते थे। जिससे उनके मस्तिष्क की सब थकावट उतर जाती थी। मस्तिष्क हलका फूल हो जाता था और जैसे कुछ न पढ़ा हो ऐसे नवीन उत्साह से फिर पढ़ते थे और जो कुछ वह पढ़ते थे उनको सभी प्रकार याद रहता था।

शंखिनी चूर्ण—गिलोय का सत्त्व, अपामार्ग की जड़, वायविडंग, शंखाहुली का पंचांग, कूट, वच, शतावरी और हरड़ इन सब चीजों को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण को प्रतिदिन सबेरे शाम तीन-तीन माशे की मात्रा में दूध के साथ लेने से थोड़े ही दिनों में मनुष्य की स्मरणशक्ति बहुत तीव्र हो जाती है।

बुद्धिवर्धक घृत—जटामांसी, कड्ड, बिदारीकंद, मुलहटी, चंदन, अनंतमूल, वच, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिरच, पीपर, हल्दी, दारुहल्दी, पटोलपत्र और सेंधानमक इन सब चीजों को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये और उस चूर्ण को पानी के साथ चटनी की तरह पीसकर लुग्दी बना लेना चाहिये। फिर इस चूर्ण का जितना वजन हो उतना ही घी, उतना ही दूध और उस चूर्ण के वजन से तिगुना शंखाहुली का रस मिलाकर हलकी आँच पर पकाना चाहिये। जब दूध और शंखाहुली का रस जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब उसको उतार कर छान लेना चाहिये।

महर्षि वाग्भट लिखते हैं कि इस घी को एक से चार तोले तक की मात्रा में दूध के साथ लेने से मनुष्य दीर्घायु, उत्तम बुद्धिवाला, महान धारणा शक्तिवाला, कान्तियुक्त और प्रशस्त वाणीवाला होता है।

शकरपिटन

नाम—हिन्दी—शकरपिटन, सेहुँड, थूहर। पंजाब—शकरपिटन, थोर। राजपूताना—थोर। देहरादून—थोर। गढ़वाल—सुराई। लेटिन—Euphorbia royleana (यूफोर्बिया रायलिएना)।

वर्णन—यह थूहर की एक जाति होती है। इसका छोटा वृक्ष होता है। यह हिमालय में सिंध से लेकर कुमाऊँ तक ६ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है। इसके हर एक अंग में दूध रहता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके दूधिया रस में कृमिनाशक और विरेचक तत्व रहते हैं।

शतावरी [शकाकुल]

नाम—संस्कृत—शतमूली, शतावरी, भीरुपत्री, महापुरुषदन्ती, सहस्रवीर्या, महौषधि इत्यादि। हिन्दी—सतावर, शतमूली, शकाकुल। बंगाल—शतमूली। बम्बई—शतावरी। गुजराती—सतावरी। मराठी—सतावर। पंजाब—बोझीदान, सतावर। उर्दू—सतावर। फारसी—शकाकुल। अरबी—शकाकुल। लेटिन—Asparagus racemosus (एस्पेरागस रेसीमोसस) A. sarmentosus (एस्पेरागस सारमेन्टोसस)।

वर्णन—शतावरी की लताएँ झाड़ों के ऊपर बहुत ऊँची चढ़ जाती हैं। इसमें थोड़े-थोड़े अन्तर पर तीक्ष्ण कांटे रहते हैं। इसके पत्ते बहुत महीन, सोया के पत्तों की तरह होते हैं। इसके फूल सफेद और छोटे होते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक बड़ी शतावरी और एक छोटी शतावरी। छोटी शतावरी की बेलों से बड़ी शतावरी की बेल बड़ी रहती है। इस बेल के नीचे जमीन के अन्दर सैकड़ों जड़ें फैली हुई रहती हैं। एक-एक बेल के नीचे से दस-दस सेर तक शतावरी की जड़ प्राप्त हो जाती है। इन जड़ों के ऊपर हरे रंग का पतला छिलका रहता है। इस छिलके को निकाल देने पर भीतर से दूध के समान सफेद रंग की जड़ें निकलती हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष में प्रायः सभी ओर पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से शतावरी भारी, शीतल, कड़वी, मधुर, रसायन, बुद्धिवर्धक, अग्निदीपक, पौष्टिक, स्निग्ध, नेत्रों को हितकारी, गुल्मनाशक, अतिसारनिवारक, कामोद्दीपक, स्तनों में दूध बढ़ाने वाली, बलकारक तथा वात, रक्तपित्त और सूजन को दूर करनेवाली होती है।

राजनिघंटु के मतानुसार शतावरी, शीतल, कड़वी, मधुर, पित्तनाशक, कफ और वात को हरनेवाली, वीर्य-वर्धक और रसायन कर्म में श्रेष्ठ है।

निघंटु रत्नाकर के मतानुसार शतावरी मधुर, शीतल, वीर्यवर्धक, कड़वी, रसायन, भारी, स्वादिष्ट, स्निग्ध, दूध बढ़ानेवाली, अग्निदीपक, बलकारक, बुद्धिवर्धक, कामोद्दीपक, नेत्रों को हितकारी, पौष्टिक तथा पित्त, कफ, वात, क्षय, रुधिर विकार, गुल्म, सूजन और अतिसार को दूर करनेवाली होती है।

महर्षि चरक के मतानुसार शतावरी अवस्था स्थापक, वृद्धावस्था से रक्षा करनेवाली और वीर्यवर्द्धक होती है।

महर्षि सुश्रुत के मतानुसार नहीं दिखनेवाले बवासीर को नाश करने में शतावरी की जड़ का कल्क (लुग्दी) समर्थ होता है। इसको दूध के साथ लेना चाहिये।

बड़ी शतावरी—निघण्टु रत्नाकर के मतानुसार बड़ी शतावर हृदय को हितकारी, बुद्धिवर्धक, अग्निदीपक, वीर्यवर्धक, शीतल, बलकारक, कामोद्दीपक, रसायन तथा बवासीर, संग्रहणी और नेत्र रोग को हरनेवाली होती है।

राजनिघंटु के मतानुसार बड़ी शतावर वात-कफनाशक, कड़वी और रसायन कार्य में श्रेष्ठ होती है।

शतावरी के अंकुर कड़वे, वीर्यवर्द्धक, हलके, हृदय को हितकारी तथा त्रिदोष, पित्त, वातरक्त, बवासीर, क्षय और संग्रहणी रोग को नष्ट करनेवाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ किञ्चित् मीठी, कामोद्दीपक, मृदुविरेचक, कफनिस्सारक, स्तनों में दूध पैदा करनेवाली और पौष्टिक होती है। यह गुर्दे और यकृत की बीमारियों को दूर करनेवाली होती है। यह सुजाक, पुरातन प्रमेह और मूत्र की जलन को दूर करती है।

डॉक्टर देसाई के मतानुसार शतावर मधुर, शीतल, भारी, दुग्धवर्द्धक, मूत्रल, वीर्यवर्द्धक, बलकारक और कामोद्दीपक होती है। इसमें कुछ संकोचक धर्म भी रहता है। इसके ये सब धर्म इसकी ताजी जड़ों को उपयोग में लेने से स्पष्ट दिखलाई देते हैं।

शतावरी का प्रयोग वात, पित्त और कफ इन तीनों ही दोषों को शमन करने के लिये होता है। पित्त प्रकोप, अजीर्ण और दस्तों में इसको शहद के साथ मिलाकर देते हैं। वात रोगों में शहद, दूध और पीपल के साथ देते हैं और वेदनाग्रस्त अंगों पर इसका लेप करते हैं। कफ रोगों में शतावरी का पाक बनाकर देते हैं। जीर्ण ज्वर अथवा दूसरे किसी भी रोग में रोगी को शक्ति देने के लिये शतावरी को दूध के अन्दर पेज बनाकर उसमें मिश्री और जीरा मिलाकर देते हैं। इस पेज से रोगी की शक्ति बढ़कर उसके शरीर में सुर्खी पैदा होती है। पथरी की वेदना को कम करने के लिये इसकी जड़ को पानी के अन्दर पीसकर बनारसी शक्कर के साथ देते हैं। गर्भाशय की पीड़ा को कम करने के लिये तथा मनुष्य की कामवासना को जाग्रत करने के लिये इसकी जड़ों को पीसकर दूध, शहद और पीपर के साथ देते हैं। शतावरी के अंकुरों की तरकारी अजीर्ण रोग में दी जाती है इससे पेट की वायु निकलती है। दस्त साफ होता है और अन्न पचता है। रेचक के अन्दर इसकी जड़ की पेज बनाकर देते हैं।

मात्रा—गीली हालत में इसकी मात्रा १ तोले तक और सूखे हुए चूर्ण की मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक है।

इसकी जड़ और इसके पौधे का उपयोग चिकित्सा शास्त्र में ज्वरनाशक, शान्तिदायक, मूत्रल, कामोद्दीपक, आक्षेप निवारक, रसायन और प्रवाहिका तथा अतिसार को दूर करनेवाली औषधि के रूप में किया जाता है। पशु चिकित्सा के अन्दर यह एक शान्तिदायक पदार्थ की तरह काम में ली जाती है।

उपयोग—वाजीकरण—शतावरी का पाक बनाकर सेवन करने से अथवा दूध के साथ इसके चूर्ण की खीर बनाकर खाने से मनुष्य की कामशक्ति जाग्रत होती है और उसका वीर्य बढ़ता है।

सूखी खाँसी—शतावरी, अडूसे के पत्ते और मिश्री को औटाकर पीने से सूखी खाँसी मिटती है।

अनिद्रा—दूध में शतावरी के चूर्ण की खीर बनाकर उस खीर में घी मिलाकर खिलाने से अनिद्रा के रोगी को नींद आती है।

वात ज्वर—शतावरी के रस में गिलोय का रस और गुड़ मिलाकर पीने से वात ज्वर मिटता है।

वात व्याधि—शतावरी से सिद्ध किये हुए तेल का मर्दन करने से वात व्याधि मिटती है।

मूत्र विकार—शतावरी और गोखरू का शर्बत बनाकर पीने से मूत्र विकार मिटते हैं। गोखरू के पंचांग के साथ शतावरी को औटाकर छानकर उसमें मिश्री और शहद मिलाकर पिलाने से मूत्र की जलन और मूत्रकी रुकावट मिटती है।

रक्तातिसार—गीली शतावरी को दूध के साथ पीस-छानकर पीने से रक्तातिसार मिटता है। इसके स्वरस से घी को सिद्ध करके उस घी को पिलाने से भी रक्तातिसार मिटता है।

मस्तक शूल और आधा शीशी—शतावरी की ताजी जड़ को कूटकर, उसका रस निकालकर, उस रस में समान भाग तिलों का तेल डालकर उस तेल को सिद्ध करके मर्दन करने से मस्तक पीड़ा और आधा शीशी मिटती है।

स्वर भंग—शतावरी, खरेंटी और शक्कर को शहद के साथ चाटने से स्वरभंग मिटता है।

मदात्यय—शतावरी का रस, मुलहठी की लुग्दी और दूध इन तीनों चीजों से सिद्ध किये हुये घृत को पीने से मदात्यय मिटता है।

वातरक्त—शतावरी के ४ सेर रस और एक सेर लुग्दी में ४ सेर दूध और सेर भर घी डालकर उस घी को सिद्ध करके पिलाने से वातरक्त मिटता है।

दाह और शूल—शतावरीके रस में शहद और दूध मिलाकर प्रातःकाल में पिलाने से दाह, शूल और सब प्रकार के पित्त रोग मिटते हैं।

मूत्रकृच्छ्र—शतावरी की जड़ के क्वाथमें शहद और शक्कर मिलाकर पीने से त्रिदोषजन्य मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

पथरी—शतावरी के रस में समान भाग गाय का दूध मिलाकर पिलाने से पुरानी पथरी बहुत जल्दी गल जाती है।

प्रदर—शतावरी के स्वरस में शहद मिलाकर पीने से पित्त का प्रदर मिटता है।

दूध की कमी—शतावरी के चूर्ण को दूध के साथ सेवन करनेसे स्त्री के स्तनोंमें दूध बढ़ता है।

विष विकार—शतावरी की जड़ के रस में दूध मिलाकर पिलाने से सब प्रकार के विष की शांति होती है।

अपस्मार—एक तोला शतावरी का चूर्ण दूध के साथ सेवन करने से अपस्मार में लाभ होता है।

रक्तविकार—शतावरी के स्वरस में मिश्री मिलाकर उसका शर्बत बनाकर उस शर्बत में केशर, इलायची, जायफल, जावित्री इत्यादि मसाले मिलाकर एक से दो तोले तक की मात्रा में गाय के दूध के साथ मिलाकर ५-६ सप्ताह तक सेवन करने से रक्त शुद्ध होकर सब प्रकार के रक्तविकार मिटते हैं।

बनावटें—शतावरी घृत—शतावरी का कल्क (लुग्दी) ६४ तोले, घी ६४ तोले और दूध २५६ तोला, इन तीनों चीजों को मिलाकर हलकी आँच पर पकावें। जब सब चीजें जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब उसको छान लेना चाहिये। इस घी को १ से २ तोले तक की मात्रा में दूध के साथ लेने से अम्लपित्त, रक्तपित्त के विकार, वातपित्त के विकार, श्वास, मूर्च्छा, तृषा, इत्यादि अनेक प्रकार के रोग मिटते हैं।

फल घृत—मेदा, मजीठ, मुलेठी, कूट, त्रिफला, खरैंटी, बिदाईकन्द, काकोली, क्षीर काकोली, असगन्ध, अजवाइन, हलदी, हींग, कुटकी, नीलकमल, दाख, सफेद चन्दन का बुरादा, लालचन्दन इन सब चीजों को दो दो तोला लेकर इनका चूर्ण करके फिर उस चूर्ण को पानी के साथ सिलपर पीसकर उसकी लुग्दी बना लेनी चाहिये। फिर उस लुग्दी को बड़ी कड़ाही में रखकर उसपर चार सेर बछड़े वाली गाय का घी, १५ सेर शतावरी रस और ४ सेर गाय का दूध डालकर मन्दी आँच से पकाना चाहिये। जब सब चीजें जल कर घी मात्र शेष रह जाय तब उसको छानकर बोतलों में भर लेना चाहिये।

इस घी को ६ माशे से लेकर २ तोले तक की मात्रा में दूध के साथ बलाबल के अनुसार खाने से बल, वीर्य और खून बढ़ता है। यह घी अत्यन्त वृष्य या वाजीकरण है। यह घी स्त्रियों के योनि रोग, हिस्टीरिया और उन्माद पर भी रामबाण सदृश असर दिखलाता है। इसके सेवन से बन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती होती है।

शतावरी पाक—शतावरी की जड़ १० तोले, पवाँर की जड़ १० तोले, खरैंटी की जड़ १० तोले, इन तीनों चीज़ों को कूटपीस कर चूर्ण करके उस चूर्ण को पाव भर घी के अन्दर भूंज लेना चाहिये। ४५ तोला खोआ भी भूंजकर इसमें मिला देना चाहिये। उसके पश्चात् लौंग १ तोला, इलायची ९ तोला, जायफल १ तोला, जावित्री १ तोला, गोखरू १ तोला, किसमिस २० तोला और बादाम की मगज २० तोला। इन सब चीजों को उसमें मिलाकर १०० तोले मिश्री की चाशनी बनाकर उस चाशनी में सब औषधियों को अच्छी तरह मिलाकर आधी आधी छटाँक के लड्डू बना लेना चाहिये।

इसमें से एक-एक लड्डू सवेरे-शाम खा कर ऊपर से गाय का दूध पीने से शरीर खूब पुष्ट और बलवान होता है। तथा सब प्रकार के रक्त रोग भी आराम होते हैं।

शदाबुटी

नाम—बंगाल—शदबुटी। तामील—सगादम—कोंडाम। लेटिन—Secamone emetica (सेकेमान इमेटिका)।

वर्णन—यह एक प्रकार की झाड़ीनुमा बेल करनाटक, कोइम्बतूर, नेलूर और दक्षिण में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति एक तीव्र वमनकारक पदार्थ की तरह उपयोग में ली जाती है।

शहतूत

नाम—संस्कृत—तूत, ब्रह्मकाष्ठ, मनसार इत्यादि। हिन्दी—शहतूत, तून। मराठी—तून। बंगाल—तूत। बम्बई—शेतूर तूत, अम्बोर। गुजराती—शेतूर। कोकण—अमोर। पंजाब—तूत, करन। उर्दू—शयाहेतूत। फारसी—शिहातूत। लेटिन—Morus indica (मोरस इंडिका)।

वर्णन—शहतूत के वृक्ष बाग-बगीचों में बहुत लगाए जाते हैं। इसके पत्ते अंजीर के पत्तों की तरह तीन कंगूरे वाले और नीम के पत्तों के सदृश चारों ओर से चिह्न वाले होते हैं। इसके फल मंजरी की तरह लगते हैं। यह मंजरी अत्यन्त कोमल, मीठी और रसीली होती है। शहतूत दो प्रकार की होती है। एक काली और दूसरी सफेद। एक को लेटिन में मोरस इंडिका और दूसरी को मोरस एलबा कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से पके हुए शहतूत भारी, शीतल, मधुर, संकोचक, कुछ खट्टे, वात-पित्त को नष्ट करने वाले और रक्तविकार तथा रक्तपित्त को नष्ट करने वाले होते हैं। कच्चे शहतूत भारी, सारक, खट्टे, गरम और रक्तपित्त को पैदा करने वाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से शहतूत के पत्ते गीली खुजली और गले के व्रण में लाभदायक होते हैं। इसका फल खट्टा, मीठा, पौष्टिक, कामोद्दीपक, चर्बी बढ़ाने वाला, मूत्रल, कृमिनाशक, रक्तशोधक और भूख बढ़ानेवाला होता है। यह मस्तिष्क हृदय और तिल्ली को शक्ति देता है। चेचक, गले के रोग, कटिवात, प्रवाहिका और आँतों के घाव में भी यह उपयोगी होता है। इसकी जड़ विरेचक होती है। इसके बीज पैरों के अन्दर फटी हुई बिवाई को दुरुस्त करते हैं।

इस झाड़ के फलों का रस और इनका शरबत दाह को शमन करनेवाला, प्यास को दूर करने वाला और कफनाशक होता है। ज्वर में एक शांतिदायक वस्तु की तरह इसका उपयोग होता है।

इसकी छाल कृमिनाशक और विरेचक होती है और इसकी जड़ भी कृमिनाशक होती है। इसके पत्तों का काढ़ा स्वरयन्त्र की खराबी और उसकी सूजन में कुल्ले करने के काम में लिया जाता है।

इसकी दूसरी जाति (Morus Alba) के फलों का रस ज्वर के अन्दर, एक प्रसन्नता पैदा करनेवाले और शांतिदायक पदार्थ की तरह दिया जाता है। यूनानी हकीम इसके फल को अजीर्ण, माली खोलिया और गले की बीमारी के अन्दर उपयोग में लेते हैं। इसकी छाल विरेचक और कृमिनाशक होती है।

चीन में इसकी जड़ छाल पौष्टिक, संकोचक और शक्तिदायक मानी जाती है। विशेष करके ज्ञानतन्तुओं की खराबी में इसका उपयोग किया जाता है।

इसकी तीसरी जाति जिसको लेटिन में मोरस नायग्रा कहते हैं बलूचिस्तान में पैदा होती है।

इसका फल ज्वरनाशक, मृदुविरेचक, शान्तिदायक और पौष्टिक होता है। इसका रस ज्वरसम्बन्धी बीमारियों में फिर से शक्ति प्राप्त करने के लिये एक बहुत उत्तम पेय समझा जाता है। यह प्यास को रोकता है और रक्त की गरमी को शान्त करता है। इसकी छाल विरेचक और कृमिनाशक मानी जाती है।

शंकेश्वर (छोटा गोखरू)

नाम—संस्कृत—अरिष्ट, भूलग्न, चाँद, कम्बुमालिनी, कीर्ति, शंखकुसुम शंखमालिनी। बंगाल—बनओकरा। बम्बई—शंकेश्वर। गुजराती—गाडरीयून। मराठी—शंखेश्वर। हिन्दी—छोटा गोखरू, बनओकरा, शंखाहुली, शंकेश्वर। सिंध—गोखरू कलाँ। तामील—मरलूमत्त। तेलगू—पारसबपू। आसाम—अंगारा। इंग्लिश—Cock Lebur। लेटिन—Xanthium srumarium (एक्सेंथियम स्त्रुमरियम)।

वर्णन—यह वर्षजीवी क्षुप हिन्दुस्तान में प्रायः सब ओर पैदा होता है। इसके पत्ते एक के पश्चात् एक लगते हैं। ये करीब ४ इञ्च लम्बे, डंठलयुक्त और हृदयाकृति होते हैं। इसके पत्तों के दोनों तरफ रुएँ होते हैं। इसके फूल डाली के सिरे पर लगते हैं। इसका बीजकोष अण्डाकृति, चपटा और मुलायम होता है। इसके पत्तों का चूर्ण बालों को रंगने के काम में लिया जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मतानुसार यह वनस्पति तीक्ष्ण, कसेली, विरेचक, मज्जावर्धक, कृमिनाशक, शीतल, विषनाशक, धातुपरिवर्तक, पौष्टिक, पाचक, ज्वरनिवारक, क्षुधावर्धक, स्वरशोधक, कान्तिवर्द्धक और स्मरणशक्ति को जाग्रत करने वाली होती है। यह धवलरोग, पित्त, मृगी, ज्वर और जहरीले जानवरों के डंक पर लाभदायक होती है। बच्चों के दाँत निकलने के समय की तकलीफों में भी यह उपयोगी होती है।

डाक्टर देसाई के मतानुसार शंकेश्वर पसीना लानेवाला, लारवर्धक, कुछ मूत्रल, शामक और शोथनाशक होता है। यह दुनियाँ के कई देशों में उपयोग में लिया जाता है। मलेरिया ज्वर और जीर्णज्वर में इसके पत्तों का काढ़ा बनाकर दिया जाता है। चेचक की बीमारी में दाह को कम करने के लिये और दानों को अच्छी तरह से बाहर निकाल देने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। गंडमाला और दूसरे दुःखदायक व्रणों के ऊपर इसका लेप किया जाता है। वस्तिशोथ और पुराने सुजाक के अन्दर इसके ३० रत्ती पञ्चांग की फांट बनाकर देते हैं।

इण्डोचायना में यह वनस्पति स्निग्ध और संकोचक वस्तु की तरह काम में ली जाती है। इसकी जड़ का रस नासूर, फोड़े और दुष्ट व्रणों के ऊपर लगाने के काम में लिया जाता है।

लारि यूनियन में यह वनस्पति कटु, संकोचक तथा गंडमाला और दाद को मिटानेवाली मानी जाती है।

सुश्रुत के मतानुसार यह वनस्पति सर्पदंश में दूसरी औषधियों के साथ उपयोग में ली जाती है मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्पविष में निरुपयोगी होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति पसीना लानेवाली, शाँतिदायक, ज्वरनिवारक और लारस्रावक होती है। बिच्छू के विष पर भी यह उपयोगी मानी जाती है। इसमें ग्लूकोसाइड, भेंथोस्टमेरिन और आक्झेलिक एसिड पाये जाते हैं।

शङ्ख

नाम—संस्कृत—शंख, कम्बु, पांचजन्य, सुनाद, श्वेतपूत, विष्णुप्रिय इत्यादि। हिन्दी—शंख। गुजराती—शंख। बंगाल—शंख। मराठी—शंख। अङ्गरेजी—Conch। लेटिन—Turbinella rapa (टर्बिनेला रेपा)।

वर्णन—शंख एक प्रकार का कीड़ा होता है। जो समुद्र में तथा बड़ी नदियों में पैदा होता है। आयुर्वेद के मत से यह दक्षिणावर्त और वामावर्त के भेद से दो प्रकार का होता है। दक्षिणावर्त शंख पुण्ययोग से ही कभी किसी को प्राप्त होता है। जिसके घर में यह रहता है उसके लक्ष्मी की अधिक वृद्धि होती है। औषधि प्रयोग में अधिकतर वामावर्त शंख ही काम में लिए जाते हैं। निर्मल और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल, सफेद और चमकदार शंख को ही औषधि प्रयोग में लेना चाहिये।

इसके अतिरिक्त कृमिशङ्ख, क्षुद्रशंख और घोंघा ये तीन प्रकार के शंख आयुर्वेद में और माने गये हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से शंख पौष्टिक, बलकारक, कड़वा, खारा, शीतल, मलरोधक, नेत्रों को हितकारी, कान्तिवर्द्धक तथा आँख की फूली, पक्तिशूल, गुल्म, संग्रहणी, तारुण्य-पिडिका और श्वास को नष्ट करनेवाला होता है। दक्षिणावर्त शंख त्रिदोष, कामला, विषदोष, क्षय, नेत्ररोग और ग्रह की पीड़ा को दूर करता है।

शंख नेत्रों को हितकारी, शीतल, हलका तथा पित्त, कफ और रुधिर के विकारों को दूर करता है।

शंख चरपरा, सारक, शीतल, पौष्टिक, कामोद्दीपक तथा गुल्म, शूल, श्वास और विष के विकारों को हरता है।

क्षुद्र शंख शीतल, नेत्ररोग नाशक, स्फोटक को दूर करनेवाला, शीतज्वर नाशक, तीक्ष्ण, ग्राही, दीपन और पाचक होता है।

घोंघा चरपरा, कड़वा, मधुर, शूलनाशक, दीपन और पित्त को दूर करनेवाला होता है।

शंख को शुद्ध करने की विधि—शंख के छोटे २ टुकड़े करके एक पोटली में बाँधकर दोलायन्त्र के अन्दर गोमूत्र और नींबू के रस में ४ प्रहर तक हलका आँच में औटाने से वह शुद्ध हो जाता है। ५ सेर गोमूत्र में आधा पाव नींबू का रस और १ सेर सेंधा नमक मिलाना चाहिये। ५ सेर गोमूत्र में १ सेर तक शंख शुद्ध हो सकते हैं।

शंख को भस्म करने की विधि—शंख को अग्नि में लालकर-करके नींबू के रस में तब तक बार-बार बुझाना चाहिये जब तक कि वह बिखरकर टुकड़े २ न हो जाय। फिर एक सकोरे में घीगुवार के गूदा के बीच में उस शंख के चूर्ण को रख कर उसके ऊपर भी घीगुवार का गूदा रख देना चाहिये। फिर उस सकोरे का मुँह कपड़मिट्टी से बन्द करके गजपुट में फूँक देना चाहिये। इससे एक ही बार में उत्तम और सफेद रङ्ग की भस्म तैयार हो जाती है।

यह शंख भस्म सलोनी, शीतल और ग्राही होती है। संग्रहणी, नेत्र की फूली, पेट की पीड़ा और तारुण्य पिडिकाओं को दूर करती है। इस भस्म में केलशियम का बहुत अंश रहता है। अतः केलशियम की कमी से शरीर

के अन्दर जितने विकार पैदा होते हैं उन सब में यह बहुत लाभ पहुंचाती है। इसमें कुछ फास्फोरसका अंश भी रहता है। मन्दाग्नि, तिल्ली की वृद्धि, यकृत की खराबी तथा पेट में होने वाले दूसरे विकारों में भी यह भस्म बहुत लाभ पहुँचाती है। बच्चों के ब्रोंको निमोनिया अथवा डिब्बे की बीमारी में साम्हर के सींग की भस्म के साथ इसको देने से बहुत लाभ होता है।

उपयोग—संग्रहणी—शंख भस्म और सेंधानमक इन दोनों को समान भाग में लेकर ३ माशे की मात्रा में शहद के साथ लेने से संग्रहणी में लाभ होता है।

पक्तिशूल—शंखभस्म को ८ रत्ती की मात्रा में गरम जल के साथ देने से पक्तिशूल मिटता है।

अर्जुन रोग—शंखभस्म को शहद में मिलाकर आँखों में अञ्जन करने से अर्जुनरोग मिटता है।

अर्बुद—शंख का चूर्ण और मूली की भस्म का लेप करने से कफ की गठान और अर्बुद मिटाता है।

शाखापलीता

नाम—बम्बई—शाखापलीता। लेटिन—Asbestos (एसवेस्टोस)।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा ने इसका वर्णन खनिज पदार्थों में किया है। उनके मतानुसार इस वस्तु का लेप व्रणों के ऊपर किया जाता है।

शालपर्णी

नाम—संस्कृत—शालपर्णि, स्थिरा, सौम्या, दीर्घमूला, अंशुमती, सुधा, शोथघ्नी, कीटविनाशिनी, एकमूला, इत्यादि। हिन्दी—सरवन, शालपर्णी। बंगाल—शालपानी। मराठी—रानभाल, सालवण। गुजराती—सालवन, शालपर्णी। काठियावाड़—एक पानी पांदड़ियो। पंजाब—शालिपर्णी। उर्दू—सालवान। तामील—पुल्लाँदि। तेलगू—गीता नरम। लेटिन—Desmodium gangeticum (डेसमोडियम गेंजेटिकम)।

वर्णन—इस वनस्पति के क्षुप बरसात के दिनों में बहुत देखने में आते हैं। इसके पौधे एक से लेकर चार फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते लम्बे और मरोड़दार नोकवाले होते हैं। इनका आकार काठियावाड़ी घोड़े के कान की तरह होता है। इस वनस्पति के फूल कुछ बैंगनी छाया लिये हुए गुलाबी रङ्ग के बहुत छोटे-छोटे होते हैं। इसकी फलियाँ पतली, चपटी, बाँकी, नोकदार और ३, ५ तथा ८ सन्धियोंवाली होती हैं। इनकी हर एक सन्धि में एक-एक बीज रहता है। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में रास्तों की बाजू पर, नदी-नालों के किनारों तथा खेतों की बाड़ी पर पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से शालपर्णी तिक्त रसवाली, पचने में भारी, गरम, रसायन, कामोद्दीपक, स्वादिष्ट, कृमिनाशक, मेदवर्द्धक और आँतों को संकुचित करनेवाली होती है। यह मोती ज्वर (Typhoid) और दूसरे ज्वर, ज्वर की वजह से होनेवाली मानसिक खराबी, वात, प्रमेह, बवासीर, सूजन, दमा, खाँसी, त्रिदोष, प्यास, वमन, अतिसार, कफ, पित्त को नष्ट करनेवाली और गर्भ के अन्दर भ्रूण की रक्षा करनेवाली होती है। आधा शीशी रोग में भी इसका उपयोग होता है।

यूनानी मत से इसकी जड़ प्रवाहिका को रोकनेवाली, पौष्टिक, पित्त विकार को दूर करनेवाली, जीर्ण ज्वर में लाभदायक और छाती तथा फेफड़ों की पुरानी बीमारियों में लाभदायक तथा वमन और मिचलाहट को दूर करने वाली होती है।

शालपर्णी आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध योग दशमूल क्वाथ का एक अङ्ग है। दशमूल क्वाथ प्रसूति के समय होनेवाली सब प्रकार की बाधाओं को दूर करके शरीर को सुरक्षित रखता है। शालपर्णी की जड़ और पत्तों का काढ़ा काली मिर्च के साथ रक्त के दोषों को सुधारने के लिये दिया जाता है यह एक सुप्रसिद्ध औषधि है। चिरायते के साथ शालपर्णी की जड़ को औटाकर पिलाने से ज्वर छूट जाता है। नाभि, वस्ति और योनि के ऊपर शालपर्णी की जड़ का लेप करने से मूढ़ गर्भ बाहर निकल जाता है। श्लेष्म त्वचा के अन्दर सूजन पैदा होकर अगर ज्वर आ जाय तो उसमें इस वनस्पति का उपयोग लाभदायक होता है।

शालपर्णी की एक जाति और होती है जिसको काठियावाड़ में त्रिपानी पांदड़ियों और लेटिन में डेसमोडियम डिफ्यूसम (Desmodium Diffiusum) कहते हैं। इसके तीन तीन पत्ते साथ लगते हैं। इसके गुण धर्म भी शालपर्णी के समान ही होते हैं।

शिरगोला

नाम—संस्कृत—दुग्धपाषाण। हिन्दी—शिरगोला। बंगला—शिरगोला। मराठी—शिरगोला। गुजराती—दूधियोपाणो ।

वर्णन—यह एक जाति का पत्थर होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से शिरगोला रुचिकारक, गर्म, ज्वरनाशक तथा पित्त, हृदय रोग, शूल, खाँसी और आध्मान को दूर करता है।

शिकाकाइ

नाम—संस्कृत—सातला, भूरिफेना, आमला, चर्मकषा, दीप्ता, पत्रघना, विमला, विषाणिका इत्यादि। हिन्दी—चीकाकाई, शीकाकाई, कोचि, रीठा। बंगाल--बनरीठा। बम्बई—शीका, शीकाकाई। मराठी—शीकाकाई। गुजराती—चीकाकाई। तामील—सियाकाई। तेलगू—सिकाया। लेटिन—Acacia rugata (एकेसिया रुग्टा) A. concinna (एकेसिया कोन्सिना)।

वर्णन—यह एक बड़ी और काँटेदार झाड़ी होती है। इसकी डालियाँ भूरी और सफेद धब्बेवाली होती हैं। इसकी फली लम्बी होती है। उसकी रुचि अरीठे के समान होती है। मगर कुछ अधिक खट्टी और अधिक तीक्ष्ण होती है। इसके पत्ते खट्टे और रोचक होते हैं। इसकी एक एक फली में ६ से १० तक बीज रहते हैं। इसकी फलियों में साबुन के काम में आनेवाले झाग ११ प्रतिशत रहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी फलियाँ कड़वी, चरपरी, शीतल, पचने में हलकी, विरेचक, कृमिनाशक, प्रवाहिका को रोकनेवाली और बाधा नाशक होती हैं। ये भूख को बढ़ाती हैं। वात को दूर करती हैं और कफ, पित्त, दाह, रक्तरोग, धवलरोग, उदररोग, बवासीर तथा अग्नि विसर्परोगों में लाभ पहुँचाती हैं। यह हृदय के लिये पौष्टिक वस्तु है। इसके पत्ते विष विकार को दूर करते हैं और विरेचक होते हैं।

शिकाकाई की फली उत्तेजक, कफनाशक, वामक और मृदुविरेचक होती है। शरीर के ऊपर इसकी क्रिया अरीठे के समान होती है। इससे नाड़ी के ठोके कम होते हैं। और पेशाब की तादाद बढ़ती है। इसके पत्ते खट्टे, यकृत को उत्तेजित करनेवाले और विरेचक होते हैं। इमली के बदले में इनका उपयोग किया जाता है।

प्राचीन कफ रोगों में कफ को पतला करने के लिये और श्वास की रुकावट को कम करने के लिये २० गुने पानी में इसकी फाँट बनाकर एक से दो औंस तक की मात्रा में दी जाती है। इस फाँट से दस्त साफ होता है। इसके पत्तों को काली मिरच के साथ देने से विरेचन होता है। और कभी-कभी वमन भी होती है। इससे यकृत की क्रिया सुधरकर पित्त दस्त की राह से बाहर निकल जाता है। तेलंग प्रांत में इस रीति से इसके पत्तों का बहुत उपयोग किया जाता है। यकृत की विकृतिवाले को भोजन में खटाई लाने के लिये इमली की जगह शिकाकाई के पत्ते देते हैं।

इसकी फलियों के काढ़े से सिर धोने से सिर की जुएँ और लीकें मर जाती हैं और बाल लम्बे हो जाते हैं। इसके काढ़े में कपड़े की बत्ती को डुबोकर उसको बच्चों के गुदा द्वार में रखने से दस्त साफ होकर दस्त की गाँठें निकल जाती हैं।

चीन और जापान में इसकी फलियाँ वमनकारक, मूत्रल और मृदु विरेचक मानी जाती हैं। कब्जियत, गुर्दे की तकलीफ और मूत्राशय की बीमारियों में इनका उपयोग होता है। कुष्ठ, गुदाद्वार की खुजली, एक्झिमा, फोड़ा और काँख बलाई पर इसको लगाने के काम में लेते हैं। इसके बीज स्त्रियों की प्रसूति के समय प्रसूता को निर्विघ्न जानेवाले माने जाते हैं।

सुश्रुत और योगरत्नाकर के मतानुसार इसके फल का सर्पविष की चिकित्सा में उपयोग होता है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्पविष की चिकित्सा में निरुपयोगी है।

उपयोग—आफरा—इसके कोमल पत्तों का हिम या फाँट बनाकर पिलाने से आफरा मिटता है। इसके पत्तों को पीसकर गरम करके पेट पर लेप करने से भी आफरा मिटता है और हलके दस्त लगते हैं।

तिल्ली के रोग—इसके कोमल पत्तों का क्वाथ पिलाने से तिल्ली और यकृत की रस क्रिया सुधर जाती है।

सूखी खाँसी—इसकी फली के चूर्ण की फक्की देने से सूखी खाँसी मिटती है।

कामला रोग—इसकी फली से वमन कराने से ऐसा कामला जो हृदय की रुकावट से पैदा नहीं हुआ हो मिट जाता है।

ज्वर—इसकी फलियों को औटाकर पिलाने से दूषितवायु से पैदा हुआ ज्वर मिट जाता है।

शिंगटिक

नाम—हिन्दी-शिंगटिक। पञ्जाब-शीया, शेवा, शिंगटिक। लेटिन-Lonicera glauca (लोनीसेरा ग्लोका)।

वर्णन—यह वनस्पति उत्तरी पश्चिमी हिमालय में १२ हजार से लेकर १६ हजार फीट की ऊँचाई तथा गढ़वाल और कुमाऊँ में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इंडोचायना में इस वनस्पति के पत्ते और फूल मैथुन सम्बन्धी बीमारियों के लिये एक चमत्कारपूर्ण औषधि समझी जाती है।

शिवलिक

नाम—उत्तरपश्चिमी प्रान्त—शिवलिक। पुश्तु—संजित। इंग्लिश—Bohemian olive (बोहमिन ओलिव)। Elaeagnus hortensis (इलेगनस हारटेनसिस)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसकी ऊँचाई ५ से १० फीट तक होती है। इसके पत्ते २·५ से ७·५ सेंटिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल पीले रंग के और खुशबूदार होते हैं। इसके फल २ सेंटिमीटर लम्बे और लाल होते हैं। यह वनस्पति पश्चिमी हिमालय में ५ हजार फीट से १० हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके बीजों का तेल जुकाम और खाँसी के अन्दर उपयोगी होता है। इसके फूलों का रस सांघातिक ज्वरों के अन्दर देने से तत्काल लाभ पहुंचाता है।

शियाहकान्ता

नाम—हिन्दी-शियाहकान्ता, आगला, एला, अलरेल। बंगाल-कुचिकान्ता, शियाहकान्ता। राजपूताना-आला। गढ़वाल—खिनकारी। पञ्जाब—आला, किक्करी। सिंध—हजेरो। तामील—इगाई, कंड़ाई। लेटिन—Mimosa rubicaulis (मिमोसा रूबीकोलिस)।

वर्णन—यह लजालू के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसके फूल गुलाबी और सफेद रंग के होते हैं। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्तों का शीत निर्यास बवासीर के अन्दर उपयोगी होता है। इसके पत्तों को कुचलकर जले हुए स्थान पर लगाने से शान्ति मिलती है।

शिवलिंगी

नाम—संस्कृत—लिंगिनी, बहुपत्रा, ईश्वरी, शिववल्ली। हिन्दी—शिवलिंगी, ईश्वरलिंगी, गरुनरु। बम्बई-कवाला। बङ्गाल-शिवलिंगनी, माला। मराठी—शिवलिंगी। गुजराती—शिवलिंगी। तेलग—लिंलाडोंडा। लेटिन—Bryonia laciniosa (ब्रायोनिया लेसिनोसा)। इंग्लिश—Brayoni (ब्रयानी)।

वर्णन—शिवलिंगी की लताएँ बरसात के दिनों में बहुत पैदा होती हैं। इसके पत्ते झिल्लीदार होते हैं। ये ४ से लेकर ६ इञ्च तक लम्बे होते हैं। इसके नर फूल गुच्छों में और नारीफूल अलग २ लगते हैं। इसके फल पकने पर लाल रङ्ग के होते हैं। इन पर सफेद रंग की धारियां होती हैं। हर एक फल में कड़वा रस और छः छः बीज रहते हैं। यह वनस्पति प्रायः सारे भारत वर्ष में और विशेषकर कच्छ, काठियावाड़ में पैदा होती है। इसके बीज शिवलिंग के आकार के होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से शिवलिंगी चरपरी, गरम, दुर्गन्धित, रसायन, सर्वसिद्धिदायक, दिव्य, वशीकरण और पारे को बाँधनेवाली होती है।

पित्तप्रकोप और पित्तज्वर के अन्दर इस बेल का स्वरस दूध और शक्कर के साथ मिला कर देते हैं। इससे दस्त साफ होता है।

जिस स्त्री के बालक जीवित न रहते हों अथवा जिस स्त्री के बालक पैदा न होते हों, उसके लिये शिवलिङ्गी के बीज २७, पीपल की जटा ६ माशा, गजकेशर ६ माशा। इन तीनों चीजों को पीसकर सबकी तीन टिकड़ियाँ बना लें। स्त्री ऋतुधर्म से शुद्ध होकर स्नान करके कपिला गाय के दूध की खीर करे और उस खीर में गाय का घी और शक्कर डाले और उसमें ३ बीज शिवलिङ्गी के और एक टिकड़ी दवा को मिला दे। फिर पति के समीप जाकर ऋतुदान लेकर ऊपर से इस खीर को खाय। इस प्रकार तीन दिन तक करने से उसको गर्भ रहता है।

शिवनिंब

नाम—संस्कृत—शिवनिम्ब। कनाड़ी—शिवमल्लि। पंजाब—नील। लेटिन—Indigofera aspalathoides (इंडिगोफेरा एस्पेलेथाइडस)।

वर्णन—यह नील के वर्ग की वनस्पति कर्नाटक और लंका में बहुत पैदा होती है। इसका क्षुप झाड़ीनुमा होता है। इसके पत्ते लंबे गोल, बरछी आकार के, जुड़मा और फूल फीके लाल रंग के होते हैं। इसकी फली आधा इञ्च लम्बी होती है। हर एक फली में ६ से लेकर ८ तक बीज होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—शिवनिम्ब शीतल, स्निग्ध, रक्तशोधक, रक्तसंग्राहक, व्रणशोधक और व्रणरोपक होता है।

इसके पत्ते और फूल शीतल और शान्तिदायक होते हैं। इसका काढ़ा कुष्ठ और केन्सर तथा दूसरे फोड़ों के अन्दर पिलाया जाता है। इसकी जड़ों को मुँह में चबाने से दन्तशूल बन्द होता है और मुखक्षत में लाभ होता है। इसके सारे पौधे को पीसकर मक्खन में मिलाकर लगाने से सूजन, बादी की वेदना और अर्बुद की सूजन बिखर जाती है। इसके पत्ते फोड़ों के ऊपर लगाने के काम में लिये जाते हैं। अग्निविसर्प रोग में इसकी जड़ों से सिद्ध किया हुआ तेल सिर के अन्दर डाला जाता है।

कोमान के मतानुसार उपदंश और दूसरे चर्म रोगों को दूर करने के लिये जो तेल तयार किया जाता हैं उसमें यह वनस्पति भी एक प्रधान द्रव्य की तरह डाली जाती है। इस वनस्पति के पञ्चांग का काढ़ा एक धातु परिवर्त्तक औषधि की तरह उपदंश की दूसरी अवस्था के तथा दूसरे चर्म रोगों के बीमारों को दिया गया मगर उसका परिणाम सन्तोषजनक नहीं रहा।

शिलारस

नाम—संस्कृत—कपिनामा, कपितेल, सिल्हक, तुरुष्क, धूम्रवर्ण, तैलपर्णी, वृकधूम, अश्मपुष्प, इत्यादि। हिन्दी—शिलारस। बंगाल—शिलारस। गुजराती—शिलारस। मराठी—शिलारस। तामील—नेरिअरिशिप्पाला। तेलगू—शिलारसम्। लेटिन—Liquidamber orientalis (लिक्विडेम्बर ओरिएण्टेलिस) या Altingia excelsa (अलटिङ्गिया एक्सेलसा)।

वर्णन—शिलारस एक वृक्ष का सत्त्व होता है। यह वृक्ष आसाम, भूटान और पेगू में पैदा होता है। मगर फिर भी यह सुगन्धित पदार्थ विशेष करके अरबस्तान से भारतवर्ष में आता है। यह शहद की अपेक्षा गाढ़ा, भूरे रंग का, नरम और चीठा होता है। नवीन शिलारस में मिट्टी के तेल की तरह बहुत गन्ध आती है। मगर पुराना होने पर यह सुगन्धित हो जाता है। इसका स्वाद तीक्ष्ण रहता है। बहुत से व्यापारी इसके अन्दर डम्भर का तेल मिला देते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से शिलारस कान्तिवर्द्धक, स्वादिष्ट, कामोद्दीपक, वीर्यवर्द्धक, सुगन्धित, चरपरा, कड़वा, चिकना तथा कोढ़, कफ, पथरी, भूतबाधा, ज्वर, मूत्राघात, पसीना, खुजली, दाह और त्रिदोष को नष्ट करनेवाला होता है।

राजनिघण्टु के मतानुसार शिलारस कड़वा, सुगन्धित, चरपरा, स्निग्ध तथा कोढ़, कफ, पित्त, पथरी, मूत्राघात, भूतबाधा और ज्वर को नष्ट करता है।

भावप्रकाश के मतानुसार शिलारस स्वादिष्ट, चरपरा, स्निग्ध, गरम, बीर्यवर्धक, कांतिकारक, कामोद्दीपक तथा कण्डु, पसीना, कोढ़, ज्वर, दाह और ग्रह की पीड़ा को दूर करता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से शिलारस कडुवा, पौष्टिक, शान्तिदायक, कफनिस्सारक और जुकाम, गले के रोग, मस्तिष्क के रोग, गुर्दे के रोग, तिल्ली के रोग, कटिवात, कर्णशूल और अत्यधिक रजस्राव की बीमारी में लाभ पहुँचाता है। इसका लेप गीली खुजली और श्वेत कुष्ठ पर लाभ पहुंचाता है।

शिलारस अण्डवृद्धि (Hydrocele) के रोगों पर और अण्डकोषप्रदाह पर एक उत्तम औषधि है। अण्डकोषों के ऊपर इसका लेप करके उसके ऊपर तम्बाकू के सूखे हुए पत्ते अथवा धतूरे के पत्ते बाँधे जाते हैं।

डॉक्टर देसाई के मतानुसार शिलारस कफनाशक, मूत्रल, उत्तेजक, शोथघ्न, कृमिनाशक, खुजली को अच्छा करने वाला, व्रणशोधक और व्रणरोपक होता है। इसका उत्तेजक और कफनाशक धर्म बहुत सौम्य होता है। इसके सेवन से मूत्रपिंड में उत्तेजना पैदा होती है। कभी कभी मूत्रपिंड में इससे दाह भी पैदा हो जाता है। पेट में जाने के पश्चात् यह फुफ्फुस के मार्ग और मूत्रपिण्ड के मार्ग से बाहर निकलता है।

प्राचीन कफ रोग और क्षयरोग में शिलारस को शहद के साथ चटाने से लाभ होता है। इससे फेफड़ों को ताकत मिलती है। पुराने सुजाक में इसको मुलेठी के साथ देते हैं। इस रोग में शिलारस की क्रिया एक पीबनाशक और बलदायक द्रव्य की तरह होती है।

चर्मरोग में शिलारस एक बहुत उत्तम वस्तु है। एक भाग शिलारस को ४ भाग मीठे तेल में मिलाकर इस मिश्रण को खुजली और जलनयुक्त फोड़े-फुन्सियों पर उपयोग में लिया जाता है। इससे खुजली चलना कम हो जाती है और चर्मरोग जल्दी मिट जाते हैं पर कभी कभी इससे मूत्रपिण्ड में दाह भी पैदा हो जाती है। क्षयजनित ग्रन्थियों के ऊपर इसका लेप लाभदायक होता है। इससे ग्रन्थियों की जगह की रक्ताभिसरण क्रिया बढ़ती है और क्षय के कीटाणु मर जाते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—शिलारस के अन्दर एक उड़नशील तेल, बेंझाइक एसिड (लोभान के फूल) और सिनेमिक एसिड २० प्रतिशत पाया जाता है। यह सिनेमिक एसिड रङ्गरहित, गन्धरहित और रवेदार द्रव्य होता है। दालचीनी के अन्दर भी यह पाया जाता है।

शिलारस को शुद्ध करने की विधि—शिलारस को रेक्टिफाइड स्पिरिट के अन्दर अच्छी तरह से मिलाकर छान लेना चाहिये। छानने के पश्चात् इसको खुला रख देना चाहिये जिससे उसके अन्दर से स्पिरिट का अंश उड़ जाय। इस प्रकार शिलारस शुद्ध हो जाता है। शुद्ध शिलारस का रंग कुछ भूरा और पीला इसका स्वाद तथा गन्ध उत्तम होता है।

शिलाजीत

नाम—संस्कृत—शिलाजतु, शैलनिर्यास, गिरिज, शैलेय, अश्मोत्थ इत्यादि। हिन्दी-शिलाजीत। गुजराती-शिलाजीत। मराठी—शिलाजीत। बंगाल—शिलाजतु। पंजाब—शिलाजीत। अरबी—हाजर उलमूसा। तामील-उरग्यम्। अङ्गरेजी—Asphalt (आस्फल्ट)। लेटिन—Asphaltum Puniabiunm (एस्फेल्टम पंजाबिनम्)।

वर्णन—शिलाजीत यह पत्थरों का मद होता है। ज्येष्ठ, आषाढ़ के महीने में जब पर्वत सूर्य-किरणों से अत्यन्त तप्त होकर लाख के समान प्रकाशमान रस को शिलाओं से बहाते हैं तब वह रस एकत्रित होकर शिलाजीत के नाम से प्रसिद्ध होता है। यह शिलाजीत ४ प्रकार का होता है। सुवर्ण, रजत, ताम्र और लोह। सुवर्ण शिलाजीत जपा के फूल के समान लालवर्ण का होता है। रजत शिलाजीत सफेद रङ्ग का होता है। ताम्र शिलाजीत मोर की गर्दन के रङ्ग का होता है और लोह शिलाजीत काले रंग का होता है।

शिलाजीत के अन्दर मिलावट बहुत होती है। असली शिलाजीत बड़ी मुश्किल से हाथ आता है। पहाड़ी लोग एक प्रकार के बन्दर की विष्टा को जो रङ्गरूप में शिलाजीत के ही समान होती है तथा और भी कई दूसरी वस्तुओं से नकली शिलाजीत तयार करके लोगों को बेच देते हैं। ये लोग इस कार्य में इतने चतुर होते हैं कि इनका बनाया हुआ नकली शिलाजीत असली शिलाजीत की परीक्षाओं से भी खरा उतर जाता है। इसलिये इस वस्तु को प्राप्त करते समय बहुत सावधानी रखने की जरूरत होती है। साधारणतया असली शिलाजीत की परीक्षाएँ निम्नलिखित तरीकों से की जाती हैं।

(१) शिलाजीत के जरा से टुकड़े को लकड़ी के अङ्गारे पर रखते ही अगर वह लिंगेन्द्रिय की तरह खड़ा हो जाय तो उस शिलाजीत को असली समझना चाहिये।

(२) शिलाजीत को जरा सा लेकर अङ्गारे पर डालने से अगर धुआँ न उठे तो उसे उत्तम समझना चाहिये।

(३) शिलाजीत को एक तिनके की नोंक में लगाकर पानी के कटोरे में डालना चाहिये। अगर वह सबका सब तार २ होकर जल के नीचे बैठ जाय तो उसे उत्तम समझना चाहिये।

(४) शिलाजीत को नाक से सूँघने पर अगर उसमें गोमूत्र के समान गन्ध आवे और वह रङ्ग में काला तथा पतले गोन्द के समान हो, वजन में हलका और चिकना हो तो उसे उत्तम समझना चाहिये।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से शिलाजीत कड़वा, चरपरा, कसैला, कटुपाकी, रसायन, योगवाही तथा कफ, मेद, पथरी, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, वातरक्त, बवासीर, पांडुरोग, अपस्मार, उन्माद, सूजन, कुष्ठ, उदररोग और कृमिरोग को नष्ट करता है।

सुवर्ण शिलाजीत—मीठा, कड़वा, कसैला, शीतल, पचने में चरपरा और वातपित्त के रोगों को मिटानेवाला होता है।

रजत शिलाजीत—चरपरा, शीतल और विपाक में मधुर होता है। कफ और पित्त के रोगों को मिटाता है।

ताम्र शिलाजीत—तीक्ष्ण और उष्ण होता है और कफ के रोगों को मिटाता है।

लोह शिलाजीत—हर एक रोगों को मिटाता है। यह ३ प्रकार का होता है। जिनमें एक गिद्ध की पाँख जैसा होता है यह कड़वा, सलोना, विपाक में चरपरा और शीतवीर्य होता है। यह सब में उत्तम गिना जाता है। दूसरा, गोमूत्र जैसी गन्धवाला और लाल होता है। यह स्निग्ध, मृदु तथा पचने में भारी, कड़वा, कसैला और शीतल होता है। तीसरा, गूगल जैसा होता है। यह कड़वा, सलोना, विपाक में कटु और शीतवीर्य होता है।

रस, उपरस, पारा, रत्न और लोहे में जो गुण होते हैं, वे ही सब गुण शिलाजीत में भी होते हैं। क्योंकि शिलाजीत धातुओं का सार होता है। जो गर्मी पाकर पहाड़ों पर बह आता है। शिलाजीत बुढ़ापे और मृत्यु को जीतनेवाला, वमन, कम्पवायु, २० प्रकार के प्रमेह, पथरी, मधुमेह, सुजाक, कफक्षय, श्वास, वातज, बवासीर, पीलिया, मृगी, उन्माद, पागलपन, सूजन, कोढ़ और कृमिरोग को नष्ट करनेवाला होता है। किसी किसी आचार्य ने इसको श्लीपद (फीलपाँव), गुल्म और विषम ज्वर को नष्ट करनेवाला भी लिखा है। फिर भी यह खास तौर से मधुप्रमेह की एक चमत्कारिक औषधि मानी गई है।

शिलाजीत और मधुप्रमेह—महर्षि वाग्भट लिखते हैं कि—

मधुमेहत्वमापन्नो भिषग्भिः परिवर्जितः। शिलाजतु तुलामद्यात् प्रमेहार्तः पुनर्नवः॥

बैद्यों के द्वारा त्यागा हुआ असाध्य समझा हुआ मधुमेह का रोगी भी अगर उचित मात्रा में नियमपूर्वक ४०० तोले शिलाजीत (करीब ५ वर्ष में) खाले तो उसका सारा चोला नया हो जाय।

महर्षि चरक लिखते हैं कि इस पृथ्वी पर ऐसा कोई साध्य कहानेवाला रोग नहीं है जिसे शिलाजीत उस अवस्था के योग अनुपानों के साथ विधिपूर्वक प्रयोग करने पर बलात् नष्ट न करता हो। यह स्वस्थ पुरुषों को भी बिपुल बल देता है।

शिलाजीत का प्रयोग ३ प्रकार का होता है।

(१) पर (२) मध्य और (३) अवर। ७ सप्ताह तक शिलाजीत का निरन्तर प्रयोग करना पर प्रयोग कहलाता है। ३ सप्ताह तक इसका निरन्तर प्रयोग करना मध्य प्रयोग कहलाता है और १ सप्ताह तक इसका लगातार प्रयोग अवर प्रयोग होता है। जो बलशाली और बहुदोष होते हैं उन्हें ७ सप्ताह तक, जो मध्यबल और मध्य दोष होते हैं उन्हें तीन सप्ताह तक और जो अल्पबल और अल्पदोष होते हैं उन्हें १ सप्ताह तक इसका प्रयोग करना चाहिये।

शिलाजीत की मात्रा—महर्षि चरक के मतानुसार शिलाजीत की मात्रा ३ प्रकार की होती है। इसकी अधिकतम मात्रा एक पल, मध्यम मात्रा आधा पल और कम मात्रा एक कर्ष होती है। मगर यह प्राचीन युग की मात्रा है। आजकल के लोग इस मात्रा को बरदाश्त नहीं कर सकते। आजकल के युग में इसकी अधिकतम मात्रा १२ रत्ती और कम मात्रा २ रत्ती की होती है।

शिलाजीत को शुद्ध करने की विधि—शिलाजीत को हमेशा शोधकर ही प्रयोग में लाना चाहिये। सब से पहिले इसे जल के अन्दर शुद्ध करना चाहिये। अशुद्ध शिलाजीत में रेत, पत्थर, पत्ते इत्यादि बहुत सी मलिनताएँ रहती हैं। उन्हें स्वच्छ जल में घोलकर पृथक् कर लेना चाहिये। जितनी अशुद्ध शिलाजीत हो उससे दुगुना गरम जल लें। उस गरम जल में अशुद्ध शिलाजीत के छोटे छोटे टुकड़े करके डाल दें। इससे जो असली शिलाजीत होगी वह जल में घुल जायगी और मैल नीचे बैठ जायगा तब ऊपर के जल को नितार कर वस्त्र से छान लें और दूसरे लोह पात्र में डाल दें। ये पात्र घाम में ही रक्खे होने चाहिये। जब इसका घन भाग ऊपर आ जाय और मैल नीचे बैठ जाय तब ऊपर के घन भाग को तीसरे लोहपात्र में डाल दें। इस प्रकार जब पात्र के नीचे मैल बैठना बन्द हो जाय तब उसे घाम में सूखने देना चाहिये और फिर सब पात्रों के मैल को एकत्रित करके इसी पद्धति के अनुसार फिर उसको लोहपात्रों में गरम जल में घोलकर उस मैल में बची हुई शिलाजीत को भी निकाल लें। यह शिलाजीत को निर्मल करने का विधान है।

इस जलशोधित शिलाजीत को, अगर वात रोगों को दूर करने के प्रयोग में लेना हो तो वातनाशक द्रव्यों के क्वाथ की भावनाएँ देना चाहिये। अगर कफनाशके उपयोग में लेना हो तो कफनाशक द्रव्यों के क्वाथ की भावनाएँ देना चाहिये और अगर पित्तरोगों को दूर करने के उपयोग में लेना हो तो पित्तनाशक द्रव्यों की भावनाएँ देनी चाहिये। फिर भी साधारणतया गाय का दूध, त्रिफला का काढ़ा और भांगरे का स्वरस इन तीनों चीजों की भावनाएँ देने से शिलाजीत शुद्ध हो जाती है।

शीलाजीत के सेवनकी विधि—शिलाजीत को सेवन करने के पूर्व वमन, विरेचन, इत्यादि क्रियाओं के द्वारा अगर शरीर को शुद्ध किया जाय तो वह विशेष लाभ पहुँचाती है। शिलाजीत को सबेरे ही सूर्य निकलने के बाद दूध अथवा शहद के साथ लेना चाहिये।

शिलाजीत और भिलामे को सेवन करने वालों को एक समान पथ्य परहेज पालन करने पड़ते हैं। सबेरे का खाया हुआ शिलाजीत पच जाने पर भात, दूध, जौ की रोटी या जौ की बनी हुई कोई चीज खाना चाहिये।

शहद, पीपल और शिलाजीत के अन्दर १ रत्ती निश्चन्द्र अभ्रक भस्म मिलाकर सेवन करने से बीसों तरह के प्रमेह निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। शिलाजीत की मात्रा अपने बलाबल के अनुसार १ से लेकर २ माशे तक की लेनी चाहिये।

१ या २ माशे शिलाजीत को मिश्री मिले हुए दूध के साथ लेने से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं। शुद्ध शिलाजीत, बंगभस्म, छोटी इलायची के दाने और नीली झाँई का वंशलोचन, इन चारों चीजों को समान भाग लेकर शहद के साथ घोट कर दो दो रत्ती की गोलियां बना लेना चाहिये। इनमें से सबेरे शाम दो दो गोली दूध के साथ लेने से बहुमूत्र, प्रमेह, कमजोरी और धातुविकार आराम हो जाते हैं।

शिलाजीत का वर्णन करते हुए कर्नल चोपरा लिखते हैं कि—

'शिलाजीत यह एक पहाड़ों की चट्टानों से स्राव होनेवाला मद है। जो भारतवर्ष के कुछ पहाड़ों में मई और जून के महीने में जब कि वायुमण्डल बहुत गर्म होता है, पत्थर की चट्टानों से निकलता है। यह विशेष कर हिमालय के निचले हिस्से में हरिद्वार, शिमला और नेपाल के अन्दर निकलता है। यह बड़ी तादाद में काठमांडू से भारतवर्ष में आता है। शिलाजीत की एक सफेद जाति भी होती है और ऐसा कहा जाता है कि यह आबूपर्वत के अन्दर पाई जाती है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि जो शिलाजीत नेपाल से कलकत्ते में आकर सफेद शिलाजीत के नाम से बिकती है वह एक भिन्न वस्तु है और जिसको हिन्दू चिकित्साशास्त्र में शिलाजीत बतलाया है उससे उसका कोई मेल नहीं है।

प्राचीन हिन्दू लेखकों ने शिलाजीत की ४ जातियाँ बतलाई हैं। (१) स्वर्ण शिलाजीत जो कि लाल होती है। (२) रजत शिलाजीत जो कि सफेद होती है। (३) ताम्र शिलाजीत जो कि नीली होती है और (४) लोह शिलाजीत जो कालापन लिये हुए भूरी होती है। इनमें से लाल और नीली शिलाजीत बहुत दुष्प्राप्य होती है। विशेष रूप से इसकी चौथी जाति ही अधिक प्राप्त होती है और वही चिकित्साशास्त्र में प्रधान रूप से काम में ली जाती है। कर्नल चोपरा ने इसी चौथी जाति के ऊपर अपने प्रयोग किये हैं।

शिलाजीत प्राचीन हिन्दू चिकित्साशास्त्र के अन्दर एक महत्त्वपूर्ण वस्तु मानी गई है और आर्य चिकित्सक भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों के ऊपर इसका प्रचुरता से उपयोग करते आये हैं। क्षय, पुरानी खाँसी, दमा, पाचन यन्त्रों की खराबी, गुदा और मूत्राशय की पथरी, जलोदर, मज्जातन्तुओं के रोग, गलितकुष्ठ, मधुप्रमेह और हड्डी टूटने के ऊपर यह एक बहुत उपयोगी वस्तु मानी गई है। चर्मरोगों के अन्दर, सूजन के अन्दर तथा कीटाणु और परोपजीवी कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये भी इसका बहुत उपयोग होता है।

मुसलमान चिकित्सकों ने ३ शताब्दी पूर्व शिलाजीत को अपने मटेरियामेडिका में सम्मिलित किया और सब प्रकार के विषों के दर्प को नष्ट करने के लिये तथा दूसरी बीमारियों में इस वस्तु की उपयोगिता को स्वीकार किया। इसीके समकक्ष एक और पदार्थ जिसको वे मोमिया कहते हैं, जो ईरान तथा अरबस्तान के पहाड़ों में पैदा होता है उसको भी सूजन, गठिया और जोड़ों की सूजन पर वे बाह्यप्रयोग के काम में लेते हैं।

रासायनिक संगठन—शिलाजीत को साधारण दृष्टि से देखने पर उसमें वानस्पतिक द्रव्य, गहरा लाल रङ्ग का गोंद की तरह चिकना पदार्थ, वनस्पति के तन्तु और रेशे, रेती और पार्थिव द्रव्य रहते हैं। इसका गोंदीय पदार्थ पानी के अन्दर घुल जाता है और रेत, पत्ते, वानस्पतिक तन्तु इत्यादि वस्तुएँ पानी के अन्दर जम जाती हैं। जिनको फलालेन के कपड़े में छानकर अलग कर दी जाती है। इस प्रकार शोधित किया हुआ शिलाजीत गाढ़े शहद की तरह हो जाता है।

शुद्ध और अशुद्ध दोनों प्रकार के शिलाजीत में गोमूत्र के समान गन्ध आती है। यह कुछ कड़वा, कुछ चरपरा, कुछ खारा और संकोचक स्वाद का होता है। शुद्ध किया हुआ शिलाजीत शत प्रतिशत पानी के अन्दर घुलनशील होता है।

सबसे पहिले हूपर ने शिलाजीत के रासायनिक तत्वों का विश्लेषण किया। उसके जो परिणाम दृष्टिगोचर हुए वे इस प्रकार हैं।

पानी	८·८५	नाइट्रोजन	१·०३
आर्गेनिक मैटर	५६·२०	चूना	७·८०
खनिज पदार्थ	३४·९५	पोटास	९·०७
		फास्फोरिक एसिड	·१६

हमने (कर्नल चोपरा) स्वयं भी साधारण शिलाजीत का सावधानी के साथ विश्लेषण किया। उसके परिणाम नीचे लिखे नक्शे से मालूम होते हैं।

आर्गेनिक तत्त्व	अशुद्ध शिलाजीत	शुद्ध शिलाजीत
आर्द्रता (Moisture)	१२·५४	२६·०३
बेंझाइक एसिड (लोभान के फूल)	६·८२	८·५८

हिप्यूरिक एसिड	५·५३	६·१३
फेटी एसिडस्	२·०१	१·३६
रेजिन एण्ड वेक्सि मैटर	३·२८	२·४४
गोंद	१५·५९	१७·३२
एल्व्यूमिनाइडस्	१९·६१	१६·१२
वानस्पतिक द्रव्य	२८·५२	२·१५
	खनिज तत्त्व	
आर्द्रता (Moisture)	१२·५४	२९·०३
जलाने पर कम हुआ तत्त्व (Loss on Ignition)	६४·५८	२२·६३
राख	२२·८८	१८·६४
छिलिका (Silica)	४·६०	२·६९
लोहा	·५१	·६४
एल्यूमिना	२·२६	२·६१
चूना	६·८३	४·८२
पोटास	४·६०	३·८१
सल्फ्यूरिक एसिड	·६४	·६७
क्लोराइड	·२६	·५७
फास्फोरिक एसिड	·२८	·२४
नाइट्रोजन	३·६४	३·३६

उपरोक्त नक्शों से शुद्ध शिलाजीत के तत्त्वों की तुलना करने से मालूम होता है कि इन दोनों के अन्दर पाए जानेवाले तत्त्वों में विशेष अन्तर नहीं है। अशुद्ध शिलाजीत में पत्ते, बालू इत्यादि चीजें करीब ३० प्रतिशत होती हैं। जब कि शुद्ध शिलाजीत में यह सिर्फ २-३ प्रतिशत पाई जाती है। शुद्ध और अशुद्ध शिलाजीत के अन्दर पाया जानेवाला महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि जहाँ शुद्ध शिलाजीत के एक्स्ट्रेक्ट में बेंझाइक और हिप्यूरिक एसिड के रवे पाए जाते हैं वहाँ अशुद्ध शिलाजीत के तैयार किये हुए एक्स्ट्रेक्ट में ये तत्त्व नहीं पाए जाते। शुद्ध शिलाजीत के अन्दर बेंझाइक एसिड और हिप्यूरिक एसिड विशेषरूप से रहते हैं। सम्भवतः अशुद्ध शिलाजीत को पानी के अन्दर शुद्ध करते समय उसके अन्दर का बेंझाइक और हिप्यूरिक एसिड में रहनेवाला नमक पानी के साथ शिलाजीत में ही रह जाता है।

चिकित्सा विज्ञान में शिलाजीत की उपयोगिता :—आर्य—चिकित्सा-शास्त्रियों ने मधु प्रमेह के सम्बंध में जितनी औषधियों का आविष्कार किया है उन सब में शिलाजीत एक प्रथम श्रेणी की वस्तु मानी गई है। यह कहा जाता है कि इसके प्रभाव से प्यास, अत्यधिक मूत्रस्राव, दाह और थकावट बहुत शीघ्रता से दूर होते हैं। शक्कर को पचाने की क्रिया में भी यह बहुत महत्त्वपूर्ण मदद करती है। आर्य चिकित्सक इस कार्य के लिये शिलाजीत को दूध अथवा अंगूर के रस के साथ दिया करते हैं। इस कार्य के लिये शुद्ध शिलाजीत को वे शाल, चिरोंजी, असन, बबूल, हरड़ और बला के क्वाथ की भावनाएँ भी देते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि इन भावनाओं से शिलाजीत की शक्ति बढ़ती है।

हमने (कर्नल चोपरा) शुद्ध शिलाजीत को मधु प्रमेह के कई रोगियों पर यह देखने के लिये प्रयोग किया कि इस औषधि के उनकी शरीर क्रिया और उनके रोग पर क्या क्या प्रभाव होते हैं, उनका २४ घण्टे में होनेवाला कुल पेशाब सावधानी के साथ इकट्ठा करके रक्खा जाता था। प्रतिदिन उनका नाप किया जाता था और

प्रतिदिन उसके अन्दर रहनेवाली शक्कर की भी परीक्षा की जाती थी। समय २ पर उनके रक्त की भी परीक्षा की जाती थी और निश्चित टाइम पर उनका वजन भी किया जाता था।

अस्पताल में प्रवेश करने के पश्चात् इन लोगों के खाने पर भीं पूरी निगाह रक्खी जाती थी। इनको मधुमेह के रोगियों के अनुकूल भोजन दिया जाता था।

इन रोगियों को शिलाजीत की मात्रा गोलियों के रूप में धीरे-धीरे बढ़ाई गई जो कि अधिकतम रूप में २४ घण्टे के अन्दर ३० ग्रेन तक कर दी गई। सावधानी पूर्वक इन मधु प्रमेह के रोगियों का निरीक्षण करने के पश्चात् मालूम हुआ कि शिलाजीत को ५ ग्रेन से लेकर १० ग्रेन तक की मात्रा में दिन में तीन बार लगातार ८ से १२ दिन तक देने पर भी उनके पेशाब में जानेवाली शक्कर पर तथा उनके रक्त में रहनेवाली शक्कर पर कुछ भी असर नहीं हुआ। उनकी पेशाब की तादाद भी बिलकुल कम न हुई और प्यास, थकावट इत्यादि दूसरे लक्षणों में भी कुछ सुधार नहीं हुआ। उनकी कारबोहाइड्रेड को पचाने की शक्ति में भी कुछ उन्नति नहीं हुई। इन बीमारों के अन्दर इन्स्यूलीन तत्त्व की जो पेशाब से शक्कर जाने को बन्द करती है—कुछ भी वृद्धि नहीं हुई और न मधुमेह सम्बन्धी दूसरे लक्षणों की कोई कमी हुई।

शिलाजीत के बाह्य उपचार के सम्बन्ध में हिन्दू चिकित्सकों का यह विश्वास है कि इसका बाह्य प्रयोग कीटाणु नाशक, परोपजीवी कीटाणुओं को नष्ट करनेवाला और वेदना को शमन करनेवाला होता है। शिलाजीत के अन्दर ये सब गुण उसके अन्दर रहनेवाले बेंझाइक एसिड पर निर्भर है और यह एक मानी हुई बात है कि बेंझाइक एसिड हलकी चर्मदाहक होती है और इस दृष्टि से मुड़े हुए और कुचले हुए शरीर के अङ्ग पर उसका लेप करने से लाभ होता है। इसी बेंझाइक एसिड की वजह से शिलाजीत में भूख बढ़ाने की और अजीर्ण तथा अम्लपित्त को दूर करने की शक्ति भी रहती है। यकृत के ऊपर इसकी उत्तम क्रिया होने से यह कामला-रोग में भी लाभ पहुँचाती है। इसमें कुछ नशीला असर भी रहता है। सब प्रकार के कॉलिक उदरशूल में यह अपना आक्षेप निवारक असर बतलाती है और मांसपेशियों की मरोड़ में तथा दमे के अन्दर भी यह लाभ पहुंचाती है। शिलाजीत के सब गुण इसमें रहनेवाले बेंझाइक एसिड और उसके लवण तत्वों की वजह से होते हैं। हिन्दू चिकित्सक तीव्र और प्राचीन ब्रोंकाइटीज में शिलाजीत का व्यवहार करते हैं और इन्हीं बीमारियों में पाश्चात्य चिकित्सक बेंझाइक एसिड का उपयोग करते हैं। खास करके बच्चों और वृद्ध तथा निर्बल व्यक्तियों के ऊपर जिनको कि पतला कफ अधिक मात्रा में निकलता है यह विशेष रूप से उपयोग में ली जाती है। यह एक निस्सन्देह बात है कि यह कफ निस्सारण की क्रिया को बढ़ाती है।

वैद्य लोग शिलाजीत को गठिया, संधिदाह और फुफ्फुस सम्बन्धी क्षय रोग में दिया करते हैं। ३०–४० वर्ष पहिले पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के अन्दर भी बेंझाइक एसिड और उसके लवण, उपरोक्त रोगों के अन्दर बहुत उपयोग में लिये जाते थे। लेकिन अब इन रोगों में बेंझाइक एसिड और उसके क्षारों का उपयोग नहीं किया जाता। देशी चिकित्सक शिलाजीत का उपयोग एक मूत्रल और पथरी को गलानेवाली ओषधि के बतौर भी करते हैं। पाश्चात्य चिकित्सा में इन्हीं कामों के लिये बेंझाइक एसिड का उपयोग किया जाता है।

इन सब बातों से यह तथ्य निकलता है कि शिलाजीत की जो कुछ महत्ता है वह इसमें पाई जाने वाली बेंझाइक एसिड और बेंझोएट्स की वजह से है जो कि इसमें बड़ी मात्रा के अन्दर पाये जाते हैं और वेही इसके प्रधान और क्रियाशील तत्त्व हैं।

सन् १९३० में रायने शिलाजीत का एक्स्ट्रेक्ट बनाकर पशुओं के ऊपर उसका अनुभव किया। उससे मालूम हुआ कि इसका इंजेक्शन देने में खून का दबाव (Blood Pressure) बढ़ता है और श्वासोच्छ्वास क्रिया को उत्तेजना मिलती है। उनका खयाल है कि बेंझाइक एसिड और बेंझोएट्स नाड़ी और खून के दबाव के ऊपर कोई असर नहीं बतलाते। इससे मालूम होता है कि शिलाजीत में कोई और दूसरा ऐसा क्रियाशील तत्त्व जरूर रहता है जो अभी तक रासायनिक विश्लेषण के द्वारा हम लोगों की जानकारी में नहीं आया। उनके मतानुसार इसमें एक अज्ञात श्वास क्रिया को उत्तेजित करनेवाला तरल पदार्थ (Pyridine) होना चाहिये।

कर्नल चोपरा लिखते हैं कि शिलाजीत का सम्पूर्ण और विधियुक्त रासायनिक विश्लेषण कर लिया गया।

इसके अन्दर गोन्दीय पदार्थ, एल्ब्युमिनाइड्स, राल, फैटीएसिड और बड़ी मात्रा में बैंझाइक एसिड और हिप्यूरिक एसिड तथा उनके क्षार पाये जाते हैं। चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से इसके अन्दर पाये जाने वाले सबसे अधिक क्रियाशील तत्त्व बेंझोएटस हैं। हिन्दू चिकित्सक भिन्न भिन्न प्रकार के रोगों में एक ओषधि से जो लाभ उठाते हैं वे इन्हीं तत्त्वों पर अवलम्बित हैं। लेकिन मधुप्रमेह के अन्दर पेशाब में जानेवाली शक्कर पर तथा रक्त में रहनेवाली शक्कर पर शिलाजीत का कोई प्रभाव नहीं होता और यह विश्वास कि शिलाजीत मधुप्रमेह की एक उत्तम ओषधि है बिलकुल गलत है।

उपयोग—मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात—एक माशे शिलाजीत को पीपल और इलायची के साथ लेने से मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात मिटता है।

वातगुल्म—क्षुद्र पचमूल के क्वाथ में दूध डालकर उसमें शुद्ध शिलाजीत ८ रत्ती की मात्रा में मिलाकर पीने से वातगुल्म मिटता है।

प्रमेह—शुद्ध शिलाजीत को त्रिफला और शहद के साथ चाटने से प्रमेह मिटता है।

कुम्भकामला—गोमूत्र में शुद्ध शिलाजीत मिलाकर पीने से कुम्भकामला मिटता है।

वातरक्त—पंचकर्म से शुद्ध होकर अगर मनुष्य गिलोय के क्वाथ से शुद्ध किये हुए शिलाजीत का लम्बे समय तक सेवन करे तो वातरक्त और कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

बनावटें—चन्द्रप्रभा वटी—कपूर, दूधिया बच, नागरमोथा, मीठा चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, अतीस, पीपलामूल, चित्रक, धनियाँ, त्रिफला, चव्य, वायविडङ्ग, गजपीपर, सोंठ, पीपर, मिर्च, सोनामक्खी की भस्म, जवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, काला निमक और बिड नमक। ये सब ओषधियाँ तीन-तीन माशे। निसोथ, दन्ती, तेजपात, दालचीनी, छोटी इलायची के बीज और वंशलोचन, ये सब दस-दस माशे। कांतिसार २० माशे, मिश्री ढाई तोला, शुद्ध शिलाजीत २ तोला, शुद्ध गूगल ५ तोला।

इनमें से एक नम्बर से लेकर ३१ ओषधियों को सोनामक्खी को छोड़ कर कूट पीस कर कपड़े में छान लें। इसके बाद उस पिसे छने चूर्ण में कांतिसार, सोनामक्खी की भस्म, शिलाजीत और गूगल को मिलाकर पानी दे देकर खरल में घोटें। गूगल को छटांक भर जल में घोलकर जरा गरम करके लेइ सी कर ली जाय तो अच्छी तरह मिल जायगी। जब सब दबाएँ एक दिल हो जायँ तब रत्ती या दो-दो रत्ती को गोलियाँ बना लेनी चाहिये।

यह चन्द्रप्रभा वटी सब प्रकार के रोगों को नष्ट करनेवाली तथा बीसों प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और पथरी को आराम करनेवाली होती है।

शिलाजीत वटी—शुद्ध शिलाजीत ४ माशे, लोहभस्म २ माशे, सोनामक्खी भस्म २ माशे। इन तीनों चीजों को खरल करके दो दो रत्ती की गोलियाँ बना लेनी चाहिये। इनमें से एक एक गोली सबेरे-शाम मक्खन या मलाई मिला कर खाने से प्रमेह और सफेद धातु का गिरना बन्द हो जाता है।

शीशम

नाम—संस्कृत—शिंशपा, कृष्णसारा, पिपला, युगपत्रिका, कपिला, डलपत्री, तीव्रधूमका, श्वेतशिंशपा, कपिलाशिंशपा, पीता इत्यादि। हिन्दी—शीशम, सफेद शीशम, पीलीशीशम। बंगाल—शीशू, सीसू। बम्बई—सीसू। गुजराती—सीसम तनच। मराठी—सीसू, सीसम। उर्दू—शीशम। पंजाब—शीशम, नेलकार, ताली, शेवा। अरबी—सीसम। तामील—सीसू, गेट्टा। तेलगू—सिंसुपा, सीसू। अंगरेजी—Sissoo। लेटिन—Dalbergja sissoo (डलबेर्गिया सीसू)।

वर्णन—शीसम के वृक्ष भारतवर्ष में प्रायः सब ओर पैदा होते हैं। इसका वृक्ष ६० फुट तक ऊँचा होता है। इसके पिंड की गोलाई ६ से १२ फुट तक होती है। इसकी छोटी शाखाएँ नीचे की तरफ लटकती हुई और रुएंदार होती हैं। इसके पिंडकी छाल एक इंच तक मोटी और कुछ पीलापन लिये भूरे रङ्ग की होती है। इसके पत्ते गोल और नोकदार बेर के पत्तों के समान होते हैं। नवीन हालत में ये अच्छे साफ हरे रंग के होते हैं मगर पुराने होने पर ये कुछ लाल और भूरे रंग के हो जाते हैं। इसके फूल बहुत छोटे छोटे सफेद या चंदनियां रंग के

गुच्छों में लगते हैं। इसकी फलियाँ बहुत चपटी और पतली होती हैं। हर एक फली में दो दो-तीन तीन चपटे बीज निकलते हैं। शीशम की लकड़ी बहुत मजबूत, भारी और दृढ़ होती है।

शीशम की तीन जातियाँ होती हैं। काली, सफेद और पीली। पीली शीशम को संस्कृत में कपिल शिंशपा, सफेद शीशम को श्वेतशिंशपा और काली शीशम को कृष्णसारा कहते हैं।

इस वृक्ष की लकड़ी और बीजों में से तेल निकाला जाता है जो औषधियों के काम आता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से सीसम कड़वा, तिक्त, कसेला, गरम, कामोद्दीपक, कफनिस्सारक, कृमिनाशक, ज्वरनाशक, प्यास को बुझानेवाला, गर्भ को गिरानेवाला और वमन तथा दाह को शान्त करनेवाला होता है। यह चर्मरोग, व्रण, रक्तरोग, श्वेतकुष्ठ, अजीर्ण, अतिसार और गुदामार्ग की तकलीफों को दूर करनेवाला होता है। इसके पत्तों का रस नेत्ररोगों में लाभदायक होता है।

सफेद शीशम कड़वा, शीतल तथा पित्त और दाह को दूर करनेवाला होता है।

भूरे रंग का शीशम कड़वा, शीतवीर्य, श्रमनाशक तथा वात, पित्त, ज्वर, वमन और हिचकी को दूर करता है।

तीनों प्रकार के शीशम कांतिवर्द्धक, बलकारक, रुचिजनक तथा सूजन, विसर्प, पित्त और दाह को शांत करते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से शीशम की लकड़ी, कड़वी, खराब स्वादवाली, कृमिनाशक, रक्तशोधक और नेत्र तथा नाक की बीमारी में उपयोगी होती है। यह गीली खुजली, शरीर की जलन, उपदंश, पेट के रोग और पेशाब की जलन को शांत करनेवाली होती है।

इसकी जड़ संकोचक होती है और इसका तेल चर्म रोगों पर लगाने से लाभ पहुंचाता है। इसके पत्तों का लुआब मीठे तेल में मिलाकर फटी हुई त्वचा पर लगाने से लाभ होता है। इसके पत्तों का काढ़ा सुजाक की तीव्र अवस्था में दिया जाता है। इसकी लकड़ी धातु परिवर्तक समझी जाती है और यह कुष्ठ, विस्फोटक, खुजली और वमन को रोकने के लिये उपयोग में ली जाती है।

उपयोग—फोड़े फुन्सी—इसके पत्तों का क्वाथ पिलाने से फोड़े फुन्सी मिटते हैं। कोढ़ में भी इसके पत्तों या बुरादे का क्वाथ पिलाया जाता है।

स्तनों की सूजन—इसके पत्तों को गरम करके स्तनों पर बाँधने से और इसके काढ़े से स्तनों को धोने से स्तनों की सूजन उतरती है।

कुष्ठ—शीशम के १० माशे बुरादे को आधा पाव पानी में औटाकर, आधा पानी रहने पर उसमें इसी शीशम का शरबत मिलाकर ४० दिन तक पीने से कुष्ठरोग में बहुत लाभ होता है।

रक्तविकार—शीशम के बुरादे का शरबत बनाकर पिलाने से रक्तविकार मिटता है।

वमन—इसके पत्ते या बुरादे का क्वाथ पिलाने से वमन बन्द होती है।

सुजाक—सुजाक की अत्यन्त तीव्र पीड़ा में इसका क्वाथ पिलाने से लाभ होता है।

शीशम विलायती

नाम—हिन्दी—विलायती शीशम। बंगाल—श्वेतसाल। बम्बई—शीशम, कालरुक। गुजराती—शीशम, सीसू। मराठी—सीसम, सिसुआ। सिंध—ताली। तामील—इट्टी। तेलगू—इरुगुड्ड। इंग्लिश—Malabar Black Wood। लेटिन—Dalbergia latifolia (डलबेर्गिया लेटिफोलिया)।

वर्णन—यह बड़ी जाति का वृक्ष अवध, पूर्वी बङ्गाल, बिहार, बुंदेलखण्ड और मध्यभारत में पैदा होता है। इसकी डालियाँ फैली हुई और छत्रीनुमाँ होती हैं। इसके दूसरे सब अंग शीशम के समान ही होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति कटुपौष्टिक और अग्निवर्द्धक होती है। इसका उपयोग कुष्ठ, मोटापन और कृमियों को नष्ट करने के लिये किया जाता है।

शूरीघास (लांपरिया घास)

नाम—हिन्दी—शूरीघास, शुरुवाल, लांपरिया घास। मराठी—कांटेगवत। गुजराती—डाबसुलियूँ। कच्छी—शूरियेथा, छुरो। अंगरेजी—SPear Grass (स्पीअर ग्रास)। लेटिन—Andropogon contortus (एंड्रोपोगान कंटोर्टस)।

वर्णन—यह एक जाति का घास होता है। इसकी ऊँचाई २ से ३ हाथ तक होती है। इसके फूलों की चँवरी में काले २ बारीक २ काँटे जिन्हें लांपरिया बोलते हैं होते हैं। जब तक इस घास में ये काँटे पैदा नहीं होते तब तक ढार इस घास को बहुत खाते हैं मगर इन काँटोंके पकने के बाद उनको यह घास खाने में बहुत तकलीफ होती है। इसके काँटे मनुष्य के कपड़ों में भी बहुत लगते हैं। इसलिये जहाँ पर यह घास होता है वहाँ के सब लोग इस घास को पहिचानते और इससे डरते रहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ उत्तेजक और मूत्रल होती है।

हमको एक पुराने वैद्य ने बतलाया था कि इसके बारीक २ काले काँटों (लांपरियों) को इकट्ठे करके उनका घन क्वाथ बनाया जाता है। यह घन क्वाथ पुराने जमाने में मम्माई के नाम से मशहूर था। यह एक बहुत ही प्रभावशाली वस्तु होती है। अनेक रोगों में काम करती है। खास करके दमे के अन्दर तो यह अपना विलक्षण प्रभाव दिखलाती है। हम नहीं कह सकते कि उपरोक्त वैद्य जी की बातों में कहाँ तक सचाई था। क्योंकि हमने इसको कभी अनुभव में नहीं लिया।

शेरसा (शिराझ)

नाम—मराठी—शेरसा, सोंगारवी। बंगाल—अश्वल, गोडा, हारीना। बम्बई—लोंगार, बिसीरस, शिराझ। आसाम—भोडिया। बरमा—तौक्षा। तेलगू—लुक्की। लेटिन—Vitex glabrata (व्हिटेक्स ग्लेबरेटा)।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। जो दक्षिणी आसाम में विशेष रूप से पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ की छाल एक संकोचक द्रव्य की तरह काम में ली जाती है।

श्वेतहुली

नाम—बंगाल—श्वेतहुली। लेटिन—Zeuxine strateumatica (झेक्साइन स्ट्रेट मेटिका)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का क्षुप होता है। इसके पत्ते २-५ से ५ सेंटिमीटर तक लम्बे और ४-६ मिलिमीटर तक चौड़े होते हैं। इसकी जड़ के अन्दर छोटी-छोटी गठानें होती हैं। यह वनस्पति हिन्दुस्तान के कई हिस्सों में ५ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इस वनस्पति का कन्द या इसकी गठानें पौष्टिक या वीर्यवर्द्धक द्रव्य की तरह उपयोग में ली जाती है।

शाल

नाम—बंगाल—शाल। लेटिन—Nauclea ovalifolia (नोकिलया ओव्हेलिफोलिया)।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति आँतों की शिकायत और ज्वर में उपयोगी होती है।

शेवाल (कांई)

नाम—हिन्दी—शेवाल, जल्लील। गुजराती—जलेसर, पोलाइन। तेलगू—पंचदूब। इंग्लिश—Eelgrass (एलग्रास)। लेटिन—Vallisneria spiralis (व्हेलिसनेरिया स्पिरेलिस)।

वर्णन—यह वनस्पति पानी के अन्दर पैदा होती है। इसके वर्ग की थोड़े थोड़े फरक से कई प्रकार की वनस्पतियाँ होती हैं। इस वनस्पति के फूल और पत्ते नहीं होते। जमीन पर होनेवाली शेवाल में और पानी में होनेवाली शेवाल में बहुत फरक होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति शीतल, कड़वी, मधुर, सारक, रूक्ष, सलोनी, पचने में हलकी और स्निग्ध होती हैं। यह तृषा, रक्तपित्त,ज्वर, शोष, दाह और व्रण को मिटाती है। यह वनस्पति अग्निवर्द्धक होती है और सफेद प्रदर के अन्दर इसका उपयोग किया जाता है।

शेवाल के वर्ग की वनस्पतियाँ विषैली नहीं होती। इस वर्ग की कोई २ जाति बहुत पौष्टिक और कोई साधारण अन्न के समान होती है। किसी में शक्कर, किसी में गोंद के समान चिकना द्रव्य पौष्टिक द्रव्य और किसी में बैंगनी रङ्ग का आयोडिन रहता है। इस वनस्पति के धर्म अन्न के समान स्नेहन और रसायन होते हैं। इन वनस्पतियों को जलाने से उनकी राख में सज्जीखार और आयोडिन प्राप्त होती है।

कंठमाला की सूजन और जलन को मिटाने के लिये और उसको जल्दी पकाने के लिये समुद्र में होने वाली खारे पानी की शेवाल को बाँधते हैं। बाँधी हुई शेवाल को बार-बार बदलकर हर वक्त ताजी शेवाल बाँधी जाती है। इससे जलन तुरन्त बन्द हो जाती है और गठानें पक कर शीघ्र फूट जाती हैं।

उपयोग—वीर्य का पतलापन—शेवाल या काई को एक मिट्टी के ठीकरे में भरकर चूल्हे पर चढ़ाकर, उसकी भस्म बनाकर, उसमें समान भाग मिश्री मिलाकर ४ माशे की मात्रा में प्रतिदिन लेने से वीर्य का पतलापन और प्रमेह मिटता है।

सुजाक—काई को निचोड़कर उसका पानी निकालकर उस पानी को मूत्रेन्द्रिय के छेद में टपकाने से वहाँ का घाव भर जाता है।

सकीना [अर्घवान]

नाम—गढ़वाल—सकीना। उर्दू—अर्घवान। फारसी—अर्घवान। अरबी—अर्घवान। पंजाब—तरनी, तिलून, बनकेबटी, बुना, काठी इत्यादि। इंग्लिश—Himalayan Laburnum (हिमालयन लेबरनम)। लेटिन—Sophoramollis (सोफोरा मोलिस)।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में कुमाऊँ और नेपाल के अन्दर चार हजार फीट ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत—इसकी जली हुई जड़ रक्तस्राव को रोकनेवाली और यकृत तथा गुर्दे की बीमारियों को दूर करनेवाली होती है। इसके फूल मीठे और गुर्दे की शिकायतों, कटिवात और पुरातन प्रमेह में उपयोगी होते हैं। इसका काढ़ा वमनकारक होता है। इसके बीज नेत्ररोगों में लाभदायक होते हैं।

शकमूनियां

नाम—हिन्दी—शकमूनियाँ। पंजाब—सकमूनियाँ। फारसी—सकमूनियां। लेटिन—Canvolvulus scammonia (कनह्वोलव्हूलस स्कैमोनिया)।

वर्णन—यह शंखाहुली के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसकी बेलें गुजरात के खेड़े परगने में होती हैं। फिर भी इसकी गठानों से प्राप्त किया हुआ राल के समान द्रव्य सीरिया और एशिया मायनर से भारतवर्ष में आकर बंबई के औषधि विक्रेताओं के यहाँ बिकता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति पेट में से जल निकालनेवाली और विरेचक होती है। जलोदर और सर्वांगीणशोथ के ऊपर इसका प्रचुरता से उपयोग होता है।

सकेना

नाम—हिन्दी—सकेना। कुमाऊँ—सकेना। देहरादून—सकीना। मराठी—बरोली। तामील—नरिंजी। लेटिन—Indigofera pulchelea (इंडिगोफेरा पुलचेला)।

वर्णन—यह नील के वर्ग की एक वनस्पति होती है। यह भारतवर्ष के पहाड़ी प्रदेशों में पैदा होती है। औषधि प्रयोग में इसकी जड़ काम में आती है।

गुण, दोष और प्रभाव—संथाल जाति के लोग इसकी जड़ का काढ़ा खाँसी को दूर करने के लिये देते हैं और छाती के दर्द को दूर करने के लिये छाती के ऊपर इसकी जड़ों का लेप करते हैं।

संखिनी

नाम—संस्कृत—यवतिक्ता, महातिक्ता, दृढपादा, विसर्पिणी, नाकुली इत्यादि। हिन्दी—शंखिनी। बङ्गाल—श्वेतबोला, दनकुनी। कच्छ—शङ्खपुष्पी। मराठी—टिटवी, यवेची। लेटिन—Canscora decussata (केंस्कोरा डेक्यूसेटा)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी लता होती है। इसकी बेल शिवलिंगी की बेल के समान होती है। फल भी शिवलिंगी के फल के समान होती है। मगर इसके फलों के ऊपर शिवलिंगी के फलों के समान सफेद छींटे नहीं होते हैं। इसके बीज शङ्ख के आकार के होते हैं। कुछ लोगों ने इसको कालमेघ माना है। मगर यह कालमेघ से भिन्न एक दूसरी वनस्पति होती है। कालमेघ को लेटिन में एण्ड्रोग्राफिस पेनिक्यूलेटा कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—राजनिघंटु के मत से संखिनी कड़वी, चरपरी, रुचिकारक, अग्निदीपक, मृदुविरेचक, कृमिनाशक, मस्तिष्क को शक्ति देनेवाली, खट्टी, तीक्ष्ण, स्निग्ध, गरम, त्रिदोषनाशक तथा कुष्ठ, आम, विषविकार, रक्तदोष, कृमि, सूजन और उदररोग को दूर करनेवाली होती है।

महर्षि आत्रेय के मतानुसार संखिनी जठराग्नि को दीपन करनेवाली, बलवर्द्धक, कड़वी, ज्वरातिसार नाशक और बालकों का कल्याण करनेवाली होती है।

हिन्दू चिकित्साशास्त्र के अन्दर यह वनस्पति मृदुविरेचक, धातुपरिवर्तक और पौष्टिक मानी गई है। मस्तिष्क की विकृति को दूर करने के लिये भी इसकी काफी प्रशंसा है। यह उन्माद मृगी और स्नायुजाल की कमजोरी को दूर करने के लिये काम में ली जाती है। इसके पौधे का ताजा रस एक औंस की मात्रा में उन्माद के रोगियों को दिया जाता है।

संकासुरा

नाम—मराठी—संकासुरा। बम्बई—वायनी। तामील—वाराही। तेलगू—सुंकेवरम्। इंग्लिश—Tiger bean (टायगर बीन)। लेटिन—Delonix elata (डेलोनिक्स एलेटा)। Poinciana elata (पोइनसिएना एलेटा)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसका मूल उत्पत्ति स्थान अरब और अबीसीनियाँ है मगर भारतवर्ष के अन्दर भी यह पैदा होने लगा है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसका पौधा संधिवात और वात को नष्ट करने के उपयोग में लिया जाता है। इसकी छाल एक उत्तम ज्वरनाशक पदार्थ की तरह उपयोग में ली जाती है।

सगतरा

नाम—संस्कृत—क्षुद्रशणा। मराठी—रानताग। गुजराती—सगतरा, शंगीतरा, खीप, खरसण। हिन्दी—शीस। पंजाब—शीस, खरसण। लेटिन—Crotolaria burhia (क्रोटोलेरिया बुरहिया)।

वर्णन—यह एक सण के वर्ग की छोटी वनस्पति होती है। इसका पौधा १ से २ फीट तक या उससे भी कुछ ऊँचा होता है। यह पौधा उजाड़, कंकरीली या रेतीली जमीनों में पैदा होता है। इसके पौधे में पिंड नहीं होता। जड़ से ही इसकी शाखाएँ सुतली के समान मोटी और एक दूसरी में उलझी हुई निकलती हैं। इन शाखाओं के ऊपर सफेद और भूरे रंग के कोमल रुएँ होते हैं। इसके पत्ते दूर दूर पर आते हैं। ये लम्बगोल, बरछी आकार के रुएँदार और आधे से लेकर डेढ़ इंच तक लम्बे होते हैं मगर ये पत्ते पौधे पर आते ही गिर जाते हैं। इसलिये अक्सर इस वनस्पति के पौधे बिना पत्ते वाले ही दिखलाई देते हैं। इसके फूल पीले रंग के और फलियाँ सणकी फलियों की तरह होती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इस वनस्पति का शास्त्रीय उपयोग कहीं देखने में नहीं आता। घरेलू औषधियों में इसको वमन, दमा और खाँसी के ऊपर उपयोग में ली जाती है। सूजन और सन्धिवात के ऊपर इसका लेप भी किया जाता है। मगर साधू, सन्त, योगी और यती इसको एक दिव्य औषधि मानते हैं। खासकर पागल कुत्ते के विष और बिच्छू के विष पर यह एक उपयोगी वस्तु सिद्ध हुई है।

जंगलनी जड़ी बूटी के लेखक लिखते हैं कि यह वनस्पति हमें एक महात्मा की कृपा से प्राप्त हुई और पागल कुत्ते के काटे हुए २०।२५ रोगियों पर हमने इसको अजमाई। लेकिन एक भी केस में यह वनस्पति असफल सिद्ध नहीं हुई। इसको उपयोग में लेने का तरीका इस प्रकार है।

जिसको पागल कुत्ते ने काटा हो उसको प्रतिदिन सबेरे सगतरे के पौधे की १ पैसे भर कोंपले २१ काली मिरचों के साथ पानी में भाँग की तरह पीसकर, फिर उसको ५ तोला पानी में बारीक कपड़े के अन्दर छानकर रोगी को पिलाना चाहिये। यह प्रयोग कुत्ता काटे उस दिन से लेकर ७ दिन तक लगातार करना चाहिये। ऐसा करने से जिन्दगी भर तक हड़काव पैदा होने का भय नहीं रहता।

अगर इस प्रयोग को करने में विलम्ब हो जाय और रोगी में हड़काव पैदा होने के चिह्न दिखलाई देने लगे तो तुरंत इस औषधि को पिलाकर उसके ऊपर अजीर्ण हो जाय इतना तिल का तेल पिलाना चाहिये, इससे दस्तें होकर दस्त के रास्ते हड़काव के जन्तु बाहर निकल जाते हैं। अगर एक बार इस औषधि को पिलाने से तीन घण्टे में पुरा फायदा नहीं दिखलाई दे तो दूसरी वक्त इसी प्रयोग को फिर से करना चाहिये।

सगतरा और बिच्छू का विष—जंगलनी जड़ी बूटी के लेखक लिखते हैं कि इसके अतिरिक्त इस वनस्पति में बिच्छू के विष को नष्ट करने का अजीब गुण भी रहता है। इसके रस का स्पर्शमात्र अगर बिच्छू कर ले तो उसको पक्षाघात हो जाता है और उसकी हिलने-चलने की शक्ति नष्ट हो जाती है। इसकी जड़ को पानी के साथ घिसकर बिच्छू के डंक पर लगाने से विष की वेदना तत्काल शांत हो जाती है।

संखिया

नाम—संस्कृत—मल्ल, गौरीपाषाण, फेनाश्म, शतमल्ल, मूषकपाषाण, आखुपाषाण इत्यादि। हिन्दी—संखिया, सोमल। मराठी—सोमल, संखिया। गुजराती—शोमल। शंखिया। बंगाल—शिमुलक्षार। पञ्जाबी—सिम्मलक्षार। तेलगू—तैल पाषाणमु। अरबी—सम्बुल खार। फारसी—मर्गमूश। लेटिन—Arsenicum Album (आर्सेनिकम एलबम) अंग्रेजी—Oxide Of Arsenic।

वर्णन—संखिया एक प्रकार का खनिज विष होता है। यह एक भयंकर और प्राणघातक विष है। यह रंग के भेद से सफेद, लाल, पीला और काला चार प्रकार का होता है। पर विशेष करके सफेद रंग का संखिया ही अधिक तादाद में मिलता है और यही औषधि प्रयोग में विशेष रूप से काम में आता है। यह देखने में सुहागे के समान दिखलाई देता है। इसका स्वाद फीका और किसी भी प्रकार के स्वाद से रहित होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से संखिया स्निग्ध, पारे को बाँधने वाला, लोहभेदक, वीर्यवर्द्धक, कांतिवर्द्धक तथा त्रिदोष और सर्वव्याधिनाशक होता है।

अशुद्ध संखिया सप्त धातुनाशक, तथा दाह, पित्त, भ्रम, लालास्राव, पीड़ा, दस्त, वमन, तृषा और अनेक प्रकार की व्याधियों को पैदा कर शीघ्रतापूर्वक प्राणों को नष्ट करता है। यह एक महा भयंकर विष होता है। इसलिये अनजान आदमियों के समीप अथवा घरगृहस्थी में इसको असावधानी से नहीं रखना चाहिये।

रसरत्न समुच्चय नामक ग्रन्थ में लिखा है कि—

> 'रसबन्धकरः स्निग्धो दोषघ्नो रसवीर्यकृत्।'

अर्थात्—संखिया विष पारे को बाँधने के काम में आता है। यह गुण में चिकना, वात, पित्त और कफ तीनों दोषों को शांत करनेवाला तथा रस और वीर्य को पैदा करनेवाला होता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा के अन्दर संखिया का मारण संस्कार करने के पश्चात् ही इसको चिकित्सा के उपयोग में लेने का विधान है। संखिया को मारने कि एक दो विधियाँ नीचे दी जाती हैं—

संखिया को मारने की पहली विधि—मूली की एक सेर राख लेकर, उसमें से आधी राख एक मिट्टी की हाण्डी के अन्दर दबा-दबाकर भर देना चाहिये, फिर उस राख पर दो तोले सङ्खिया की डली रखकर उस डली पर बाकी राख को दबाकर भर देना चाहिये। फिर उस हाण्डी के मुँह पर ढकना रखकर उसकी सन्धियों को कपड़मिट्टी से बंद कर देना चाहिये। फिर एक चूल्हे में चिराग की लौ के बराबर आग जला कर चूल्हे पर इस हण्डी को रख देना चाहिये और पूरे बारह घण्टे तक यह आँच जारी रखना चाहिये। इस क्रिया से संखिया का मारण हो जाता है।

संखिया मारने की दूसरी विधि—पापड़ खार चार तोले लेकर पीसकर मिट्टी के एक सराव सम्पुट में उसमें से आधा पापड़ खार बिछा उस पर एक तोला संखिया की डली रख देना चाहिये और उस डली पर बाकी का पापड़ खार बिछा कर, उस सराव के ऊपर दूसरा सराव रख ढककर सन्धियों पर कपड़मिट्टी कर देना चाहिये, सूखने पर उस सराव सम्पुट को बीस सेर कण्डे की आंच में रख कर फूँक देना चाहिये । इस क्रिया से संखिया का मारण हो जाता है ।

मानव शरीर पर संखिया के प्रभाव—आमाशय पर संखिया के प्रभाव—संखिया को छोटी मात्रा में (१-६० ग्रेन से १-५० ग्रेन तक) पेट में देने से यह आमाशय में रस बनाने की क्रिया उत्तेजित करता है । आमाशय के लिये यह एक उत्तेजक और शक्तिदायक पदार्थ है । इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है और भूख बढ़ती है । बड़ी मात्रा में इसको लेने से यह आमाशय में दाह पैदा करता है और आमाशय तथा पक्वाशय में दाह और सूजन उत्पन्न करता है । इसका इंजेक्शन देने से यह सारे शरीर में जज्ब होकर आमाशय में पहुँचता है । संखिया को बहुत छोटी मात्रा में भोजन के पहले लेने से यह दाहयुक्त अपचन, भोजन के पश्चात् दस्त और वमन का होना, स्नायविक उदरशूल और आदतन शराबियों की वमन को दूर करता है ।

रक्तपर सङ्खिया के प्रभाव—पाण्डु रोग (Anaemia) की अनेक प्रकार की अवस्थाओं में संखिया का प्रयोग किया जाता है । मगर इस बीमारी में इस औषधि की क्रिया किस प्रकार होती है यह अभी तक अनिश्चित है । कुछ लोगों का विश्वास है कि औसत दर्जे के स्वास्थ्य वाले आदमी के अन्दर यह रक्त के लाल जीवाणुओं की संखिया को कम करता है मगर रक्तरंजक कणों पर—जिनसे खून में ललाई दिखलाई देती है (Haemoglobin)–इसका कोई असर नहीं होता । किसी भी अङ्ग से रक्तस्राव होने के पश्चात् संखिया नए रक्त को बहुत शीघ्रता के साथ बनाता है । संखिया हड्डियों की मज्जा में (Bone marrow) सफेद रक्त-जीवाणुओं को तथा रक्त में सफेद रक्त-जीवाणुओं को बढ़ाता है ।

नवीन पाण्डु रोग में संखिया एक बहुत उपयोगी वस्तु है । घातक पाण्डु रोग में यह रक्तरंजक कणों (Haemoglobin) को बढ़ाता है । ल्यूकीमिया (Leukaemia) नामक दुःसाध्य पाण्डु रोग में जिसमें रक्त के अन्दर श्वेत जीवाणुओं की संख्या निरंतर बढ़ती जाती है तथा यकृत और तिल्ली में बहुत विकृति पैदा हो जाती है, संखिया अस्थायी रूप से लाभ बतलाता है । मलेरिया के पश्चात् होने वाले पाण्डु रोग में संखिया को देने से अच्छा लाभ होता है । नवयौवना स्त्रियों को होनेवाले ऐसे पाण्डु रोग में जिसमें त्वचा हलके हरे रंग की हो जाती है तथा मासिक धर्म की अनियमितता भी रहती है, संखिया को देने से लाभ होता है । इस रोग में संखिया को देने से शरीर की पोषण क्रिया को सहायता मिलती है, श्वास कष्ट कम हो जाता है और किसी हद तक शरीर को शक्ति मिलती है लेकिन प्रत्यक्ष रूप से अकेला संखिया इस बीमारी में कोई लाभ नहीं पहुँचाता, हाँ लोह के साथ इसका उपयोग करने से यह रक्त में लाल जीवाणुओं की संख्या बढ़ाकर लाभ पहुँचाता है ।

हृदय पर सङ्खिया के प्रभाव—बहुत छोटी मात्रा में संखिया को देने से यह हृदय के ठोकों की गति को बढ़ाता है । स्तन वाले मादा प्राणियों के हृदय पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता । इसका इण्ट्रावीनस इंजेक्शन देने से, यह उन सूक्ष्म केशवाहिनी नाड़ियों को (Capillary)—जो शुद्ध रक्तवाहिनी और अशुद्ध रक्तवाहिनियों को मिलाने का काम करती है—फैलाकर रक्त के दबाव को कम कर देता है । रक्तवाहिनियों के ऊपर इसके प्रभाव दूसरे अंगों की अपेक्षा अधिक होते हैं । इसी से इसकी कुछ अधिक मात्रा हो जाने पर आमाशय और आँतों में रक्ताधिक्यता होकर उसमें सूजन पैदा हो जाती है और पानी के समान पतले दस्त होने लगते हैं ।

थोड़ी मात्रा में संखिया का तैयार किया हुआ द्रव (चौथाई बूँद से लेकर १ बूँद तक) पेट में देने से गले की वेदना (Angina), दुर्बलता लानेवाले ज्वर और दूसरी कमजोर करनेवाली बीमारियों में यह हृदय को शक्ति देता है।

फेफड़ा और श्वास क्रिया प्रणाली पर संखिया के प्रभाव—श्वास क्रिया प्रणाली पर संखिया के प्रभाव अभी तक स्पष्ट रूप से मालूम नहीं हुए हैं । इतना कहा जा सकता है कि जो लोग आदतन रूप से इसको खाने के आदी हैं वे दूसरे लोगों की अपेक्षा शारीरिक परिश्रम बिना कठिनाई के अधिक कर सकते हैं । कठिन परिश्रम से भी उनको श्वासोच्छ्वास में अधिक-तकलीफ नहीं होती ।

दमे की बीमारी में संखिया एक उपयोगी वस्तु है। इसको लम्बे समय तक सेवन करने से दमे में बहुत लाभ होता है। जुकाम, दमा, कठिन श्वासावरोध, आक्षेप युक्त खाँसी और जुकाम से पैदा हुए प्राचीन निमोनियाँ में इसको देने से लाभ होता है। ब्रण्टन के मतानुसार क्षय के रोग में, यह क्षय जनित ग्रन्थियों को मुरझा कर उसके कीटाणुओं को बढ़ने से रोकता है जिससे क्षय रोग का बढ़ता हुआ वेग रुक जाता है।

मज्जातन्तुओं पर संखिया के प्रभाव—छोटी मात्रा में संखिया मस्तिष्क और मज्जातन्तुओं को बल देनेवाला होता है। बड़ी मात्रा में यह मस्तिष्क के केन्द्र स्थान की ज्ञानग्राहक शक्ति को और प्रतिक्षिप्त क्रिया (Raffex Action) को कम करता है। गतिवाहक तन्तु और मांसपेशियों पर भी इसका असर होता है।

कम्पवात या कोरिया (Chorea) नामक वात रोग में इसका कुछ अधिक मात्रा में उपयोग किया जाता है। मगर आजकल की नवीन चिकित्सा प्रणाली में इस बीमारी के अन्दर संखिया की अपेक्षा सालिसिलेट्स अधिक उपयोग में लिये जाते हैं क्योंकि इनमें संखिया की तरह प्रतिक्रिया का भ्रम नहीं रहता है। लोकोमोटर एटेक्झी (Locomotor Ataxy) नामक बीमारी में गावर्स ने संखिया की बड़ी प्रशंसा की है। दूसरी स्नायविक बीमारियों में खासकर कुक्कर खाँसी (Petussis) और गलक्षत (Augina) में यह विशेष रूप से लाभ बतलाता है।

त्वचा पर संखिया के प्रभाव—संखिया का त्वचा की पोषण क्रिया पर खास प्रभाव देखा जाता है। यह त्वचा की पोषण क्रिया और उसके रङ्ग को सुधारता है। चमड़े के नीचे की चर्बी को बढ़ाता है। पसीने के द्वारा शरीर से बाहर निकलते समय यह त्वचा की विनिमय क्रिया को सुधारता है कभी-कभी त्वचा पर बाहर निकलते समय यह छोटी-छोटी फुन्सियाँ भी पैदा कर देता है। इसके गलत या अधिक प्रयोग से त्वचा का रङ्ग काला पड़ जाता है।

प्राचीन चर्मरोगों में प्रधानतया ऐसी खुजली (Sceoly)—जिसमें शरीर से खुजली चल चलकर पपड़ियाँ उतरती हैं और ऐसी खुजली (Papular) जिसमें छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं—में यह आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाता है। विसर्पिका (Psoriais), सिरकीगंज (Lichen) एक्जिमा, मुहाँसे (Acne) और चमड़े पर होनेवाले फफोलों (Pemphigus) में भी इसके सेवन से लाभ होता है। त्वचा के दूसरे भागों की अपेक्षा उपत्वचा (Epidermis) पर प्रभाव करनेवाली बीमारियों पर इसका विशेष प्रभाव होता है।

बाह्यप्रयोग में त्वचा के ऊपर लगाने से संखिया एक चर्मदाहक पदार्थ की तरह काम करता है। यह धीरे-धीरे चमड़े पर सूजन पैदा करता है। जो कि बढ़ते २ बहुत अधिक (Sloagh) हो जाती है। संखिया से तैयार किया हुआ लेप चर्म क्षयरोग (Lupus), उपदंश की वजह से होनेवाले त्वचान्तर्गत. रोग (Condyloma) और एपिथिलोमा (Epithelioma) को नष्ट करने के काम में लिया जाता है। अगर बीमारी फैली हुई हो तो पहले थोड़े हिस्से पर इस लेप का प्रयोग करना चाहिए। उत्तरी आयरलैण्ड में कैन्सर के चिकित्सक कैन्सर की चिकित्सा में सङ्खिया को एक प्रधान द्रव्य की तरह उपयोग में लेते हैं।

छोटी मात्रा में सङ्खिया को अधिक समय तक लेने से यह शरीर की वृद्धि और पोषण को बढ़ाता है। शरीर के तन्तुओं (Tissus) पर इसका प्रभाव फास्फोरस के समान मगर उससे कुछ सौम्य होता है। इसका बहुत लम्बा उपयोग करने से यह यकृत की क्रिया शक्ति को कम करता है और ग्लायकोजेन (शरीर रचना में शक्कर उत्पन्न करने वाला एक पदार्थ) के बनने की क्रिया को कम करता है तथा प्रोटीन को नष्ट करनेवाली क्रिया को बढ़ाता है। यद्यपि इससे पेशाब के नाइट्रोजन की तादाद में ज्यादा परिवर्तन नहीं होता है तथापि इससे पेशाब में यूरिया (Urea) एमोनिया, ल्युसिन, ग्लायकोजेन और टायरोजिन (Tyrosin) की मात्रा बढ़ जाती है। यकृत, गुदा और मांसपेशियों पर इसका हानिकारक प्रभाव (Fatty Degeneration) साफ साफ मालूम होता है।

मलेरिया के अन्दर सङ्खिया एक बहुत उपयोगी वस्तु है। प्राचीन मलेरिया में जब कि पाण्डु रोग और दौर्बल्य पैदा हो जाता है वह एक बहुमूल्य औषधि का काम करता है। इस कार्य के लिए साधारणतया लोह और कुनैन में मिलाकर इसका उपयोग किया जाता है। फीलपांव और अण्डकोष वृद्धि की बीमारी में इसको कुछ दिनों तक लगातार लेते रहने में इस बीमारी में बार बार आनेवाला ज्वर बन्द हो जाता है।

हाडकिन्स डिसीज—(प्लीहा और लसिका ग्रन्थियों की वृद्धि) इस बीमारी की खोज अठारहवीं शताब्दी में थॉम्स हाडकिन्स नामक अंग्रेज डाक्टर ने की थी इसीलिए इस रोग का नामकरण उक्त चिकित्सक के नाम पर

हुआ। सङ्खिया के सिवा दूसरी कोई ओषधि आज तक इस बीमारी में उपयोगी नहीं मालूम हुई है। इस प्रकार के अर्बुद सङ्खिया को लगातार कुछ दिनों तक खाने से अथवा इसका इंजेक्शन लेने से मिट जाते हैं।

मतलब यह कि संखिया एक बहुत प्रभावशाली लेकिन भयंकर विष है। इसका सावधानी पूर्वक, शास्त्रीय विधि से किया हुआ प्रयोग जहाँ मनुष्य को भयंकर से भयंकर रोगों से मुक्त कर उसे स्वास्थ्य प्रदान कर सकता है वहाँ इसके प्रयोग में की हुई छोटी से छोटी भूल भी मनुष्य को भयंकर यातना दिलाती हुई मृत्यु के मुँह में डाल सकती है। इसलिए साधारण लोगों को बिना उत्तम वैद्य की सलाह के इसका जरा भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। प्रयोग करते समय इसकी मात्रा जरा भी अधिक न हो इस बात पर पूरा ख्याल रखना चाहिए। दूसरी ओषधियों के सम्बन्ध में की हुई छोटी-बड़ी भूल फिर भी क्षम्य हो सकती है मगर इसके सम्बन्ध की भूल कभी क्षम्य नहीं हो सकती।

संखिया के विष की प्रतिक्रियाएँ—तीव्र विष के प्रभाव—संखिया खाने के पन्द्रह मिनिट बाद और एक घण्टे के अन्दर विष के विकार प्रकट होने लगते हैं। कहीं-कहीं छः मिनिट के बाद ही इसके विष के लक्षण उत्पन्न होते देखे गये हैं। घाव के ऊपर भी संखिया के चूर्ण का प्रयोग करने से विष के विकार उत्पन्न होने की पूरी सम्भावना रहती है। संखिया खाने के पश्चात् कॉलिक शूल, तेज वमन, तेज दस्त, तेज प्यास, भयंकर थकावट, टाँगों में बांवटे आना इत्यादि लक्षण भयंकरता के साथ उत्पन्न होते हैं। इसके खाने के बाद शरीर में अवसन्नता, मूर्च्छा, जी मिचलाना और उबाक पैदा होने लगती है। पाकाशय में अत्यन्त दाह होकर पीली वमन होती है। फिर रक्तमिश्रित कफ की वमन होती है, कहीं पित्त मिली हुई वमन होती है। पैर, जाँघ और हाथों की माँसपेशियों में अकड़न और बाँवटे आते हैं, मुँह और गले में खुश्की आकर गला रुक जाता है। नाड़ी हलकी, नरम और अव्यवस्थित चलती है। पेट में दर्द, श्वास-प्रश्वास में दीर्घता, त्वचा, ठण्ढी, पसीना ज्यादा, इत्यादि लक्षण पैदा होकर दिल की धड़कन बन्द हो जाती है और रोगी मर जाता है। कहीं-कहीं धनुर्वात की तरह लक्षण पैदा होकर शरीर में आक्षेप पैदा हो जाता है और पेशाब बन्द हो जाता है।

संखिया का शरीर से बाहर निकलना—संखिया—विशेष कर मूत्र के द्वारा शरीर से बाहर निकलता है। कुछ मात्रा में यह दस्त के द्वारा भी बाहर निकलता है। पित्त, पसीना, लार, आँसू और दूध के द्वारा भी यह बहुत थोड़ी मात्रा में बाहर निकलता है। इसका सेवन बन्द करने के बाद भी यह दो–तीन सप्ताह तक धीरे-धीरे बाहर निकलती रहती है। पेट में जाने के पश्चात् दो से लेकर आठ घण्टों के बीच इसका शरीर से बाहर निकलना प्रारम्भ हो जाता है। मुँह के द्वारा खाने पर यह विशेष कर आँतों के द्वारा बाहर निकलता है और चमड़े के नीचे इसका इंजेक्शन देने पर यह विशेष कर गुर्दे के द्वारा बाहर निकलता है।

संखिया के विष के लक्षण हैजे के लक्षणों से इतने अधिक मिलते हुए होते हैं कि कई अच्छे डाक्टरों को भी कभी कभी इसके लक्षणों में भ्रम हो जाता है।

संखिया के मन्द विष की प्रतिक्रियाएँ—संखिया का मन्द विष अक्सर उन लोगों में पाया जाता है जिनके नाक के द्वारा या श्वास के साथ संखिया की थोड़ी थोड़ी मात्रा पहुँचती रहती है, अथवा जिन्हें मुँह के द्वारा भी छोटी मात्रा में किसी प्रकार संखिया का सेवन कराया जाता है। यूरोप में कागज के कारखानों तथा दूसरी शिल्पशालाओं में संखिया का व्यवहार होता है। कभी बहुत से बच्चों के खिलौने संखिया के संयोग से बने हुए मसाले के द्वारा बनाए जाते हैं। इन्हीं कारणों के द्वारा तथा अन्य कारणों से सङ्खिया के मन्द विष का प्रभाव मनुष्य के शरीर पर होता है। इस मन्द विष के फल स्वरूप भूख कम हो जाती है, जी घबराया करता है, वमन होती है, पेट दुखता है, हलकी प्रवाहिका होती है, चेहरे पर आँखों के नीचे सूजन आ जाती है, आँखें दुखनी आ जाती हैं, जोड़ों में सूजन हो जाती है, इत्यादि अनेक प्रकार के उपद्रव दिखलाई देने लगते हैं। यदि ओषधि में संखिया कुछ अधिक मात्रा में लम्बे समय तक दिया जाय तो उँगलियों के स्नायुओं में सूजन आ जाती है। मांसपेशियों की पोषण क्रिया बन्द होकर वे कमजोर और दुर्बल हो जाती हैं। चाल में तिरछापन (Ataxic gait) हो जाता है। कई बीमारों के चमड़े का रंग बिगड़ जाता है, उसमें धब्बे पड़ जाते हैं और त्वचा में दर्द होता है।

दर्पनाशक—अगर किसी ने संखिया खा लिया हो और वह विष आमाशय में हो तो पहले रोगी को मैनफल, अरीठा अथवा और किसी उपाय से वमन कराना चाहिये। क्योंकि विष में वमन से बढ़ कर कोई दूसरी दवा नहीं है। सुश्रुत में लिखा है कि—

'पिप्पलीमधुकक्षौद्रशर्करेक्षुरसाम्बुभिः। छर्दयेद् गुप्तहृदयं भक्षितं यदि वै विषम्।'

अर्थात्—जिसने विष खाया हो उसको हृदय की रक्षा करनेवाली पूर्व लिखित ओषधियाँ देकर पीपल, मुलहठी, शहद, शक्कर और गन्ने का रस इनको जल में मिलाकर पिलावे। वमन होने के बाद विषनाशक ओषधियों का प्रयोग कर विष को शांत करे। पक्वाशय में चले जाने पर मनुष्य को विरेचक ओषधियाँ देनी चाहिये अथवा पिचकारी से मल के साथ विष को निकाल देना चाहिये।

पाश्चात्य चिकित्सा के मतानुसार संखिया के विष को नष्ट करने के लिये वमन कराना, बहुत सावधानी के साथ स्टमक पम्प का उपयोग करना, एपो मारफिया (अफीम के सत्व मारफिया से तैयार किया हुआ एक द्रव्य) का इंजेक्शन करना, सोडियम कार्बोनेट या एमोनियम कार्बोनेट के साथ तैयार किया हुआ आयर्न पैरेक्साइड (लोहे का बनाया हुआ द्रव) एक औंस की मात्रा में देना, इसके न मिलने पर मैग्नेशिया, प्राणिज कोयला, जैतून का तेल, चूने का पानी इत्यादि चीजों का प्रचुरता से उपयोग करना चाहिये। आँतों को साफ करने के लिये अरण्डतेल तथा दूसरे स्निग्ध पदार्थों का उपयोग करना चाहिये। हृदय को उत्तेजना देने वाले पदार्थ ब्राण्डी, ईथर, एमोनिया इत्यादि भी देना चाहिये और गरम पानी की बोतलों से सेक करना चाहिये।

देशी चिकित्सा पद्धति के मतानुसार वमन, विरेचन के पश्चात् निम्नवस्तुओं के प्रयोग से संखिया के विष की शान्ति होती है।

१—संखिया वाले को वमन-विरेचन करवाकर लिसोड़े के पत्तों का स्वरस १ छटाँक और मीठी इमली का रस दो तोले मिलाकर पिला दें। इससे विष शांत हो जाता है।

२—बिनौले की गिरी को गुनगुने दूध के साथ पिलाने से संखिया का विस उतर जाता है।

३—कड़वे नीम के पत्तों का रस पिलाने से भी संखिया का विष उतर जाता है। इससे कभी कभी बड़ा लाभ होता हुआ देखा गया है।

४—ऐसा कहा जाता है कि अगर रोगी को बेल का गूदा खिलाया जाय तो विष शरीर में न फैल कर बेल के गूदा पर लिपट जाता है। हृदय और रक्तपर इसका असर नहीं होने पाता। फिर उस बेल के गूदा को वमन के द्वारा निकाल दिया जाता है।

५—इस विष के रोगी को ठण्डा जल नहीं पिलाना चाहिये, न ठण्डा जल से स्नान करवाना चाहिये। हर हालत में गर्म जल का प्रयोग करना चाहिये।

६—संखिया के विष में घी का प्रयोग करना बहुत अच्छा है। पहिले रोगी को खूब घी पिलाकर वमन कराना चाहिये। इससे सब विष घी के साथ मिलकर निकल आवेगा और विष के असर से हृदय बच जाएगा। महर्षि वाग्भट का कथन है कि प्रत्येक विष को हरेक हालतों में घी के समान दूसरी बढ़िया ओषधि नहीं है। उसमें भी वात-गुणाधिक विष में घी का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है। क्योंकि विष के अन्दर जो तीक्ष्ण, उष्ण इत्यादि दस धर्म होते हैं, घी में उनके विपरीत शीत, स्निग्ध, मृदु आदि गुण रहते हैं इसलिये घी विष में परमोपयोगी है।

७—संखिया के विष वाले को बारम्बार केले का जड़ का रस एक औंस से दो औंस तक की मात्रा में घी के साथ पिलाना चाहिये। जब वमन में घी और पानी काला होकर निकले तब उसे मिश्री मिला पानी पिलाना चाहिये।

सङ्खिया के वमन की परीक्षा—संखिया के विष के रोगी की वमन में, लवण द्रावक संमिश्रण सल्फ्यूरेटेड हाइड्रोजन वाष्प छोड़ने से संखिया पीले रंग का होकर नीचे बैठ जाता है।

मात्रा—संखिया की साधारण मात्रा १।३० रत्ती अर्थात् चौथाई चावल के बराबर होती है। संखिया की भस्म की मात्रा आधे चावल के बराबर तक दी जा सकती है। इससे जरा भी मात्रा को बढ़ाना बहुत खतरनाक है।

उपयोग—मलेरिया ज्वर—मलेरिया ज्वर को रोकने के लिये संखिया की भस्म चौथाई चावल से लेकर एक चावल तक की मात्रा में देना चाहिये।

२—एक रत्ती संखिया और एक माशा कत्था को महीन पीसकर उनकी उड़द के समान गोलियाँ बना लेनी चाहिये। ज्वर चढ़ने से पहले इनमें से एक या दो गोली जल के साथ देने से लाभ होता है।

उपदंश—संखिया को जल भाँगरे के रस में खरल करके बाजरे के समान गोलियाँ बना लेनी चाहिये। अगर रोगी निर्बल हो और मौसिम गर्म हो तो सवेरे शाम एक-एक गोली देनी चाहिये और यदि रोगी बलवान हो और मौसिम ठण्ढा हो तो दो २ गोली सवेरे शाम दे सकते हैं। इस ओषधि को १४ से २१ दिनों तक लेने से उपदंश मिट जाता है। इस ओषधि को लेने पर अगर वमन होने लगे तो नागरबेल के पान खिलाना चाहिये और पूरा पथ्य रखना चाहिये।

ज्वर—संखिया की डली को बैंगन के भीतर रखकर उस बैंगन पर कपड़मिट्टी करके भूभल में उस बैंगन का भुर्त्ता कर लें। इस प्रकार सात बैंगन में उस संखिया को पकाकर, पीसकर लोहे की कड़ाही में आधा सेर जल के साथ औटावें। जब पानी सूख जाय तब उस संखिया में समान भाग उत्तम गेरू मिलाकर बारीक पीसकर उड़द के बराबर गोलियाँ बना लें। इसमें से एक से लेकर दो गोली तक रोगी को बलानुसार देने से और पथ्य में सिर्फ मूँग की दाल और चावलों का पथ्य देने से सब प्रकार के ज्वर छूटते हैं।

गठिया—संखिया से सिद्ध किये हुए तेल की मालिश करने से गठिया और स्नायु जाल की पीड़ा मिटती है।

बाईएटे—संखिया के तेल की मालिश करने से और इस तेल को सींक भर पात में रखकर खाने से बाईएटे मिटते हैं।

रुधिरविकार—आधा चावल भर संखिया की भस्म त्रिफला के क्वाथ और शहद के साथ देने से रुधिर विकार मिटता है।

आधा शीशी—एक रत्ती संखिया और एक तोले चावलों को पीस कर कागदार शीशी में भर कर रख छोड़ें। इसमें से एक रत्ती चूर्ण सुंघाने से आधाशीशी मिटती है।

बिच्छू का विष—संखिया को घिस कर बिच्छू के विष पर लेप करने से विष उतर जाता है।

पुराना जुकाम—चौथाई चावल की मात्रा में संखिया को पान में रखकर खानेसे पुराना जुकाम मिटता है।

बनावटें—संखिया का घी—भैंस के दस सेर दूधको एक हाण्डीमें भर कर, पाँच तोले संखियाके छोटे-छोटे टुकड़े करके, उन्हें एक पोटली में बाँध कर बीच में लटका देना चाहिये और उस हाण्डी पर कपड़मिट्टी करके बहुत हलकी आँच से गरम करना चाहिये। यह खयाल रहे कि उसकी भाफ बाहर न निकलने पावे। इस प्रकार बारह घण्टे बहुत हलकी आँच पर पकाकर उस दूध का दही जमा देना चाहिये और उस दही को बिलोकर उसका घी निकाल लेना चाहिये। यह संखिया का घी कहलाता है।

इस घी को गठिया, संन्निवात इत्यादि पर मालिश करने से और एक सींक के बराबर पान में लगाकर खाने से लाभ होता है।

सङ्खिया का तैल बनाने की विधि—लौंग, जायफल, जावित्री और संखिया सबको समान भाग लेकर पीसकर, चीनी के प्याले पर एक मलमल का कपड़ा बाँधकर उस कपड़े पर बिछा देना चाहिये और फिर प्याले के मुँह पर एक अभ्रक का पत्र ढककर कपड़मिट्टी करके ऊपर से कोयलों की आँच देना चाहिये, इस क्रिया से तैल टपक-टपक कर नीचे के प्याले में इकट्ठा हो जाता है। इस तैल को एक सींक के बराबर नागरबेल के पान में अथवा दूसरे अनुपान के साथ खाने से वात और कफ के सब विकार नष्ट होते हैं।

सङ्खिया के तैल की दूसरी विधि—साफ की हुई सजी चार तोले, संखिया का चूर्ण आठ तोले, तिल्ली का तैल १६ तोले और जल २४ तोले। इन सब चीजों को एक बरतन में भरकर हलकी-हलकी आँच पर पकावे जब पानी का अंश जल जाय या एकाध तोला बाकी रहे तब उसे उतार कर ठण्डा करें और पानी का अंश सूखने पर उस तैल को छानकर बोतलोंमें भर लें। जब जरूरत हो तब इसमें से एक तोला तेल लेकर पाँच तोले कड़वे तैल में मिलाकर, शरीर के जिस अंग में दर्द हो उस पर मालिश करें और ऊपर अरण्डी के पत्ते गरम कर बाँध दें। कमर के दर्द में इस तैल को मालिश करके कोयलों की आँच से सेक देने से बड़ा लाभ होता है।

सङ्खिया के तैल की तीसरी विधि—पाव भर संखिया को कूटकर लोहे की कड़ाही में भर दें और उस पर एक सेर कूटा हुआ कलमी शोरा बिछा दे। इस कड़ाही में तिल्ली का तैल उतना भर दें जिसमें सारी औषधि डूब जाय मगर कड़ाही का छः-सात अंगुल भाग जरूर खाली रहे। उस कड़ाही के नीचे आँच लगाकर स्वयं को कड़ाही से दूर जाकर बैठ जाना चाहिये और उसकी ज्वाला और धुएँ से अपने को बचाना चाहिये।

जब तैल खूब तप्त हो जायगा तब उसमें से पाँच–छः हाथ ऊँची ज्वाला उठेगी बाद में वह थोड़ी–थोड़ी उठती रहेगी। जब सम्पूर्ण तैल जलने में आवे और अग्नि की लपट शान्त होने लगे, लेकिन तैल की कुछ तरी कड़ाही में अवशेष रहे तब उस कड़ाही के दोनों कुन्दों में एक बाँस डालकर दो आदमी बांस के दोनों सिरों को पकड़ कर कड़ाही को नीचे उतार ले। जब कड़ाही ठण्डी हो जाय तब कड़ाही में जमी हुई सोरा और संखिया की कीचड़ को चाँदी या चीनी की थाली में निकालकर चन्द्रमा की चाँदनी के सामने उस थाली को तिरछी करके रख दें। जिससे तैल बहकर नीचे की तरफ इकट्ठा होता रहे ज्यों ज्यों चाँदनी का रुख बदलता जाय त्यों त्यों उस थाली का रुख भी बदल कर चाँदनी के सामने करते रहना चाहिए। सूर्योदय के पहले ही उस थाली में इकट्ठे हुए तैल को शीशी में भर लेना चाहिए और उस थाली को ऐसे स्थान में रख देना चाहिए जहाँ उसे हवा और प्रकाश न लगने पाये। फिर दूसरे दिन चन्द्रमा की चाँदनी में इस थाली को उसी प्रकार रखना चाहिए। इस प्रकार पाँच-छः दिन में सब तैल इकट्ठा हो जाता है।

यह तैल बिल्कुल साफ और निर्मल होता है। इस तैल को लिंगेन्द्रिय के ऊपर सुपारी और सीवन छोड़कर लेप करने से और ऊपर नागरबेल के पत्ते बाँध देने से लिंगेन्द्रिय की शिथिलता और नपुंसकता दूर होती है और मनुष्य की कामशक्ति जाग्रत हो जाती है। वात व्याधियों में भी इस तैल की मालिश से बहुत लाभ पहुँचता है।

इनके अतिरिक्त संखिया के योग से मल्ल चन्द्रोदय, मल्लसिन्दूर, कायाकल्प, लोह इत्यादि कई प्रकार के योग बनते हैं जिनका वर्णन पारद और लोह के प्रकरण में तथा और भी स्थान-स्थान पर किया गया है।

संगकुप्पी

नाम—संस्कृत—कुण्डली, समुद्रयूथिका, वनजई, वनयूथिका। हिन्दी—संगकुप्पी, लानजाई। बङ्गाल—बनजोई, बनजूमत, वटराज। गुजराती—तीवर। मराठी—वनजाई। दक्षिण—इसनधरी, सङ्गकुप्पी। तामील—अञ्चलि। अङ्गरेजी—Petit fever Leaves (पेटिट फीवर लीव्हज्)। लेटिन—Clerodendron inerme (क्लेरोडेण्ड्रान इनर्म)।

वर्णन—यह ओषधि सूरत से लेकर सीलोन तक समुद्र के किनारे किनारे पैदा होती है। इसके पौधे तीन से लेकर सात फीट तक ऊँचे होते हैं। ये बाँकी टेढ़ी शाखाओं वाले तथा झाड़ीनुमा होते हैं। इसके पत्ते आमने सामने लगते हैं। कहीं कहीं ये तीन तीन के गुच्छों में लगते हैं। ये पान इञ्च से लेकर १। इञ्च तक लम्बे होते हैं। ये कोमल हालत में राख के समान रङ्ग के होते हैं। इनके डंठल लम्बे होते हैं। इसके फूल जूही के फूलों की तरह सफेद और सुगन्धित होते हैं। इसके फल कीड़ामारी की फलियों की तरह होते हैं। चिकित्सा में इसके पत्ते और जड़ें काम में आती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—सङ्गकुप्पी, कटुपौष्टिक, क्षारस्वभावी, ज्वरनाशक, शोथघ्न, अवसादक और विषनाशक होती है। इसका ज्वरनाशक धर्म बहुत उत्तम होता है। इस कार्य के लिए सारे एशिया खण्ड में इस वनस्पति की बहुत प्रशंसा है। इस वनस्पति के गुणधर्म चिरायते के गुणधर्मों से मिलते–जुलते होते हैं। मगर ज्वरनाशक धर्म चिरायते के ज्वरनाशक धर्म से अधिक जोरदार होता है। मलेरिया ज्वर या पारी से आनेवाले बुखार में यह विशेष लाभ दिखलाती है।

संगकुप्पी और मलेरिया ज्वर—प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में यद्यपि इसका विशेष वर्णन देखने को नहीं मिलता लेकिन बम्बई के सुप्रसिद्ध सेठ सर दीनशा माणिक जी पेटिट सी० आई० ई० को इसके ज्वरनाशक धर्म का पता पहले पहल लगा और इसी कारण इस ओषधि के पत्ते बम्बई में पेटिट फीवर लीव्हज् के नाम से पहचाने जाते हैं। इस ओषधि का वर्णन करते हुए सर पेटिट लिखते हैं कि—

ये पत्ते सूरत जिले में तीवर के नाम से और बम्बई में पेटिट फीवर लीव्हज् के नाम से पहचाने जाते हैं। प्रत्येक प्रकार के ज्वर में, इकतरा, तिजारी, चौथिया, सतत ज्वर, लू लगने से आनेवाला ज्वर तथा जंगल की सूखी हवा से पैदा होनेवाले ज्वर में ये बहुत अकसीर प्रभाव बतलाते हैं। कई ऐसे केसों में जिनमें कुनैन असफल सिद्ध हो चुकी थी इस वनस्पति के पत्तों ने लाभ पहुँचाया है। जिन लोगों ने इन पत्तों का उपयोग किया है उनमें से किसी ने भी इससे किसी प्रकार का उपद्रव, हानि या प्रतिक्रिया होने की कोई शिकायत मेरे पास नहीं की। इस वनस्पति में रक्तशोधक गुण होने से यह खाज खुजली इत्यादि चर्मरोगों में भी लाभ पहुँचाती है।

डायमॉक का कथन है कि मलेरिया ज्वर के जिन रोगियों पर कुनैन असफल सिद्ध हुई है, उनमें भी इस वनस्पति ने विजय प्राप्त की है।

एन्सली का कथन है कि इसके पत्तों का रस कण्ठमाला की बीमारी में एक रक्तशोधक द्रव्य की तरह काम करता है। इस कार्य के लिए इसको एक बड़े चम्मच (टेबिल स्फून) की मात्रा में पानी के साथ मिलाकर दिया जाता है।

रीड का कथन है कि इसके पत्तों का पुलटिस बनाकर बाँधने से गठान बैठ जाती है और इसके काथ से स्नान करने से पागलपन मिटता है तथा इसकी जड़ को तेल में औटाकर उस तेल की मालिश करने से सन्धिवात मिटता है।

बम्बई में इसके पौधे की एक ज्वरनाशक पदार्थ की तरह बहुत ख्याति है। इसके लिए इसके पत्तों का रस आधे औंस की मात्रा में दिया जाता है। इसके रासायनिक तत्त्व चिरायते के रासायनिक तत्त्वों से बहुत मिलते हुए हैं। इसके सूखे पत्ते भी इसके ताजे पत्तों ही की तरह गुणकारी होते हैं। लेकिन इनको हमेशा छाया में सुखाना चाहिए जिससे इनकी गन्ध सुरक्षित रहे। इन सूखे पत्तों का दूसरे सुगन्धित द्रव्यों (लौंग, सोंठ आदि) के साथ काढ़ा बनाकर देना चाहिए। इनका चूर्ण या गोली बनाकर भी उपयोग किया जा सकता है।

उपयोग के तरीके—ज्वर के ऊपर इस वनस्पति के हरे या सूखे पत्तों का उपयोग कई प्रकार से किया जाता है। इसके सात से लेकर पन्द्रह तक पत्ते वैसे ही चबा लिये जायँ अथवा नागरबेल के पान में रखकर खा लिये जायँ तो भी लाभ पहुँचाते हैं। अगर इन पत्तों की चाय बनाकर पीई जाय तो वह ज्वर में बहुत लाभ पहुंचाती है। इस कार्य के लिए इसके बीस–पच्चीस पत्ते लेकर उनके छोटे-छोटे टुकड़े करके उनको एक ढक्कनदार चायदानी में डालकर उसमें पाव–डेढ़ पाव खौलता हुआ पानी और दस-पन्द्रह दाने काली मिरच के पीसकर डाल देना चाहिए। जब पानी ठण्ढा होने लगे तब चायदानी को अच्छी तरह हिलाकर उस पानी को कपड़े में छान लेना चाहिए और उसके तीन हिस्से करके दिन में तीन बार पी लेना चाहिए। अगर आवश्यकता मालूम हो तो इसमें कुछ शक्कर भी मिला सकते हैं।

अगर इसका एक्स्ट्रेक्ट या टिंक्चर बनाना हो तो इसके पत्तों को छाया में सुखाना चाहिए। जब वे मुरझा जांय तब उनमें से २० तोला पत्ते लेकर एक बोतल रेक्टी फाइड स्प्रिट में डालकर मजबूत काग लगा कर पाँच-सात दिन तक पड़े रखना चाहिये। प्रतिदिन दो तीन दफे उस बोतल को खूब हिला देना चाहिए। उसके पश्चात् उसको ब्लाटिंग पेपर में अथवा कपड़े में छानकर दूसरी बोतल में भर लेना चाहिए। इस औषधि की मात्रा छोटे बच्चों के लिए ६ से २० बून्द तक और बड़े आदमियों के लिए ३ से ६ माशे तक है। इसको चौगुने पानी में मिलाकर लेना चाहिए।

इसी प्रकार इसके पत्तों का शरबत भी बनाकर दिया जाता है। अगर इनकी गोलियाँ बनानी हों तो पीपर, चिरायता, कंटकरंज के बीज इत्यादि औषधियों के साथ इसके पत्तों को पीसकर उनकी चने के बराबर गोलियाँ बना लेनी चाहिए। इनकी मात्रा एक से लेकर तीन गोली तक रहती है।

उपरोक्त बनावटों में से ज्वर के रोगी को इसकी कोई भी बनावट देने से लाभ होता है। अगर इसके सेवन से ज्वर एकदम उतर कर शरीर ठण्ढा पड़ता हुआ दिखलाई दे तो गरमी लाने के लिए दो चम्मच उत्तम ब्रांडी पिलाना चाहिए।

आमवात के रोग में इसकी जड़ के छः माशे चूर्ण को अरण्डी के तेल में औटाकर उस तेल की मालिश करने से लाभ होता है। बदगांठ और दूसरी सूजन पर इसके पत्तों का लेप गरम करके बाँधने से सूजन और बदगांठ बिखर जाती है। कण्ठमाला पर इसके पत्तों का लेप करने से और उनको पेट में पिलाने से लाभ होता है। नवीन जखम और व्रण पर इसके पत्तों का लेप गरम करके उसमें ताजा खोपरे का तेल मिलाकर लगाया जाता है। उन्माद रोग में इसके पत्तों के काढ़े में रोगी को बिठाया जाता है। खुजली के ऊपर इसके हरे और सूखे पत्तों को पीसकर उसमें तिल का तेल मिलाकर उसको रोगग्रस्त भाग के ऊपर लगाना चाहिए और कुछ घण्टों के पश्चात् उसे गरम जल से धो डालना चाहिए। इसी प्रकार कुछ दिनों तक करना चाहिए। अगर खुजली सारे शरीर में हो तो गरम जल में इसका काढ़ा मिलाकर उससे स्नान करना चाहिए।

संगखापुली

नाम—संस्कृत—सङ्खखापुली, सङ्गरबी। मलयालम—कपाविला। लेटिन—Lochnerapusilla (लोचनेरा पुसिला) Vinca pusilla (विन्का पुसिला)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी क्षुप होता है। इसके पौधे की ऊँचाई ६ से लेकर ८ इञ्च तक होती है। इसके पत्ते १॥ से लेकर ३ इञ्च तक लम्बे और आधे से एक इञ्च तक चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद रङ्ग के होते हैं। यह वनस्पति पश्चिमी हिमालय, गंगा के ऊपरी मैदान, सिन्ध, गुजरात और कोकण में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—एन्सली के मतानुसार इसके सूखे पौधे के काढ़े में तेल को सिद्ध करके उस तैल की मालिश करने से कटिवात में लाभ होता है।

सज्जीखार

नाम—संस्कृत—सर्जिका, स्वर्जिक्षार, कपोत, योगवाही, सुखवर्च्चक इत्यादि। हिन्दी—सज्जी, सज्जीखार। बंगाल—साजिखार। गुजराती—साजीखार। मराठी—सज्जीखार। तैलगू—सजिकारमु। फारसी—संजारकलीया, अजगारशखार। अरबी—कलीवशब्बुल अफसर। अङ्गरेजी–Soda Corbonas Impura। लेटिन–Caroxylon foetidum (केरोक्झीलोन फाटिडम)।

वर्णन—सज्जीक्षार दो प्रकार से बनता है। पहला खारी जमीन की मिट्टी में से प्राप्त किया जाता है और दूसरा वृक्षों के पंचांग के टुकड़े करके उनको एक बड़ी खाईं में भरकर आग लगा देते हैं और उनकी राख में से सज्जी निकाली जाती है। जिस सज्जी में बहुत हलकी गुलाबी रङ्ग की धारियाँ रहती हैं वह उत्तम मानी जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सज्जी चरपरी, गरम, तीक्ष्ण, गुल्मनाशक तथा शूल, वात, कफ, कृमि, आध्मान और पेट की वायु को नष्ट करनेवाली होती है।

सज्जीक्षार और जौखार को समान भाग लेकर, पानी में पीस कर पीववाले फोड़े पर लेप करने से उसका मुँह खुल जाता है। सज्जी को महीन पीसकर शहद में मिलाकर लगाने से बिच्छू का विष उतरता है। सफेद दागों पर सज्जी और कली के चूने को पानी के साथ पीसकर लगावें और सूखने पर गाढ़े वस्त्र से उसे जोर से पोंछकर फिर उसकी जगह नया लगावें, ऐसा कई बार करने पर वहाँ एक दाग पैदा हो जाता है। फिर उस पर कुछ दिनों तक मीठा तेल मलने से वह दाग भी मिट जाता है और चमड़ी अपने असली रंग की हो जाती है।

कर्नल चोपरा के मत से सज्जी कोष्ठ वायु को नष्ट करनेवाली, धातुपरिवर्तक और मूत्रल होती है।

सदाफूल (बारहमासी)

नाम—हिंदी—बारहमासी, सदाफूल। मराठी—सदाफूल। पंजाब—रतनजोत। अंग्रेजी–Redperiwinkle (रेडपेरीविन्कल)। लेटिन—Lochnera rosea (लोचनेरा रोजीया) Vincarosea (विन्कारोजीया)।

वर्णन—यह एक बहुत सुन्दर फूलदार पौधा होता है। इसके बिलकुल सफेद रंग के और गहरे गुलाबी रंग के सुन्दर फूल लगते हैं। इस वनस्पति का मूल उत्पत्ति स्थान अमेरिका है। मगर आज कल भारतवर्ष के प्रायः सभी बगीचों में यह पाई जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्तों का रस उड़ीसा में बर्रे और ततइया के विष को नष्ट करने के लिये, दंश स्थान की जगह पर लगाया जाता है।

लारी यूनियन में इसकी मुलायम जड़ें पौष्टिक और अग्निवर्द्धक द्रव्य की तरह दी जाती हैं।

नेटाल, क्वीन्सलैंड और दक्षिणी अफ्रिका के दूसरे हिस्सों में यह वनस्पति मधुप्रमेह अथवा डायबिटीज को दूर करने के लिये उपयोग में ली जाती है। अत्यधिक रजस्राव को रोकने के लिये भी इसके पत्तों का शीत निर्यास काम में लिया जाता है।

सगेरी

नाम—मराठी—सगेरी, हरकिंजल। कनाड़ी—सगेरी। बंबई—अरएडी। लेटिन—Sageraea laurifolia (सगेरिया लौरीफोलिया)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का चमकदार पत्तियोंवाला वृक्ष होता है। इसके पत्ते एक के पश्चात् एक लगते हैं। ये ऊपर की तरह से बहुत चमकदार होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं। यह वनस्पति दक्षिणी कोकण में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्ते तीक्ष्ण, कड़वे और संकोचक होते हैं। कोकण में उनका उपयोग सेंक करने के काम में लिया जाता है।

सज्जीबूटी

नाम—पंजाब—सज्जी बूटी। मराठी—कांजल। लेटिन—Salsola kali (सालसोला काली)।

वर्णन—इस वर्ग की वनस्पतियाँ समुद्र के तटवर्ती खारी जमीनों में तथा सिंध और पंजाब की खारी जमीनों में पैदा होती हैं। अरबी में इस वर्ग की वनस्पतियों को 'उसनान' कहते हैं। इस वर्ग की वनस्पतियों में सज्जी बूटी (Salsola kali), रेवकन्द (Salsola nudiflora), एल्लकुर (Salsola india) और इषलन् (Anabasi erispoda) ये चार वनस्पतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। समुद्र के किनारे पैदा होने की वजह से इन वनस्पतियों में क्षारतत्त्व बहुत अधिक मात्रा में रहता है और इससे यह वनस्पति वर्ग वैद्य लोगों के लिये बहुत उपयोगी होता है। भारतवर्ष में इन वनस्पतियों से बड़े प्रमाण में सज्जीक्षार तैयार किया जाता है। इन वृक्षों को काटकर, सुखाकर जाड़े के दिनों में बड़े-बड़े गड्ढों में भर देते हैं और रात्रि के समय उनमें आग लगा देते हैं। इनसे तैयार हुई राख को अंग्रेजी में 'बरिला' संस्कृत में 'कालिक' और अरबी में 'एलकालि' कहते हैं। इस राख को ठंडे पानी में मिलाकर, फिर उसे नितार कर गर्मी के दिनों में धूप में सुखा लेते हैं। इससे जो क्षार प्राप्त होता है, उसी को सज्जीखार कहते हैं। इस प्रकार से तैयार किये हुए सज्जीक्षार में भिन्न २ प्रकार के और भिन्न २ प्रकार की क्रिया करनेवाले कई प्रकार के क्षार सम्मिलित रहते हैं। 'सज्जीलोटा के नाम से पंजाब में जो सज्जीक्षार है वह सबसे उत्तम होता है। सज्जी बनाने का धन्धा प्रायः पंजाब और सिन्ध में अधिक होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—सज्जी बूटी में ३० प्रतिशत सज्जीक्षार रहता है। इस वनस्पति का पौधा कृमियों को नष्ट करने के काम में लिया जाता है।

सदमण्डी (हिरनखुरी)

नाम—बंबई—सदमंडी। बंगाल—सदीमोडी। कानपुर—हिरनखुरी। मध्यभारत—हिरनखुरी। लेटिन—Emilia sonchifolia (इमिलिया सोन्चिफोलिया)।

वर्णन—यह छोटी जाति की रुएँदार वनस्पति बगीचों में अथवा तैयार की हुई जमीन में पैदा होती है। इसकी ऊँचाई १२ इंच से लेकर १६ इंच तक होती है। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति पसीना लानेवाली होती है। यकृत के रोगों में इसको देने से बहुत लाभ होता है। इसीलिये इसको 'यकृत दोषघ्नी' भी कहते हैं। इसके पत्तों को फांट बनाकर ज्वर में देने से लाभ होता है। रतौंधी और नेत्राभिष्यन्द में इसके पत्तों का रस टपकाने से लाभ होता है।

मलाबार में इसके पौधे का काढ़ा ज्वरनाशक माना जाता है। आँतों की शिकायतों में इस काढ़े को मिश्री मिलाकर देते हैं।

त्रावणकोर में इसके पत्तों का ताजा रस रतौंधी को दूर करने के लिये आँखों में बून्द बून्द करके टपकाया जाता है। आँखों के दुखने में भी यह गुलाबजल की तरह ठण्डक पहुंचाने के लिये टपकाया जाता है।

इण्डोचायना में इसके पत्तों का काढ़ा पार्यायिक ज्वरों को दूर करनेवाला माना जाता है।

लारि यूनियन में इसका पौधा एक संकोचक, दमे को दूर करनेवाला और घाव को अच्छा करनेवाला माना जाता है।

सन

नाम—संस्कृत—शण, माल्यपुष्प, वामक, कटुतिक्त, दीर्घपल्लव, घनाहरी इत्यादि। हिंदी—सन, शानहुली, पटसन, घागही इत्यादि। बंगला—सन, शान। बंबई—सनताग। मराठी—सण, घागरू, ताग। गुजराती—शण। अंग्रेजी—Indian Hemp (इंडियन हेम्प)। लेटिन—Crotolaria juncea (क्रोटोलेरिया जुन्सीया)।

वर्णन—सन की खेती भारतवर्ष में प्रायः सब ओर होती है। इसका पौधा एक से चार फुट तक ऊँचा घास की तरह होता है। इसके पत्ते लम्बे अधिक और चौड़े कम होते हैं। इनकी लम्बाई १॥ इञ्च से ४ इञ्च तक होती है। इसकी शाखाओं के सिरे पर पीले रंग के पतंग की तरह फूल आते हैं। इसकी फली १ से लेकर १॥ इञ्च तक लम्बी, लम्बगोल और नोकदार होती है। हर एक फली में आठ, दस बीज रहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सन के पत्ते गर्म, तीक्ष्ण, खट्टे, कडुवे, कसैले, वमन लाने वाले, मृदुविरेचक, गर्भघातक, पीड़ा को दूर करनेवाले और वात तथा कफ को दूर करनेवाले होते हैं। इसके फूल श्वेत प्रदर और रक्तरोगों में लाभदायक होते हैं। इसके बीज ठंडे, ग्राही पचने में भारी, ऋतुस्राव नियामक और चर्मरोगों में लाभदायक होते हैं।

चरक संहिता में सन की जड़ को वमन लाने वाली कहा गया है। इसके पत्तों का रस तेल में मिलाकर त्वचा के रोगों पर लगाने के उपयोग में लिया जाता है। इसके फूलों को दूध में पीस कर नारू इत्यादि दुष्ट व्रणों की सूजन पर बाँधते हैं। इसके बीज रुधिर को साफ करने के लिये दिये जाते हैं।

डा० देसाई के मतानुसार सन के पत्ते शीतल, स्निग्ध और चर्मरोगनाशक होते हैं। इसके बीज पाचक, मृदुविरेचक और आर्तवजनन होते हैं। शरीर में गर्मी बढ़ जाने से त्वचा के ऊपर जो चर्मरोग हो जाते हैं उनमें सन के पत्तों की फाँट बना कर देने से रक्त की गर्मी शांत होकर रक्त साफ हो जाता है। इसके पत्तों का लेप भी त्वचा के ऊपर किया जाता है। खतमी के पत्तों के बदले इनके पत्तों को देने से काम चल जाता है। शरीर में बढ़ी हुई चर्बी को कम करने और जीवन विनिमय क्रिया को सुधारने के लिये इसके बीजों का चूर्ण भोजन में मिलाकर दिया जाता है।

स्थूल शरीर वाली स्त्रियों के अनार्त्तव रोग में भी इसके बीजों का चूर्ण उपयोगी होता है।

उपयोग—नारू—सन के बीज और गेहूँ के आटे को समान भाग लेकर, समान भाग घी में पकाकर गुड़ के साथ तीन दिन तक खिलाने से नारू मिटता है।

हिचकी—सन का तागा, उड़द और हल्दी के चूर्ण को चिलम में रख कर उनका धूम्रपान करने से हिचकी मिटती है।

कांच निकलना—सन के बीजों को पीसकर भुरभुराने से कांच निकलना बन्द हो जाता है।

श्वेतप्रदर—सन के फूलों का सेवन करने से श्वेतप्रदर और रक्तविकार मिटता है।

रुधिर का जमाव—जमे हुए रुधिर पर इसके पत्तों का लेप करने से रुधिर का जमाव बिखर जाता है।

मात्रा—इसके बीजों की मात्रा तीन माशे से छः माशे तक है।

सनपर्णी

नाम—संस्कृत—सशपर्णी। कच्छी—झीपटो बेल। गुजराती—चीपकणो बेलो। तैलगू—नयाकुपोन्ना, लेटिन—Pseudarthria viseda (स्यूडेरथरिया विसिडा)।

वर्णन—यह एक झाड़ीनुमा वनस्पति होती है। इसके पत्तों पर सफेद रंग का रुँआ होता है। इसके फूल बहुत छोटे, हलके गुलाबी या बैंगनी होते हैं। इसके बीज कुछ भूरापन लिये हुए काले रंग के होते हैं। यह वनस्पति पश्चिमी प्रायद्वीप में पैदा होती है। यह सारा पौधा इतना चिकना होता है कि इसका कोई भी हिस्सा कपड़े में लग जाने से वह चिपक जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसका पौधा पित्तविकार, संधिवात, ज्वर, हृदयरोग, बवासीर और कृमिरोगों में उपयोगी समझा जाता है। इसकी जड़ें जहरीले जानवरों के डंक पर लगायी जाती हैं।

सफेदा

नाम—पंजाब—सफेदा, बेद, चनुनी, फ्रांस, जंगली फ्रास्ट, रिक्कन, सन्नान। क्वेटा—स्पेदार। पश्चिमी हिमालय—चित्ता बागुन, सफेदा। काश्मीर—फ्रांस। अंग्रेजी—White poplar (ह्वाइट पोपलार)। लेटिन—Populas alba (पापुलस एल्बा)।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल सफेदी लिये हुए भूरे रंग की होती है। नवीन डालियों की छाल मुलायम और पुरानी डालियों की छाल बहुत ऊबड़-खाबड़ होती है। इसके पत्ते पाँच से लेकर दस सेण्टीमीटर तक लम्बे होते हैं। इसका फल ६ मिलिमीटर लम्बा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी छाल पौष्टिक होती है। इसका उपयोग रक्त को शुद्ध करने और चर्मरोगों को दूर करने के लिये किया जाता है। मूत्रकृच्छ्र रोग में भी यह उपयोगी मानी जाती है।

सफेद बबूल

नाम—संस्कृत—श्वेत बर्बुर, विप्रलोभी, किङ्किरीत, पीतभद्र। हिंदी—सफेद बबूल, सफेद कीकर, एरिञ्ज, झिन्द। गुजराती—हरी बावल, पीला बावल। कच्छी—हरमुं बाहर। बङ्गाल—सफेद बबूल। मराठी—देव बाबूल, पांढरी बबूल, निम्बर। पञ्जाब—रेरु, सफेद कीकर। राजपूताना—एरिञ्ज। अङ्गरेजी—White Babul (ह्वाइट बबूल)। लेटिन—Acacia leucopholea (एकेसिया ल्यूकोफोलिया)।

वर्णन—यह बबूल की एक सफेद जाति होती है। इसके वृक्ष मध्मम कद के होते हैं। इस वृक्ष की छोटी-छोटी अनेक शाखाएँ लगती हैं। कई स्थानों पर इसकी शाखओं में गठानें रहती हैं, जिन्हें हेमर गाँठ कहते हैं। इसके पत्ते बबूल के पत्तों की तरह और काँटे बबूल के काँटों से कुछ छोटे होते हैं। इसकी डालियों के शिरों पर करीब आधे हाथ से एक हाथ लम्बे 'फूलों के तुर्रे निकलते हैं। इन तुर्रों पर भी छोटी-छोटी शाखाएँ होती हैं और उन शाखाओं पर बहुत सुन्दर पीले रंग के सुगन्धित फूल आते हैं। इसकी फलियाँ चपटी, संकड़ी और चार से छः इंच तक लम्बी होती हैं। हरएक फली में आठ से लेकर बीस तक बीज होते हैं।

यह वनस्पति पञ्जाब, राजपूताना, मध्य भारत, कर्नाटक, गुजरात और काठियावाड़ में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से इसकी छाल कड़वी, कसैली, शीतल, कृमिनाशक, ज्वर को दूर करनेवाली, सूजन को बिखेरने वाली और खाँसी, कुष्ठ, प्यास, वमन, दाह, रुधिरविकार और पित्तविकार को दूर करनेवाली होती है।

इसकी छाल संकोचक होती है। इसकी ताजी जड़ें चार तोले की मात्रा में ठंडे पानी में पीस छान कर, पागल कुत्ते के विष को दूर करने के लिये सात दिन तक पिलाई जाती हैं। जब तक विष का वेग प्रकट न हुआ हो तब तक उस वेगको रोकने के लिये इनका उपयोग होता है, वेग प्रकट होने के पश्चात् इसको देने से कोई लाभ नहीं होता।

इसकी छाल में बबूल की छाल के समान ही रासायनिक सब तत्त्व रहते हैं मगर बबूल की छाल से इसकी छाल में इनकी तादाद कुछ कम होती है।

सफेद बहमन

नाम—हिन्दी—सफेद बहमन। लेटिन—Centurea behmen (सेन्चुरिया बेहमिन)।

वर्णन—यह वनस्पति भारतवर्ष में पैदा नहीं होती। ईरान, अफगानिस्तान की तरफ से इसकी जड़ें भारतवर्ष में बिकने के लिये आती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति कामोद्दीपक होती है। पीलिया रोग और पथरी के रोग में इसका उपयोग किया जाता है। इसमें बेहमिन नामक एक प्रकार का रवेदार उपक्षार पाया जाता है।

सफेद सेमर

नाम—संस्कृत—श्वेत शाल्मलि, कूट शाल्मलि। हिन्दी—सफेद सेमर। बङ्गला—श्वेत शिमूल। बम्बई—सफेद सवारा। मराठी—पाँढरी साँवर। लेटिन—Eriodendron anfractuosum) हरिग्राडेण्ड्रोन एन्फ्रेक्ट-यूग्रोभ्रम)।

वर्णन—यह सेमर की एक सफेद जाति होती है। इसका वृक्ष सीधे पिण्ड का और ऊँचा होता है। जब यह छोटा होता है तब इसके कांटे लगे रहते हैं। इसके फूल कुछ मैलापन लिये हुए सफेद होते हैं। ये लाल फूल-वाले सेमर के फूलों से बहुत छोटे होते हैं। इसका फल सेमर के फल से कुछ बड़ा, धुँधले रंग का और गोल होता है। इस वृक्ष के ऊपर धुँधले लाल रंग का गोन्द लगता है। इसके एक वर्ष से लेकर दो वर्ष तक के पौधे की जड़ सेमर मूसली के नाम से बिकती है। इतने ही बड़े पौधे की जड़ औषधि के काम में आती है। अधिक बड़े पौधे की जड़ें बेकाम हो जाती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके छोटे पौधे की जड़ें मूत्रल, बलवर्द्धक और वाजीकरण होती हैं। इनका गोन्द ग्राही, मूत्रसंकोचक और बलवर्द्धक होता है। इसके कोमल पत्ते स्निग्ध और ग्राही होते हैं। सफेद सेमर की जड़ें अथवा सेमर मूसली की पेज बनाकर अति मैथुन व अधिक वीर्यपात की वजह से होनेवाली थकावट को दूर करने के लिए दी जाती है। सूजन तथा जलोदर में इसकी कोमल जड़ों को देने से पेशाब की मात्रा बढ़ जाती है। सुजाक में इसके कोमल पत्तों को पीसकर देते हैं। छोटे बच्चे रात को नींद में पेशाब करने लगते हैं उसको बन्द करने के लिए सफेद सेमर का गोंद दिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मत से सफेद सेमर का गोंद बलवर्द्धक, धातु परिवर्तक और संकोचक होता है। इसकी जड़ें वमनकारक और बिच्छू के विष में लाभदायक होती हैं और इसके कच्चे फल शान्तिदायक होते हैं।

उपयोग—मूत्रकृच्छ्र-इसके एक तोले कोमल पत्तों को जल के साथ पीसकर उसको पीकर ऊपर से मक्खन निकाला हुआ दूध तीन चार दिन तक पीने से नवीन मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

जलोदर—इसकी कोमल जड़ों का क्वाथ पिलाने से मूत्रवृद्धि होकर जलोदर और सर्वाङ्ग जलमय शोथ मिटता है।

पुरानी अतिसार—इसके छोटे वृक्ष की जड़ का क्वाथ पिलाने से पुराना अतिसार और आमातिसार मिटता है।

सन्निपात

नाम—संस्कृत—नेपाल निम्ब। हिन्दी—सन्निपात। बंगाल—नेपालनिम। सिंध—सोनपात। लेटिन—Schweinfurthi sphoerocarpa (स्विनफरथि स्फोरोकार्पा)।

वर्णन—यह क्षुद्र जाति की वनस्पति सिंध, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और नेपाल में पैदा होती है। इसके पत्ते एक इञ्च लम्बे, चमड़े के समान, लम्बगोल और रुएँदार होते हैं। इसके पत्तों के मध्य भाग की अपेक्षा उसके किनारे फीके रंग के होते हैं। इसकी छाल कत्थई रंग की और फल गोल होते हैं। इसका स्वाद कुछ कड़वा और चाय के समान होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से नेपाल नीम किंचिद् गरम, योगवाही, हलका, कडुवा तथा पित्त, कफ, सूजन, रुधिररोग और ज्वर को नष्ट करता है। सन्निपात, ज्वर और निद्रा को यह दूर करता है। इसके शेष गुण चिरायते के समान होते हैं।

यह वनस्पति ज्वर के अन्दर त्रिदोष या सन्निपात के चिह्न दिखलाई देने पर उपयोग में ली जाती है। यह पौष्टिक, मूत्रल, ज्वरनाशक और मोती ज्वर (Typhoid) के अन्दर लाभदायक होती है।

स्टॉक्स के मतानुसार इसके फल और डालियों तथा पत्तों के चूर्ण को मिलाकर एक औषधि तैयार की जाती है। जो टाइफाइड ज्वर के लक्षण वाले रोगियों को खिलाने के उपयोग में ली जाती है। इसके चूर्ण को सुंघाने से नाक से गिरने वाला खून बन्द हो जाता है।

001703

डा० देसाई के मतानुसार सन्निपात पसीना लानेवाला, ज्वरनाशक, मूत्रल और उत्तेजक होता है। ज्वर के अन्दर सन्निपात के लक्षण प्रकट होने पर इस वनस्पति की फाण्ट बनाकर देते हैं।

डिजीटेलिस के अन्दर जो रासायनिक तत्त्व पाये जाते हैं उन्हीं से मिलते-जुलते रासायनिक तत्त्व सन्निपात में भी पाये जाते हैं। इसमें १८। प्रतिशत खनिज द्रव्य रहते हैं।

सनाय

नाम—संस्कृत—स्वर्णपत्री, कल्याणी, स्वर्णमुखी। हिन्दी—सनाय। गुजराती—मीठी आंवल। मराठी—सोनामुखी। बंगला--सोनामुखी। अरबी—सना। फारसी—सना। अङ्गरेजी—Senna। लेटिन—Cassia elongata (केसिया इलोन्गेटा)।

वर्णन—सनाय के वृक्ष सिन्ध, गुजरात, पंजाब, दक्षिण भारत और उत्तरप्रदेश में बोये जाते हैं। इसके पत्तों का आकार इमली के पत्तों के समान मगर उनसे लम्बाई-चौड़ाई में बड़ा होता है। इसकी फलियाँ लम्बी, थोड़ी चौड़ी, कुछ मुड़ी हुई और दोनों ओर गोल किनारों की होती हैं। इसके पत्ते साबित, साफ, कुछ चमकदार, पीलापन लिये हुए और सुगन्धित होते हैं।

सनाय दो प्रकार की होती है। एक अरबी अलेग्झेण्ड्रियन और दूसरी तिनवेल्ली (देशी)। अरबी सनाय के पत्ते करीब डेढ़ इंच लम्बे और दोनों तरफ से नोकदार होते हैं। देशी सनाय के पत्ते लंबगोल और भोथरे होते हैं। देशी सनाय में बहुत सी दूसरी जाति के झाड़ों के पत्ते भी मिलाए रहते हैं।

देशी सनाय से अरबी सनाय विशेष प्रभावशाली और गुणकारी होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सनाय कब्जियत, मंदाग्नि, यकृत, उदररोग, प्लीहोदर, अजीर्ण, विषमज्वर, कामला और पांडुरोग को नाश करती है।

सनाय एक प्रधान विरेचक वस्तु होता है। इसको छोटी मात्रा में लेने से पाचनक्रिया सुधर कर दस्त साफ होता है। बड़ी मात्रा में इसको लेने से मरोड़ा चलकर, पानी के समान दस्त होते हैं। इसकी प्रधान क्रिया छोटी आंत पर होती है। यकृत को यह थोड़ी उत्तेजना देती है। कुपचन और कब्जियत के रोगों में जब शरीर के अन्दर मल जम जाता है, सनाय को देने से बहुत लाभ होता है। बच्चों के लिए भी इसका जुलाब एक उत्तम वस्तु है। पेट में मरोड़ा न होने देने के लिए इसमें सोंठ, सौंफ, इत्यादि सुगन्धित द्रव्य मिलाना चाहिए और इसके बदजायके को दूर करने के लिये कालीदाख, मुलहठी इत्यादि चीजों का मिश्रण करना चाहिये।

पित्तज्वर में सनाय अथवा अमलतास का जुलाब देना शास्त्र सम्मत है। जुलाब को देने से शरीर में संचित पित्त बाहर निकल जाता है और उस पित्त के साथ में ज्वर का विष भी बाहर निकल जाता है। दूषित पित्त निकल जाने के पश्चात् नवीन और शुद्ध पित्त उत्पन्न होता है और तब ज्वरनाशक ओषधियाँ शरीर में क्रिया करने योग्य हो जाती हैं। दूषित पित्त निकल जाने से शरीर का दाह और मस्तकशूल इत्यादि उपद्रव कम हो जाते हैं।

मात्रा—सनाय के चूर्ण की मात्रा १।। माशे से २ माशे तक है।

उपयोग—**विरेचन**—सनाय के पत्ते २।। तोला, जौकुट सोंठ ३।।। माशे, जौकुट लौंग ३।। माशे इनको २५ तोले खौलते हुए पानी में एक घण्टे तक भिगोकर मलकर छान लेना चाहिए। इस निर्यास में से ५ तोले निर्यास पिलाने से निरुपद्रव और उत्तम विरेचन होता है। बच्चों को इसकी चौथाई मात्रा देनी चाहिए।

कब्जियत—सनाय को कच्ची इमली के रस के साथ लेने से कब्जियत मिटती है।

बादी—इसको शक्कर और सोंठ के साथ लेने से बादी की पीड़ा मिटती है।

दाह—सनाय को अनार के रस के साथ लेने से दाह मिटती है।

भूख की कमी—इसको बिजौरे के रस और शक्कर के साथ लेने से भूख बढ़ती है।

वायुगोला—बच के साथ सनाय को लेने से वायुगोला मिटती है।

चित्तभ्रम—सनाय को निर्गुण्डी की साथ लेने से चित्तभ्रम मिटता है।

ऊध्वश्वास—जंगली आँवलों के रस के साथ सनाय को लेने से ऊर्ध्वश्वास मिटता है।

मूढगर्भ—इसको पीपल की छाल के साथ लेने से मढगर्भ या छोड़ गिर जाता है।

जलोदर—सनाय को आँवलों के रस के साथ लेने से कुष्ठ और जलोदर में लाभ होता है।

छाती की रुकावट—इसको अनारदाने के रस के साथ लेने से छाती में आया हुआ डूंजा मिटता है।

विष विकार—सनाय को काली बकरी के दही के साथ लेने से विषविकार मिटता है।

पेट की सूजन—सनाय को बकरी के मूत्र के साथ लेने से पेट की शोथ उतरती है।

बालों की सफेदी—इसको जल भाँगरे के रस के साथ लेने से बाल काले होते हैं।

शीतांग—इसको पीपल अथवा इमली के पत्तों के रस के साथ लेने से शीतांग मिटता है।

मस्तक की वायु पीड़ा—सनायको ऊँटनी के दूधके साथ लेने से मस्तककी वायुपीड़ा मिटता है।

पित्तविकार—इसको शक्कर के साथ लेने से पित्तविकार मिटता है।

बनावटें—पंच सकार चूर्ण—सनाय, सौंठ, सोंफ, सेंधा नमक और काली हरड़ इन पाँचों को समान भाग चूर्ण कर लेना चाहिये। यह आयुर्वेद का सुप्रसिद्ध पंच सकार चूर्ण है। इसको तीन माशे से लेकर छः माशे तक की मात्रा में गरम जल के साथ लेने से बिलकुल निरुपद्रव और उत्तम विरेचन हो जाता है तथा पेट में संचित मल और दूषित पित्त निकल जाता है। विरेचन के लिये यह बहुत उत्तम योग है।

समुद्रफल

नाम—संस्कृत—समुद्रफल, अब्धिफल, अम्बुज, हिज्जल, निचुल, इत्यादि। हिंदी—समुद्रफल, हिज्जल, पनियारी, निओरा, जुअर इत्यादि। बंगाल—हिज्जल, कुमिया, समुन्दर। गुजराती—समुन्दर फल। कोकण—निवार। मराठी—समुद्र फल, दाते फल, इंगली, नेवार, सठफल, तिवार। उर्दू—समुन्दर फल। तामील—सेंगाडम्बु, समुद्र पुल्लानि। तैलगू—कनपुचेट्टु। इंग्लिश—Indian Oak (इंडियन ओक)। लेटिन—Barringtonia acutangula (बेरिंग टोनिया एक्युटंगुला)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है। इसके पत्ते लम्बगोल और बदाम के पत्तों से कुछ-कुछ मिलते-जुलते होते हैं। इसके फूल कलंगीनुमा लाल रंग के होते हैं। इसके फल में चार कोने रहते हैं। इसके फल काबुली हरड के समान भूरे रंग के और खड़ी धारियों वाले होते हैं। इनको पानी में डालने से ये मुलायम हो जाते हैं। इनकी छाल पतली और बीज मोटे होते हैं। इसके बीज छोटे जायफल के समान होते हैं। इसके फलों का स्वाद कडुआ और वामक होता है। यह वनस्पति विशेष कर कोकण और बंगाल में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से समुद्र फल चरपरा, गरम, वातविनाशक, भूतबाधा को दूर करने वाली और त्रिदोष, कफ रोग, भ्रान्ति तथा दावानल दोष को हरने वाला होता है।

निघंटु रत्नाकर के मत से समुद्रफल गरम, त्रिदोषनाशक तथा वात, भूतबाधा, कफ, भ्रान्ति, शिरोरोग और दावानल दोषों को दूर करने वाला होता है। इसको जल में घिस कर पीने से कृमि रोग दूर होते हैं।

इसके पत्तों का रस आमातिसार में दिया जाता है। इसका फल कडुआ, कसैला, आँतों को संकुचित करने वाला, कृमिनाशक, वातकारक, पित्त को दूर करनेवाला तथा रक्त रोग, खाँसी, आँख के व्रण, मस्तकशूल और त्रिदोष को दूर करनेवाला होता है।

यूनानी मत से इसका फल कडुआ, संकोचक, दुग्धवर्द्धक और पुरातन प्रमेह तथा कॉलिक उदरशूल, उपदंश, कमर का दर्द और जुकाम को दूर करने वाला होता है।

समुद्र फल की जड़ कड़वी होती है और ऐसा खयाल किया जाता है कि इसमें सिनकोना की छाल में पाये जाने वाले रासायनिक तत्वों के समान ही रासायनिक तत्त्व पाए जाते हैं। यह भी समझा जाता है कि इसकी जड़ मृदुविरेचक और शीतल होती है। इसके बीज बहुत गरम और खुश्क होते हैं। ये एक सुगन्धित द्रव्य की तरह कॉलिक शूल, प्रसव वेदना और नेत्र शुक्ल रोग में दिये जाते हैं।

बंबई में इसकी जड़ गरम, उत्तेजक और वामक मानी जाती है। उत्तरी भारत में जिन रोगों में मैनफल का व्यवहार किया जाता है उन्हीं रोगों पर दक्षिण भारत में समुद्रफल काम में लिया जाता है। मैनफल प्रौढ़ मनुष्यों के लिये और समुद्र फल बालकों के लिये विशेष हितकर माना जाता है। दोनों ही वस्तुएँ वामक और विरेचक होती हैं। बच्चों के कफरोगों में समुद्र फल विशेष उपयोगी होता है। लेकिन कभी कभी जब उलटी नहीं होती है, तब यह कुछ त्रासदायक हो जाता है। ऐसी स्थिति में थोड़ा सा नमक गरम पानी में मिलाकर देने से वमन होकर कफ निकल जाता है। अगर इससे बच्चों को दस्त-उलटी अधिक होने लगे तो चावलों की पेज में घी मिलाकर देने से शांति हो जाती है। बच्चों की छाती में कफ जमा होने से अगर उनकी पसली में दर्द हो और पेट फूल रहा हो तो ऐसे समय में समुद्र फल को पीसकर पेट और छाती पर लेप करना चाहिये। दमे के अंदर समुद्र फल ६ माशा और सफेद अपराजिता की जड़ ६ माशा दूध में औटा कर दी जाती है। इससे दस्त और उल्टी होकर दमा शान्त हो जाता है।

कम्बोडिया में इसकी छाल अतिसार और सुजाक में एक संकोचक द्रव्य की तरह दी जाती है। मलेरिया ज्वर में इसे एक ज्वरनाशक द्रव्य की भाँति दिया जाता है। जहरीले जानवरों के डंक पर इसका लेप किया जाता है। गर्भाशय से अनियमित रक्तस्राव (Metrorshayia) होने की बीमारी में इसकी लकड़ी का उपयोग किया जाता है। इसका फल मसूड़ों की सूजन में एक संकोचक और पौष्टिक पदार्थ की तरह दिया जाता है।

समुद्र फल के अन्दर एक प्रकार का साबुन की तरह फेनयुक्त द्रव्य रहता हैं। इसके चूर्ण को पानी में डाल कर हिलाने से फेन पैदा हो जाता है और वह बहुत देर तक टिकता है।

मात्रा—समुद्रफल की मात्रा एक से लेकर दो रत्ती तक होती है।

डायमाक का कथन है कि समुद्रफल बालकों को होनेवाले अनेक प्रकार के रोगों पर बहुत लाभ पहुँचाता है इसीसे इसको 'नर्सफ्रूट' भी कहते हैं। बच्चों के लिये निरंतर उपयोग में आनेवाली घरेलू औषधियों में यह भी एक है। जब बालक को सरदी लग जाती है और कफ की वजह से तकलीफ होने लगती है तब समुद्र फल को घिसकर उसको छाती के मध्य में तथा गले के ऊपर लगाते हैं। अगर कफ बहुत अधिक जम गया हो और उसकी वजह से बालक को श्वास लेने में बहुत कष्ट हो रहा हो तो दो तीन रत्ती समुद्रफल को पानी में पीस कर अदरक के रस के साथ या वैसे ही पिला देने से वमन होकर सब कफ बाहर निकल जाता है और उसकी श्वासोच्छ्वास की पीड़ा दूर हो जाती है।

डा० आर० एन० खोरी का कथन है कि अगर बालक के पेट में शूल चल रही हो और उसकी आँतों में वायु भरकर उसे आफरा हो गया हो अथवा छाती में कफ का जमाव हो गया हो तो समुद्रफल को पानी के साथ घिसकर पेट अथवा छाती के ऊपर जहाँ तकलीफ हो लेप करना चाहिये और दो से चार रत्ती की मात्रा में इसको अदरक के रस में मिलाकर पिलाना चाहिये।

बंगसेन लिखते हैं कि जिनकी आँखों में से रात-दिन पानी झरता हो उनकी आँखों में समुद्रफल को चावलों के पानी के साथ पीसकर आँजने से पानी का गिरना बन्द हो जाता है। इस कार्य के लिये यह एक महौषधि है।

उपयोग—चमड़े का दाग—समुद्र फल को मालकांगनी के साथ पीसकर लेप करने से चमड़ी के दाग मिटकर साफ हो जाते हैं।

बद्धकोष्ठ—समुद्रफल को मुनक्का के साथ लेने से बद्धकोष्ठ मिटता है।

उदरशूल—इसके फल की फक्की लेने से अजीर्ण तथा आमाजीर्ण से पैदा हुई पेट की शूल मिटती है।

नेत्र पीड़ा—इसके बीजों को पीस करके लेप करने से नेत्र पीड़ा मिटती है।

सर्दी का जमाव—बच्चों की छाती में जो सर्दी का जमाव हो जाता है उसको वमन के द्वारा निकालने के लिये इसके थोड़े से बीज पीस कर पिलाना चाहिये।

नेत्र रोग—इसके फल की मींगी को बकरी के मूत्र में घिस कर आँख में आँजने से नेत्र रोग मिटते हैं।

बहिरापन—समुद्र फल के चूर्ण को गंगेरन के रस में मिला कर कान में टपकाने से बहिरापन मिटता है।

श्वेत कुष्ठ—समुद्र फल को भांगरे के रस के साथ कई दिनों तक सेवन करने से श्वेत कुष्ठ मिटता है।

आँख की फूली—समुद्र फल को बकरी के मूत्र में घिस कर आंजने से आँख की फूली कट जाती है।

आधाशीशी—समुद्र फल को बकरी के मूत्र में पीस कर सूँघने से आधाशीशी मिटती है।

इकतरा—समुद्रफल को अजवायन के साथ खाने से इकतरा ज्वर और उदरशूल मिटता है।

रक्तपित्त—समुद्रफल को खुरासानी अजवायन के साथ देने से रक्तपित्त में लाभ होता है।

मूर्च्छा—समुद्रफल को बकरी के मूत्र में पीस कर सुंघाने से मूर्च्छा मिटती हैं।

मासिक धर्म की खराबी—समुद्रफल को गुड़ के साथ तीन दिन तक खाने से मासिकधर्म शुद्ध होने लगता है।

बालों की सफेदी—समुद्रफल को पानी में पीस कर बालों पर लेप करने से ८४ दिन में बाल काले हो जाते हैं।

उन्माद—समुद्रफल और आक की जड़ को मिला कर सुँघाने से उन्माद में लाभ होता है।

कामेन्द्रिय की कमजोरी—समुद्रफल को तुम्बी के गूदा के रस के साथ पीसकर लिंग पर लेप करने से लिंग मोटा हो जाता है और कामशक्ति बढ़ती है।

दमा—इसको शहद के साथ लेने से दमे में लाभ होता है।

पसीना—इसको घी के साथ मिलाकर मालिश करने से पसीना आना बन्द हो जाता है।

पित्त विकार—समुद्रफल को हल्दी के साथ खाने से पित्तविकार मिटते हैं।

काँख बलाई—(बगल का फोड़ा)—समुद्रफल को हिंगोट के रस के साथ पीसकर लगाने से काँख बलाई या बगल में होनेवाली विद्रधि मिटती है।

तलवार का घाव—इसको शहद में मिलाकर लगाने से तलवार का घाव मिट जाता है।

कामला—समुद्रफल को जलभांगरे के रस के साथ लेने से कामला रोग मिटता है।

नाभि का टलना—इसको दही के साथ लेने से टली हुई नाभि मुकाम पर आ जाती है।

बिच्छू का विष—इसको पानी में पीस कर डंक पर लगाने से बिच्छू का विष उतरता है।

साँप का विष—इसको महीन पीसकर दोनों आँखों में अञ्जन करने से साँप के विष में लाभ होता है।

बन्ध्यात्व—समुद्रफल को कुछ दिनों तक दही के साथ खिलाने से बन्ध्या स्त्री गर्भधारण के योग्य हो जाती है।

दमा—एक भाग समुद्रफल और दो भाग पीपल को जलाकर एक माशे की मात्रा में पान में रखकर खाने से दमे में बहुत लाभ होता है।

रतौन्धी—समुद्रफल को बकरी के मूत्र के साथ पीसकर आँख में आँजने से रतौंधी मिटती है।

पेट के कीड़े—इसको गुड़ और शक्कर के साथ देने से पेट के कीड़े मर जाते हैं।

नपुंसकता—इसको अगस्त्य के रस के साथ देने से नपुंसकता मिटती है।

आवेश रोग—समुद्रफल को गधे के मूत्र के साथ पीसकर अञ्जन करने से भूत प्रेत का आवेश मिटता है।

कमर की पीड़ा—इसको आक की जड़ के साथ पीसकर लेप करने से कमर की पीड़ा मिटती है।

सन्निपात—आक की जड़ और समुद्रफल को घिसकर नस्य देने से सन्निपात में लाभ होता है।

रक्त प्रदर—इसको भैंस के गोबर के रस के साथ देने से रक्त प्रदर मिटता है।

वायुगोला—समुद्रफल को भांगरे के रस के साथ देने से वायुगोला मिटता है।

बवासीर—इसको मिरच और काले धतूरे के साथ देने से बवासीर में लाभ होता है।

कंठमाला—समुद्रफल को गाय के घी के साथ मिलाकर लेप करने से कंठमाला मिटती है।

दाद—समुद्रफल को हरड़ के साथ पीसकर लगाने से दाद मिटता है।

बहिरापन—इसको शहद में मिलाकर कान में डालने से कान का बहिरापन मिटता है।

आँख का फूल—समुद्रफल को निर्गुण्डी के रस में घिस कर अञ्जन करने से आँख की फूली कटती है।

आँख का जाला—चार माशे दाख, घोड़े के नख और समुद्रफल को खरल करके अञ्जन करने से आँख का पटल और जाला दूर होता है।

बन्ध्यात्व—पलास की जड़ की छाल चार माशे, नागरमोथा चार माशे, गजपीपल छः माशे और समुद्रफल चार माशे इन सबको पीसकर गाय के दूध के साथ तीन दिन लेने से बन्ध्यापन मिटता है।

समुद्रफल २ (इज्जुल)

नाम—संस्कृत—निया। हिन्दी—इज्जुल, समुद्रफल। बंगला—कुण्डा, समुद्रफल। कोंकण—निवार। मराठी—निवार। तामील—समुत्तर पालम। तेलगू—समुद्र पांडु। अंग्रेजी—Indian Oak (इंडियन ओक)। लेटिन—Barringtonia racemosa (बेरिंगटोनियाँ रेसीमोसा)।

वर्णन—यह समुद्रफल की एक दूसरी जाति होती है जो भारतवर्ष के पूर्वीय और पश्चिमी समुद्र तटपर पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़में पाए जानेवाले औषधि तत्त्व सिंकोना की छाल में पाए जानेवाले तत्त्वों से मिलते-जुलते होते हैं। इसका फल खाँसी, दमा और अतिसार में लाभदायक होता है। इसके बीज काँलिक शूल और नेत्ररोग में लाभदायक माने जाते हैं। इसके फल के गूदा को दूध के साथ पीलिया और दूसरे पित्त रोगों में दिया जाता है। इसके बीज सुगन्धित द्रव्य की तरह स्त्रियों को प्रसव के समय दिये जाते हैं। इसके चूर्ण को सुंघनी की तरह भी उपयोग किया जाता है। इस चूर्ण को कुछ दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर लेप बनाकर चर्मरोगों पर लगाने के काम में लेते हैं।

इंडोचायना में इसकी जड़ें कटु पौष्टिक और ज्वरनाशक पदार्थ की तरह उपयोग में ली जाती हैं। इसके फल खाँसी और दमा में लाभदायक माने जाते हैं। इसके फल के गूदा को कुचल कर उसे आटे और तेल में मिलाकर अतिसार में खिलाते हैं और इसके सुगन्धित बीज कालिक शूल और नेत्र रोगों में काम में लिये जाते हैं।

समुद्रशोष

नाम—संस्कृत-वृद्धदारुक, आवेगी, अजांत्री, दीर्घवल्लरी, समुद्रपत्र, समुद्रशोष, रिछगंधा इत्यादि। हिंदी-समुद्र का पात, समुद्रशोष, विधायरा। बङ्गाल—बिचतारक, गुगुली। बम्बई—गुगुली, समुन्दर शोष। गुजराती—समुद्र शोष, वरधारा। तेलगू—चन्द्रपीडा। उर्दू—समुन्दर सोख। अंगरेजी—Elephant Creeper, (एलीफण्ट क्रीपर)। लेटिन—Argyreia speciossa (अर्गेरिया स्पेसिओसा)।

वर्णन—यह एक बहुत बड़ी जाति की बेल होती है। इसके पत्ते गोल, बालिश्त भर लम्बे, ऊपर से मुलायम और सुहावने तथा नीचे से सफेद रंग के होते हैं। इसका तना काष्ठपूर्ण, ऊबड़-खाबड़ और चीठा होता है। इसके फूल बैंगनी, मोटे और घण्टाकृति होते हैं। इसके पत्ते और नवीन लता की जड़ें औषधि के काम में आती हैं। वैद्यों का एक बड़ा समुदाय समुद्रशोष की जड़ों को ही विधायरा मानता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से समुद्रशोष की जड़ें कड़वी, कामोद्दीपक, मूत्रल और प्रमेह, सुजाक, पथरी और पुराने व्रणों को अच्छी करनेवाली होती हैं।

हिन्दू चिकित्साशास्त्र में इसकी जड़ें धातुपरिवर्त्तक और पौष्टिक मानी जाती हैं। संधिवात और मस्तिष्क सम्बन्धी बीमारियों में इनका विशेष उपयोग किया जाता है।

इसके पत्ते फोड़ों को पकाकर सुखानेवाले होते है और इनका उपयोग एक स्निग्धताकारक पुलटिस की तरह जखमों पर बाँधने के लिए किया जाता है। दूध के साथ इसकी जड़ के चूर्ण की फक्की देने से घुटने की झिल्ली की सूजन और पीड़ा मिट जाती है। इसको सिरके में मिलाकर शरीर पर मर्दन करने से शरीर का बेडौल मुटापा मिट जाता है।

इसके पत्ते त्वचा पर लगाने से उत्तेजक और चर्मदाहक पदार्थ का काम करते हैं।

उपयोग—गाँठ और फोड़े—गाँठ और फोड़ा को पकाने के लिये इसके पत्तों को रुएँ की ओर से बाँधना चाहिये। अगर फोड़ों को पकाना नहीं हो और बिखेरना हो तो इसके पत्तों को रुएँ के उलटी तरफ से बाँधना चाहिये।

रक्तरोग—इसकी जड़ को औटाकर छानकर उसमें शहद मिलाकर पीने से रक्त साफ होता है।

गठिया—समुद्रशोष की जड़ को औटाकर पीने से गठिया में लाभ होता है।

दाद—इसके रस का लेप करने से बच्चों के पुराने दाद की जाति के फोड़े मिटते हैं।

सूजन—इसके पत्तों का पुल्टिस बाँधने से सूजन बिखर जाती है।

नारू—नारू पर इसके पत्तों का पुल्टिस बाँधने से लाभ होता है।

खुजली—समुद्रशोष का अर्क तिल्ली का तेल और सोया के बीजों को मिलाकर पीसकर लेप करने से खुजली और त्वचा के रोग मिटते हैं।

नासूर—बिगड़े हुए फोड़े, नासूर और लम्बे घावों पर इसके पत्तों को रुएँ की ओर से बांधने से वे साफ हो जाते हैं और उनसे साफ पीब निकलने लगता है। उसके पश्चात् उन पर इसके पत्तों को उलटी तरफ से बाँध देने से वे सूख जाते हैं।

समुद्रफेन

नाम—संस्कृत—समुद्रफेनम्, हिण्डोरः, अब्धिकफः, सुफेनम्। हिन्दी—समुद्रफेन। गुजराती—समुद्रफीण। मराठी—समुद्रफेण। बंगला—समुद्रफेन। मारवाड़ी—समन्दर का झाग। अङ्गरेजी—Cutel fishbone (क्यूटेल फिश बोन) लेटिन—Sepia officinalis (सेपिया ऑफिसिनेलिस), Os Sepia (ओस सेपिया)।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से समुद्रफेन शीतल, कसैला, रुचिकारक, लेखन तथा नेत्ररोग, कफ, कण्ठरोग और कर्णरोग को नाश करता है।

निघण्टु रत्नाकर के मत से समुद्रफेन रुचिकारक, लेखन, कसैला, हलका, नेत्रों को हितकारी, शीतल, सारक, विषनाशक तथा कर्णशूल, कफ, कण्ठरोग और पित्त को दूर करता है।

समुद्रफेन शीतल, कसैला और अत्यन्त वान्तिकारक होता है।

कर्नल चोपरा के मत से समुद्रफेन संकोचक और उपशामक होता है। इसमें केलशियम कार्बोनेट, फोस्फेट और सल्फेट विथ सिलोसिया इतने द्रव्य पाये जाते हैं।

मात्रा—इसकी मात्रा २ माशे की होती है।

उपयोग—**आँख का जाला**—समुद्रफेन को विनौले के तेल में पीस कर लगाने से आँख का जाला कट जाता है।

नासूर—शहद को औटा कर उसको गाढ़ा करके उसमें समुद्रफेन मिला कर, उसमें बत्ती तर करके उस बत्ती को नासूर में भरने से नासूर भर जाता है।

मुंह की झांई—समुद्रफेन को गुलाब के तेल में मिलाकर चेहरे पर मलने से मुँह की झांई दूर होती है।

योनि का ढीलापन—समुद्रफेन को हरड की मगज के साथ पीसकर योनि में रखने से योनिका ढीलापन मिटकर वह तङ्ग हो जाती है।

कान का बहना—समुद्रफेन के चूर्ण को कान में डालने से कान का बहना बन्द हो जाता है।

अर्जुन रोग—समुद्रफेन को शक्कर के साथ पीस कर नेत्रों में आंजने से अर्जुन रोग मिटता है।

मुंहासे—समुद्रफेन और नर कचूर को जल में पीस कर उबटन करने से मुँहासे मिट जाते हैं।

सन्दवार

नाम—हिन्दी—सन्दवार। पंजाब—पण्डेरा, वेना। फारसी—इसवर्ग। क्वेटा—हेझवर्ग। सिन्ध—इशवर्ग, सेवार। लेटिन—Rzhya stricta (रिझया स्ट्रिक्टा)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का झाड़ीनुमा क्षुप होता है। इसकी ऊँचाई ९ मीटर के करीब होती है। इसके पत्ते सूखने पर पीले रंग के हो जाते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं। यह वनस्पति सिन्ध, बलूचिस्तान और पंजाब में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्तों का रस दूध के साथ बच्चों को देने से उनके फोड़े-फुन्सी मिट जाते हैं। इन पत्तों का शीत निर्यास गले के जखम, हलके ज्वर और कमजोरी को दूर करने में बहुत उपयोगी होता है। इसके पत्ते जो कि बहुत कड़वे होते हैं, वे सिन्ध प्रान्त के बाजारों में बिकते हैं और उनका उपयोग कटु पौष्टिक

काथ और निर्यास बनाने में किया जाता है। इसके फल और पत्ते विस्फोटक तथा फोड़े-फुन्सियों के लिये उपयोगी माने जाते हैं।

अफगानिस्तान में इसकी जड़ें, पत्ते और फूल सुखाकर, इनका निर्यास बनाकर उपदंश की हर एक स्टेज की चिकित्सा में देते हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन सन्धिवात, प्राचीन जोड़ों की सूजन और हर प्रकार की वातवेदना में भी इनका उपयोग किया जाता है।

ओरमेरा में यह वनस्पति नेत्र रोग और कृमि चिकित्सा के काम में ली जाती है। लासबेला में यह बच्चों के रोग, सर्पदंश और दंत रोग तथा नेत्र रोगों की चिकित्सा में उपयोग में ली जाती है। इसका पानी के साथ बनाया हुआ काढ़ा ज्वरनाशक औषधि की तरह काम में लिया जाता है।

संगजराहत

नाम—संस्कृत—कम्बुजीरः, शंखजीरकम्। हिन्दी—संगजराहत। मराठी—शंखजीरें। गुजराती—शंखजीरुं। फारसी—संगेजराहत। अरबी—हजरुल एरावी। अङ्गरेजी—Soap Stone (सोप स्टोन)। लेटिन—Silicate Of magnesia (सिलिसेट ऑफ मेग्नेशिया)।

वर्णन—यह एक जाति का सफेद रंग का, चमकदार, मुलायम और चिकना पत्थर होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—संगजराहत, घाव को सुखानेवाला और रक्तस्राव रोधक होता है। इसका भीतरी प्रयोग अतिसार, प्रवाहिका, श्वेतप्रदर और रक्तप्रदर में किया जाता है। इसका लेप करने से शोथ, विसर्प और रक्त रोग मिटते हैं।

संगजराहत व्रण और दाह रोग को दूर करता है। इसका लेप करने से सूजन, विसर्प और रक्तविकार दूर होते हैं।

स्वर्णक्षीर

नाम—संस्कृत—स्वर्णक्षीर। मलयालम—अरा विल्ला। लेटिन—Cleome felina (क्लेओमी फेलिना)।

वर्णन—यह 'हुरहुर' या सूरजमुखी के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसका पौधा बहुशाखी और तीस से लेकर साठ सेण्टिमीटर तक ऊँचा होता है। इसके फूल कुछ गुलाबी रंग के होते हैं। इसके बीज बड़े बड़े चमकदार और ग्रन्थियुक्त होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसका पौधा शीतादि रोग प्रतिशोधक होता है। इसके बीज फफोले पैदा करनेवाले होते हैं, इनका भीतरी प्रयोग एक कृमिनाशक पदार्थ की तरह किया जाता है। इसके पौधे को दूध के साथ पीसकर फफोला उठाने के लिए त्वचा पर लगाया जाता है।

सरकंडा

नाम—संस्कृत—गुन्द्र, मुंज, सर, तेजनका। पंजाब—सरकण्डा। हिन्दी—सरकण्डा। बंगाल—सर। तामील—मुञ्जि। तैलगू—मुञ्जगाहि। अँग्रेजी—Devil Sugar Cane (डेविल शुगरकेन)। लेटिन—Saccharum arundinaceum (सेकेरम एरण्डीनेसियम)।

वर्णन—यह गन्ने के वर्ग की एक वनस्पति होती है, इसका पौधा गन्ने के पौधे की तरह होता है। यह वनस्पति बंगाल, आसाम और बरमा में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ें मूत्रल और शान्तिदायक होती हैं। प्रसूतिकाल के समय प्रसूता के कमरे में इसकी धूनी दी जाती है।

सर्वजय

नाम—संस्कृत—देवकेलि, कामाक्षी, कृष्णतामडा, सर्वजया, शीलरम्भा, वनकदली। हिन्दी—सर्वजय, सभाजय। गुजराती—अकलबेर। बङ्गाल—कामाक्षी, सर्वजय। पंजाब—हकीक। तामील—कालबलाई। तैलगू—गुरुगिञ्जा। अंग्रेजी—Indian Shot (इण्डियन शॉट)। लेटिन—Canna indica (केन्ना इण्डिका) उर्दू—गुलोतसवी।

वर्णन—सर्वजय भारतवर्ष और सीलोन में प्रायः सब ओर बगीचों में लगाया जाता है। इसका पौधा आधे गज से लेकर दो गज तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते बड़े और कठोर, केले के पत्तों को तरह होते हैं। इसके फूल लाल रङ्ग के होते हैं। इसके बीज काले चमकदार, सख्त और मटर की तरह गोल होते हैं। मुसलमान फकीर इसके बीजों की माला बनाते हैं।

इसका पौधा केले के छोटे पौधे की तरह होता है। उस पौधे के बीच में से एक दण्डी निकल कर उस पर लाल रंग का फूल आता है। कोई कोई फुल सफेद और पीले रंग का भी आता है। ये फूल बारहो महीने आते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ ज्वर और जलोदर में पसीना और पेशाब लाने के लिए दी जाती है। यह शान्तिदायक और उत्तेजक होती है।

पशुओं के द्वारा किसी विषैली घास खा लेने पर जब उनका पेट फूल जाता है तब उनको इस वनस्पति की जड़ के छोटे टुकड़ों को काली मिरचों के साथ चावलों की धोवन के पानी में औटाकर पिलाया जाता है। इसके बीज अग्निदीपक और घाव को अच्छा करनेवाले होते हैं।

गायना में इसकी जड़ मूत्रल मानी जाती है। इसके कन्द का काढ़ा पसीना और मूत्र लाने के लिए दिया जाता है।

गोल्डकास्ट में इसके फूल नेत्र रोगों में लाभदायक माने जाते हैं।

कम्बोडिया में इसकी जड़ एक प्रकार के चर्मरोग में (Yaws) जिसमें फफोले पड़ जाते हैं, शोधक वस्तु की तरह दी जाती है।

यूनानी मत--यूनानी मत से यह वनस्पति गरम और खुश्क होती है। इससे नकसीर का खून बन्द हो जाता है। इसके पीने से कफ के साथ खून का जाना बन्द हो जाता है। प्रमेह और श्वेत प्रदर में भी यह लाभ पहुँचाती है। इसका लेप करने से सूजन बिखर जाती है। इसका लेप करने से सफेद बाल काले हो जाते हैं। इसका काढ़ा पिलाने से पसीना देकर ज्वर उतर आता है। इसकी जड़ को ठण्डाई की तरह पीसकर पिलाने से पेशाब अधिक होकर जलोदर में लाभ पहुँचता है। इसके बीजों का इस्तेमाल करने से दिल की कमजोरी मिटती है।

सरपंखा

नाम—संस्कृत—शरपुंखा, सरपुच्छल, प्लीहाशत्रु, प्लीहारि, कालशाक इत्यादि। हिन्दी—सरपंखा, सरफोंका। गुजराती—सरपंखो, घोड़ाकान, झिल। बंगला—सरफोंका, बनिलगाछ। मराठी—उन्हाली, शरपुंखा। पंजाब—सरफोंका, बानसु, झौझरू। उर्दू—सरभुका। अंगरेजी—Purple Goat's rus (पर्पल गोट्सरूस)। लेटिन—Tephrosia purpurea (टेफ्रोसिया पर्प्यूरिया)।

वर्णन—सरपंखे का क्षुप बिलकुल नील के क्षुप से मिलता-जुलता होता है। इसके पत्तों और नील के पत्तों में इतना ही अन्तर रहता है कि जहाँ नील के पत्तों में सीधे तन्तु रहते हैं वहाँ इसके पत्तों में तिरछे तन्तु रहते हैं। नील का पत्ता तोड़ने से सीधा टूट सकता है मगर सरपंखे का पत्ता हमेशा तीर के फल की तरह तिरछा टूटेगा। इसके फूल किरमची रंग के और फलियाँ चपटी होती हैं। औषधि में इसका पंचांग काम में आता है। इसकी लाल और सफेद दो जातियाँ होती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सरपंखा चरपरा, कड़वा, गरम, कसैला, हलका तथा यकृत्, कृमि, प्लीहा, गुल्म, व्रण, खाँसी, विष, श्वास, बवासीर, रुधिर विकार, हृदयरोग, कफ, ज्वर, वात, कफोदर, व्यंग और गलित कुष्ठ को नष्ट करता है। लाल सरपंखे से सफेद सरपंखा अधिक गुणकारी होता है।

इसकी जड़ विषनाशक पदार्थ की तरह साँप के काटे हुए को पिलाई जाती है। व्रण और जखम में भी यह लाभ पहुँचाती है। बढ़ी हुई तिल्ली को दुरुस्त करने में यह बहुत उपयोगी है। इसके बीज जहरीले चूहे के विष को दूर करने के लिये दिए जाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ कड़वी, खराब स्वादवाली, मूत्रल, प्यास को बुझानेवाली, रक्तशोषक, अतिसार को दूर करनेवाली तथा खाँसी, दमा, यकृत और तिल्ली के रोग, सूजन, विस्फोटक और फोड़े-फुन्सियों को दूर करनेंवाली होती है। यह भूख बढ़ाती है और फेफड़े तथा छाती की बीमारियों में उपयोगी होती है। बवासीर, उपदंश और सुजाक में भी यह लाभ पहुंचाती है।

इसकी जड़ कड़वी होती है। यह कान की सूजन, अग्निमांद्य और पुराने अतिसार में दी जाती है। इसकी जड़ की ताजी छाल को पीसकर उसकी गोली बनाकर कालीमिर्च के साथ देने से हठीला और दुःसाध्य कॉलिक उदरशूल मिटता है। इसका पौधा रक्त को शुद्ध करके रक्त रोगों को दूर करने में बहुत उपयोगी है। हृदय के लिए भी यह एक पौष्टिक वस्तु है।

सीलोन में इसका पौधा पौष्टिक, आनुलोमिक और बच्चों के पेट में पड़नेवाले कृमियों को नष्ट करनेवाली मानी जाती है।

कोमान का कथन है कि यह वनस्पति खाँसी और गुर्दे की खराबी में उपयोगी मानी जाती है। हमने इसका काढ़ा दस गुने पानी में तैयार कर एक औंस की मात्रा में जलोदरयुक्त ब्राइट्स डिसीज के (गुर्दे का रोग) मरीजों को दिया। परिणाम में मालूम हुआ कि यह औषधि बहुत साधारण मात्रा में मूत्र की तादाद को बढ़ाती है।

डाक्टर देसाई के मतानुसार सरपंखा कड़ुवा, आनुलोमिक, पित्त निस्सारक, मूत्रल, कफनाशक और विष प्रतिरोधक होता है। साँप के विष में इसकी जड़ें लाभदायक होती हैं। पित्त प्रकोप में इसकी जड़ों का काढ़ा दिया जाता है। सुजाक में इसके दो भाग पत्ते एक भाग काली मिरचों के साथ पीसकर दिये जाते हैं। बवासीर के अन्दर इनको दही में मिलाकर देते हैं। कफ ज्वर में इसकी जड़ का काढ़ा दिया जाता है। उदरशूल में इसकी ताजी जड़ की छाल को काली मिरच के साथ पीसकर गोली बनाकर देने से चमत्कारिक लाभ होता है। यकृत और तिल्ली की वृद्धि में इसकी जड़ें बहुत लाभ पहुँचाती हैं। इन रोगों में इनको हरड़ के साथ देते हैं। कंठमाला में इसकी जड़ों का लेप किया जाता है। प्लीहोदर में इसको जड़ों को मट्ठे में पीसकर देते हैं। गुल्मरोग में सरपंखे के पञ्चांग का क्षार ४ माशे हरड़ के साथ मिलाकर देते हैं। खुजली में इसके बीजों को पीसकर लगाते हैं, अथवा इन बीजों के तेल की मालिश करते हैं।

सरपंखे के बीजों का तेल पलाश के बीजों के तेल की तरह पाताल यन्त्र से निकाला जाता है और इसके पंचांग की राख से क्षार-विधि से क्षार भी प्राप्त किया जाता है।

तिल्ली की वृद्धि, ज्वर, वायुगोला, खाँसी, दमा, उपदंश की दूसरी और तीसरी अवस्था, पुरातन प्रमेह, प्रदर, चूहे का विष इत्यादि रोगों पर सरपंखे की जड़ें रामबाण की तरह काम करती हैं। इन सब रोगों में सरपंखे की जड़ों और कसौंदी की जड़ों को समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके सबेरे-शाम डेढ़ माशे से लेकर तीन माशे तक की मात्रा में पानी के साथ देना चाहिए।

इस औषधि का उपयोग करते समय कभी २ जी मिचलाता है और मुँह में पानी छूटने लगता है। कभी २ एकाध वमन भी हो जाती है मगर उससे घबराना नहीं चाहिए। कुछ दिनों तक दवा लेने पर ये उपद्रव अपने आप बन्द हो जाते हैं। इस औषधि से शरीर में रहनेवाले अनेक प्रकार के रोगों के सूक्ष्म जन्तु नष्ट होकर, रुधिर के अन्दर का मल, मूत्र और पसीने के द्वारा बाहर निकल जाता है। जिससे ऊपर कहे हुए तमाम रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस औषधि के उपयोग से गर्भाशय और रज तथा वीर्य के दोषों की शुद्धि होकर प्रमेह, उपदंश इत्यादि कारणों से बन्ध्यत्व भोगनेवाली स्त्रियाँ गर्भधारण करने के योग्य हो जाती हैं।

उपयोग—मन्दाग्नि—सरपंखे की कड़वी जड़ को औटाकर पिलाने से मन्दाग्नि मिटती है।

अफारा—इसकी जड़ के क्वाथ में भुनी हुई हींग पीसकर मिलाकर पिलाने से पेट का आफरा मिटता है।

अतिसार—सरपंखे के क्वाथ में सोंठ डालकर पीने से संग्रहणी और लौंग डालकर पीने से अतिसार मिटता है।

पेट के कीड़े—सरपंखे के क्वाथ में बायबिडंग का चूर्ण मिलाकर पिलाने से बच्चों के पेट के कृमि नष्ट हो जाते हैं।

फोड़े फुन्सी—सरपंखे के क्वाथ में शहद मिलाकर पिलाने से रुधिर शुद्ध होता है और शरीर के फोड़े-फुन्सी मिट जाते हैं।

खूनी बवासीर—सरपंखे और भंग के पत्तों को पीसकर उनकी लुग्दी बनाकर गुदा पर बाँधने से खूनी बवासीर मिटते हैं।

दाह—सरफोंका के बीजों को ठण्डे पानी में भिगोकर मल-छानकर पिलाने से शरीर की दाह और ऊष्मा मिट जाती है।

उदरशूल—इसकी ताजी जड़ की छाल को काली मिरच के साथ पीसकर गोली बनाकर देने से हठीला और दुःसाध्य उदरशूल मिटता है।

प्रसूतिकष्ट—सरपंखे की जड़ को कमर पर बाँधने से स्त्री को प्रसूति के समय होनेवाला कष्ट दूर हो जाता है।

हैजा—इसकी दो माशे जड़ को पीसकर पिलाने से हैजे में लाभ होता है।

कुष्ठ—इसके पत्तों का रस पीने से कुष्ठ में लाभ होता है।

गुल्मरोग—इसके क्षार में समान भाग हरड़ का चूर्ण मिलाकर चार माशे की मात्रा में देने से गुल्मरोग मिटता है।

तिल्ली की वृद्धि—इसकी जड़ की लुग्दी को मट्ठे के साथ छानकर पिलाने से बढ़ी हुई तिल्ली कम हो जाती है।

दुष्ट व्रण—मधु के साथ सरपंखे का लेप करने से दुष्ट व्रण मिटता है।

बनावटें—कुष्ठनाशक तेल—सरपंखे के बीज, देवदारु, दारुहलदी, पँवार के बीज, कड़वी तुम्बी के बीज, धतूरे के बीज, कनेर की जड़, नारियल की नरेटी, कसौंदी के बीज, चित्रक की जड़ ये सब चीजें चौंसठ-चौंसठ तोला और शीशम की लकड़ी का क्षार पाँच सौ बारह तोला लेकर इन सब चीजों को १२८ तोले तिल्ली के तेल में भिगोकर पाताल यंत्र की विधि से इनका तेल टपका लेना चाहिये। इस तेल की मालिश करने से दाद, खुजली, चित्ता कुष्ठ इत्यादि रोग दूर होते हैं।

(जंगलनी जड़ी बूटी)

संधिनी (मालेबन्ध)

नाम—संस्कृत—संधिनी। मराठी—मालेबन्ध, धाकटा मालेबन्ध।

वर्णन—यह एक छोटी जाति की वनस्पति होती है। इसका पौधा एक बालिश्त से लेकर एक हाथ तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते तीन चार अंगुल लम्बे और एक अंगुल चौड़े होते हैं। इस वनस्पति की खास पहचान यह है कि झाड़ पर से इसके पत्ते को बीच में से आधा तोड़कर उसको फिर लगा दिया जावे तो वह पत्ता फिर से जुड़ जाता है। यह वनस्पति सिर्फ दक्षिणी कोंकण में ही पैदा होती है। इसकी छोटी और बड़ी दो जातियाँ होती हैं। छोटी जाति के पत्ते और बड़ी जाति की छाल विशेष उपयोगी होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—जङ्गलनी जड़ी बूटी के लेखक लिखते हैं कि मेघनाद की शक्ति लगने पर लक्ष्मण जी को भयंकर मूर्च्छा हो गई थी उस समय हृदय के जखम को भरने के लिये सुषेण वैद्य ने हनुमान जी के द्वारा जिस 'संधिनी' नामक वनस्पति को मँगवाया था वह वनस्पति शायद यही थी। क्योंकि किसी भी प्रकार के जखम और हड्डी के टूटने पर इसके पीसे हुए पत्तों की लुग्दी रखकर उस पर पट्टी चढ़ा दिया जाय तो चाहे जैसे भयंकर जखम से बहता हुआ रुधिर तत्काल बंद हो जाता है और तीन दिन तक लगातार पट्टा चढ़ाने से वह जखम भर जाता है। यदि इसके ताजे पत्ते न मिलें तो इसके सूखे पत्ते भी ताजे पत्तों की तरह ही काम देते हैं।

सरहटी

नाम—संस्कृत—सर्पाक्षी, भुजगाक्षी, फणिहंत्री, नकुलेष्टा। हिन्दी—सरहटी। बङ्गाल—गंधनाकुली। गुजराती—नकुलकंद। पंजाब—सरहटी। मराठी—मुंगुस कांदा। तामील—कीरिप्पुरण्डु। तेलगू—सर्पाक्षी। अंग्रेजी—Indian Snake Root (इंडियन स्नेक रूट)। लेटिन—Ophirahiza mungos (ओफिरेहीझा मुंगस)।

वर्णन—यह बहु वर्षजीवी झाड़ीनुमा छोटी बेल होती है। इसकी ऊँचाई एक फीट से डेढ़ फीट तक होती है। बरसात के दिनों में यह वनस्पति बहुत पैदा होती है। इसकी लकड़ी कठिन, छाल फीके हरे रंग की, पत्ते आमने सामने लगने वाले और लम्बगोल होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के और डंठल रहित होते हैं। इसकी जड़ें कठोर,

बाँकी टेढ़ी और करीब छः इञ्च लम्बी होती हैं। जड़ की छाल पतली, भूरे रंग की और बहुत कड़वी होती है। इसके बीजकोष दो खाने वाले होते हैं, जिनमें बहुत बीज रहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ कड़वी, चरपरी, गरम, कृमिनाशक और बिच्छू, चूहे, तथा साँप के विष को दूर करने वाली होती है। सुश्रुत के मतानुसार इसकी जड़ साँप और बिच्छू के विष में फायदा पहुँचाती है।

इसकी जड़ बहुत अधिक कड़वी होती है और एक कटु पौष्टिक द्रव्य की तरह इसका उपयोग किया जाता है। यह विश्वास किया जाता है कि यह साँप, बिच्छू, पागल कुत्ता इत्यादि जहरीले जानवरों के विष को दूर करती है।

राबर्ट्स का कथन है कि इसकी ताजी जड़ों, डालियों और पत्तों को दबा कर निकाला हुआ रस मनुष्य के पेशाब में मिला कर आधे चाय के चम्मच की मात्रा में नाक के हर एक छिद्र में टपकाने से साँप के विष से पैदा हुई मूर्च्छा और बेहोशी दूर होती है और इसी की ताजी जड़, छाल और पत्तों का काढ़ा पिलाने से जहर का असर कम हो जाता है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति साँप और बिच्छू के विष में बिलकुल निरुपयोगी है।

कोमान का कथन है कि इस वनस्पति की जड़ की छाल के सम्बन्ध में एक चिकित्सक ने हमें बतलाया कि 'इसमें मृदुविरेचक और उपशामक तत्त्व रहते हैं। इसकी जड़ की छाल को पीसकर उसकी लुग्दी बनाकर नींबू के बराबर बड़ी गोली बनाकर तीन दिन तक एक २ गोली सबेरे दूध के साथ देने से उन्मादग्रस्त रोगी का उन्माद दूर हो जाता है और उसकी आँतें साफ और गतिशील हो जाती हैं।' हमने इस ओषधि को मद्रास पागलखाने के सुपरिण्टेण्डेण्ट के पास परीक्षा के लिए भेजा वहाँ से जो रिपोर्ट आई उससे मालूम हुआ कि दो बीमारों पर वहाँ इसका प्रयोग किया गया, मगर इसका परिणाम असन्तोषजनक रहा और इस वनस्पति में इस प्रकार के कोई तत्त्व दिखलाई नहीं दिये।

उपयोग—सर्पविष—इसके पञ्चांग का क्वाथ सवा तोले की मात्रा में बार बार पिलाने से सर्पविष उतरता है।

एकतरा—स्मशान में पैदा हुई सरहटी को रविवार के दिन लाकर घी में घीसकर उसका ललाट पर तिलक लगाने से एकतरा ज्वर छूट जाता है।

तिजारी—सरहटी की जड़ को चन्द्रग्रहण में निमन्त्रण देकर दूसरे दिन लाकर काले सूत से बाँधकर दाहिने कान में बाँधने से तिजारी ज्वर छूट जाता है।

पागल कुत्ते का विष—पागल कुत्ते के विष को दूर करने के लिये सरहटी का क्वाथ पिलाना चाहिये।

सरू [जोजेस्सरू]

नाम—हिन्दी—यूनानी सरू।

वर्णन—सरू के वृक्ष बाग-बगीचों में शोभा के लिये लगाए जाते हैं। इसके वृक्ष मध्यम कद के होते हैं और इसके पत्ते, डालियाँ तथा वृक्ष का दिखाव बहुत सुन्दर होता है। इसका फल सनोवर की तरह होता है। यह कच्चा रहने पर हरा और पकने पर थोड़ा पीला होकर कठोर हो जाता है। इसका स्वाद बकसा, कुछ कड़ुवा और थोड़ी सी तेजी और चरपरापन लिये हुए होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से सरू का फल पहले दर्जे में सर्द और खुश्क होता है। किसी-किसी के मत से पहले दर्जे में गरम और खुश्क होता है।

सरू के पत्तों से इसका फल विशेष प्रभावशाली होता है। यह रूक्षता पैदा करता है। इसका मलरोधक और रक्तरोधक धर्म विशेष प्रभावशाली होता है। शरीर के अन्दर संचित विजातीय तत्त्वों का शोषण करने में यह अद्वितीय होता है। ताजा जख्मों पर इसका लेप करने से वे जल्दी भरकर सूख जाते हैं। यकृत, तिल्ली, आँत और आमाशय की बीमारियों में भी यह लाभ पहुँचाता है। इसको शहद में घिसकर ललाट पर लगाने से सर्दी

होनेवाला सिर दर्द मिट जाता है। इसको पीसकर शहद के साथ चाटने से यह दिमाग को शक्ति देता है और भूलने की बीमारी को दूर करता है। इसके सेवन से साँस और मुँह में खुशबू पैदा होती है और साँस का रुक २ कर आना बन्द हो जाता है। यह छाती में जमे हुए कफ को बिखेर कर पुरानी खाँसी को दूर करता है। अण्डकोष की वृद्धि में इसको सरेस के साथ लेप करने से फायदा होता है।

मुजिर—इसको अकेले अधिक मात्रा में लेने से खाँसी पैदा होती हैं और चेहरे पर पीलापन और रुक्षता आती है।

दर्पनाशक—शहद और बादाम का तेल।

मात्रा—डेढ़ माशे से दो माशे तक।

सरसों

नाम—संस्कृत—सर्षप, गौरसर्षप, तीक्ष्णक, कुष्ठनाशक, सिद्धप्रयोजन, भूतनाशक, कण्डुघ्न इत्यादि। हिंदी—सरसों, सफेद सरसों। बंगाल—सरिषा। गुजराती—सरसव। मराठी—सरसो, शिरष। पञ्जाबी—सरों। फारसी—सिपन्दान मुफीद। तामिल-करुप्पुकेडुग्गु। अङ्गरेजी-Wild Turnip (वाइल्ड टरनिप)। लेटिन—Brassica campestris (ब्रेसिका कम्पेस्ट्रिस)।

वर्णन—सरसों का पौधा राई के पौधे की तरह होता है। इसके बीज कुछ ललाई लिये हुए पीले रङ्ग के होते हैं। एक जाति की सरसों के बीज सफेद होते हैं। इसके एक मन बीजों में करीब बारह तेरह सेर तेल निकलता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से—सरसों, चरपरी, कड़वी, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, किञ्चित् रूखी, पित्त कारक, रक्तपित्तजनक, रूक्ष तथा वात, कफ, कण्डू, कुष्ठ, शूल,कृमि और ग्रहपीड़ा को दूर करनेवाली होती है।

सफेद सरसों, चरपरी, कड़वी, रुचिकारक, गरम, वातरक्त कारक तथा ग्रहपीड़ा, बवासीर, त्वचा के दोष, सूजन, व्रण और विष को नष्ट करती है।

सरसों के पत्तों का शाक, सारक, अम्ल, पित्तकारक, कसैला, भारी, स्वादिष्ट, गरम, खारी और कफनाशक होता है।

भावप्रकाश के मतानुसार सरसों रस और पाक में चरपरी, स्निग्ध, कड़वी, तीक्ष्ण, गरम, कफ-वात नाशक, रक्तपित्तजनक, अग्निवर्द्धक तथा राक्षस बाधा, कण्डू, कुष्ठ, कृमि और ग्रह की बाधा को दूर करती है। पीली और सफेद सरसों समान ही गुण वाली होती है किंतु तो भी सफेद सरसों पीली की अपेक्षा उत्तम होती है।

इसके बीजों को गरम पानी में मिलाकर उनका पुलटिस बनाकर प्रत्युत्तेजना (Counterirritant) देनेवाले पुलटिस की तरह बाँधा जाता है। इसके तेल में कपूर मिलाकर संधिवात और गर्दन की अकड़न पर मालिश करने से लाभ होता है। इसका उपयोग हड्डीतोड़ बुखार (Dengu Fever) में भी बहुत लाभ पहुँचाता है। ब्राङ्काइटीज में इसका छाती पर मालिश करने से लाभ होता है।

इंडोचायना में इसकी जड़ और इसके पत्ते अग्निवर्द्धक माने जाते हैं। इसके ताजे पत्तों को कुचल कर फोड़ों के ऊपर बाँधा जाता है और इसके बीज कॉलिक शूल में दिये जाते हैं।

उपयोग—**गठिया**—सरसों के तेल में कपूर मिलाकर मालिश करने से मांसपेशियों की गठिया मिटती है।

कर्णशूल—सरसों के तेल को कान में टपकाने से वादी का कर्णशूल मिटता है।

श्लीपद—सरसों को गोमूत्र के साथ पीसकर गर्म करके लेप करने से श्लीपद में लाभ होता है।

सूजन—सरसों और बच को पीसकर लेप करने से सूजन मिट जाती है।

तिल्ली की बढ़ती—सरसोंके तेल को पेट पर मालिश करने से तिल्ली की बढ़ती ठीक हो जाती है।

पामा, खुजली—सरसों के तेल में आकके पत्तों का रस और हल्दी की लुग्दी डाल कर औटावें जब तेल सिद्ध हो जावे तब उसको उतार कर छान लें। इस तेल को लगाने से पामा और विसर्पिका मिटती है।

नासूर—आक के दूध में रुई को भिंगोकर छाया में सुखालें। सूखने पर उसकी बत्ती बनाकर उसे सरसों के तेल में डुबोकर उसको जलावें और उसका काजल पाड़ लें। इस काजल को नासूर में भरने से नासूर मिट जाता है।

उबटन—सरसों को दूध में डालकर औटावें, जब सब दूध जल जाय तब सरसों को सुखा कर उसको पीसकर शरीर पर उबटन करने से शरीर का रंग निखर जाता है।

बन्ध्यत्व—सरसों को पीसकर उस का शाफा बनाकर मासिक धर्म के स्नान के पश्चात् तीन दिन तक योनि में रखने से गर्भधारण होता है।

कफ की खाँसी—सरसों को पीस कर शहद के साथ चाटने से कफ की खाँसी मिटती है।

सरमूल

नाम—पंजाब—सरमूल, कण्डियारा, कतरकन्दा, पिसार। अफगानी—दीदानी। लेटिन—Astragalus multiceps (एस्ट्रागेलस मुल्टीकेप्स)।

वर्णन—यह वनस्पति गढ़वाल, कुमाऊँ तथा पश्चिमी हिमालय में दस हजार से बारह हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके बीज कॉलिक शूल और गलित कुष्ठ को दूर करने के उपयोग में लिये जाते हैं।

स्वर्णवल्ली

नाम—संस्कृत—स्वर्णवल्ली, रक्तफला, काकायुः, काकवल्लरी। हिन्दी—सोनवेल।

वर्णन—स्वर्णवल्ली या सोनवेल प्रायः पर्वत, बाग और उपवनों में अधिक होती है। इसके पत्ते गोल और अनीदार होते हैं। इसके फल लाल रङ्ग के होते हैं। इस सारी लता का रंग पीला होता है, इससे इसे स्वर्णवल्ली कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से स्वर्णवल्ली शिरपीड़ा और त्रिदोष को नष्ट करनेवाली तथा स्तनों में दूध बढ़ाने वाली होती है।

समरा कोकड़ी

नाम—गुजराती—समरा कोकड़ी, फुटियम। काठियावाड़—कारी कोकड़ी, कंढेरी कोकढ़ी। लेटिन—Bidens pilosa (बिडेन्स पिलोसा)।

वर्णन—यह एकवर्षजीवी वनस्पति होती है। इसका पौधा डेढ़ फीट से ढाई फीट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते बकायन नीम के पत्तों की तरह होते हैं। इसके फूल पीले रङ्ग के और इसके बीजकोष काली सलाई के समान और खड़े होते हैं। ये चौकोर होते हैं और इनके सिरे पर तीन से पाँच तक कुछ पीलापन लिये हुए सफेद रंग के महीन काँटे होते हैं, इस वनस्पति के पौधे बरसात के दिनों में सब ओर पैदा होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति संकोचक होती है। इसके पत्तों के काढ़े से नहीं भरनेवाले घाव धोये जाते हैं। फोड़े-फुन्सियों पर इसके पत्तों को पीसकर लेप करने से फायदा होता है। बच्चा होने के पश्चात् अगर गाय, भैंस इत्यादि पशुओं की आँवल गिरने में देर हो जाय तो ग्वाल लोग इसके पौधे का काढ़ा बनाकर उसमें गुड़ मिलाकर बीमार ढोर को पिलाते हैं।

गोल्डकॉस्ट में इसके पत्तों का रस आमतौर से आँखों और कानों में इन दोनों स्थानों की शिकायतों को दूर करने के लिये टपकाया जाता है। भूलू जाति के लोग गठिया रोग को दर करने के लिये इसके कोमल पत्तों को चबाते हैं। वे लोग इसके पत्तों का चूर्ण पानी में मिलाकर उस पानी को एनिमा के द्वारा पेट में चढ़ाते हैं जिससे पेट का दर्द और शिकायत दूर होती है। इसके फूल अतिसार में उपयोगी समझे जाते हैं और इसके पत्तों और जड़ों का काढ़ा कॉलिक शूल को दूर करने वाला माना जाता है।

इण्डोचायना में इसके सूखे फूलों की कलियाँ पीसकर अलकोहल में मिलाकर उससे दन्तशूल को दूर करने के लिए कुल्ले करते हैं। नेत्रों के व्रण में इसके कुचले हुए पत्तों का पुल्टिस आँखों की पलकों पर बाँधते हैं। ब्राझील में इसके पत्ते रक्तस्रावरोधक ओषधि की तरह बहते हुए खून के प्रवाह को रोकने के लिए उपयोग में लेते हैं। इसके पत्ते अशुद्ध और सड़े हुए घावों को शुद्ध करने के लिए तथा सूजी हुई गठानों की सूजन उतारने के लिए भी लेप करने के काम में लिये जाते हैं।

सरमल

नाम—मराठी—सरमल। गुजराती—चमेड़ियुं। काठियावाड़—चोंणीयों, नीढेचोलजोझाड़। तेलगू—नेल्लाजी लुगा। लेटिन—Cassia pumila (केसिया पुमिला)।

वर्णन—इस वनस्पति के पौधे बहुत बारीक होते हैं। ये बरसात के दिनों में पैदा होते हैं। इनकी शाखाएँ अधिकतर जमीन पर फैली हुई होती हैं। इसके पत्ते छोटे, आँवलों के पत्तों की तरह सलाई पर लगे हुए होते हैं। इसके फूल छोटे और पीले रंग के होते हैं। इसकी फलियाँ चाकसू की फलियों के समान मगर कुछ छोटी होती हैं। हर एक फली में ६ से लेकर १२ तक बीज होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके बीज विरेचक होते हैं। इसके पत्तों को दूध में पीसकर फिर आग पर खदबदा कर दुखती हुई आँखों पर बाँधते हैं। इसके पत्तों और बीजों का पुलटिस फोड़े-फुन्सियों पर बाँधा जाता है।

सलवियास फेकुस

नाम—हिन्दी—सलवियास फेकुस। अगरेजी—Garden Sage (गार्डन सेज) लेटिन—Salvia officinalis (सेलविया आफिसिनेलिस)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति की सफेद रुएँदार छत्तानुमा वनस्पति होती है। इसका पौधा १५ से लेकर ३० सेण्टीमीटर तक लम्बा होता है। यह वनस्पति भूमध्यसागर के तटवर्ती प्रदेश में पैदा होती है। मगर आजकल भारतवर्ष के बगीचों में भी खूबसूरती के लिए यह लगाई जाने लगी है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति पौष्टिक, संकोचक और सुगन्धित होती है। इसके पत्तों का काढ़ा मुँह के क्षत, छाले और गले के रोगों के लिए एक आश्चर्यजनक कुल्ला करने की ओषधि है। इन कामों के लिए सारे यूरोप में इस वनस्पति की बहुत प्रशंसा है। इस वनस्पति से तैयार किया हुआ लोशन व्रण और घावों को धोने के लिए एक बहुत उत्तम वस्तु है।

सहदेवी

नाम—संस्कृत—सहदेवी, सहदेवा, दंडोत्पला, गोवन्दनी, विषमज्वरनाशनी, विश्वदेवा। हिन्दी—सहदेवी, सदोई, सदोड़ो। बंगाल—कुक्शिम, काला जीरा। गुजराती—सेदर्डी, सहदेवी, काली सदेड़ी। मराठी—सादोड़ी, सहदेवी। पंजाब—सहदेवी। तामिल—सहदेवी। इंगलिश–Ash Coloured Fleabane (एश कलर्ड फ्लीबेन)। लेटिन—Vernonia cinera (वरनोनिया सिनेरा)।

वर्णन—इस वनस्पति के पौधे १ से लेकर ३ फीट तक ऊंचे होते हैं। इसके पत्ते बड़े २ रुएंदार होते हैं और दूर २ पर लगते हैं। इसके फूल बैंगनी रंग के और बीज कालीजीरी के समान मगर कुछ छोटे होते हैं। यह वनस्पति बरसात के दिनों में सब ओर पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसका पौधा मीठा, शीतल, पौष्टिक, अग्निवर्द्धक, संकोचक तथा त्रिदोष, क्षय, दमा और खांसी में लाभ पहुँचाने वाला होता है। इसके फूल ज्वरनाशक होते हैं।

ज्वर में पसीना लाने के लिए इसका काढ़ा दिया जाता है। इसकी टोपी बनाकर सिर पर पहनने से ज्वर उतर जाता है। किसी को नींद न आती हो तो सहदेवी को सिरपर बाँधने से नींद आ जाती है।

रतलाम के महन्त सुखराम दास जी बूटीप्रचार वैद्यक में लिखते हैं कि:—सहदेवी के पत्ते १॥ माशा और काली मिरच ७ इन दोनों को पीसकर रविवार या मंगलवार को रोगी को पिलावे तो मलेरिया ज्वर या ठण्ड देकर आनेवाला ज्वर दूर होता है।

सहदेवी अंगरेजी ओषधि की फेनासीटीन की तरह पीड़ाशामक, स्वेदल और ज्वरनाशक वस्तु का काम करती है।

सहदेवी के बीज पटना में कृमिनाशक और विषनाशक वस्तु की तरह काम में लिये जाते हैं। छोटे नागपुर में यह वनस्पति पथरी और मूत्राशय की ऐंठन में काम में ली जाती है। इसके फूल आँख की भीतरी झिल्ली की सूजन में उपयोगी माने जाते हैं और इसकी जड़ जलोदर रोग में दी जाती है।

कोमान का कथन है कि यह वनस्पति एक उत्तम पसीना लानेवाली मानी जाती है और वैद्य लोगों के द्वारा आम तौर से ज्वर के अन्दर यह पसीना लाने के लिए दी जाती है। यद्यपि इस वनस्पति में स्वतन्त्ररूप से पसीना लाने का गुण नहीं है पर इसको कुनैन की छोटी मात्रा के साथ मिलाकर देने से यह मलेरिया ज्वर को नष्ट करने में सहायता पहुँचाती है। कानपुर में एक वैद्य जो कि मलेरिया ज्वर की चिकित्सा करता था, ५ ग्रेन कुनैन और नींबू के रस के साथ सहदेवी को मिलाकर उसकी बड़ी गोली बनाकर प्रतिदिन सबेरे मलेरिया के रोगियों को देता

था। हमने (कोमान) स्वयं भी इस पद्धति का अनेक रोगियों पर उपयोग किया और उसमें काफी सफलता हुई।

डा० देसाई के मतानुसार सहदेवी का स्वरस ज्वर में पिलाया और शरीर पर लगाया जाता है। यह एक अत्यन्त सौम्यस्वभावी वस्तु है, इसको देने से पसीना होता है और पेशाब की जलन कम हो जाती है। बवासीर में भी इसका स्वरस लाभ पहुँचाता है। इसके फूल नेत्ररोगों में उपयोगी होते हैं।

सहदेवी बड़ी

नाम—हिन्दी—सहदेवी बड़ी, सेढी। पञ्जाब—भाँगरा, काला भाँगरा। सन्थाल—चीरबरङ्गान। तेलगू—नल्लाटापटा। बंगाल—वनपलंग। इंगलिश—Dindle (डिण्डल)। लेटिन—Sonchus arvensis (सोनकस अरवेन्सिस)।

वर्णन—यह एक ऊँची जाति की बारहमासी वनस्पति होती है। इसके पत्ते हरे, चमकदार और १५ सेण्टीमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल चमकदार पीले रङ्ग के होते हैं। यह वनस्पति सहदेवी के वर्ग से भिन्न वर्ग की होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह वनस्पति कुछ कड़वी, मूत्रल और जीर्ण ज्वर में लाभदायक होती है। संथाल जाति के लोग इसकी जड़ को पीलिया रोग में देते हैं।

सहजना

नाम—संस्कृत—शोभाञ्जन, शिग्रु, शुभाञ्जना, कृष्णबीज, गर्भपातक, रक्तक, विद्रधिनाशन, अक्षीव, श्वेतमरिच, स्त्रीचित्तहारी इत्यादि। हिन्दी–सहजना, सैजना, मुङ्गना। बंगला–सेजना, सजिना। गुजराती–सरगवो, मीठो सरगवो, सेगटो। मराठी—शेवगा, बड़ा डिशिग, मुंगाचे झाड़। पञ्जाब—सेजना। बम्बई—सुजना, शेगवा, सरागू, सेकटो। तामील—मुरंगाई। तैलगू—साजना। उर्दू—सहजना। अंगरेजी—Indian Horse Radish (इण्डियन हार्स रेडिश)। लेटिन—Moringa oleifera (मोरिङ्गा ओलिफेरा)। M. pterygosperma (मोरिंगा टेरिगोस्पर्मा)।

वर्णन—सहजने के वृक्ष बाग, वन और जंगल में पैदा होते हैं। इसका वृक्ष २० फीट ऊंचा होता है। इसके पिण्ड की गोलाई चार–पाँच फीट की होती है। इसकी छाल कोमल और भूरे रंग की होती है। इसके पत्ते आकार में इमली के पत्तों की तरह परन्तु लम्बाई–चौड़ाई में उनसे कुछ बड़े होते हैं। ये सींक से दोनों ओर आमने–सामने लगते हैं। इसके फूल सफेद, नीले और लाल आते हैं। इन फूलों के भेद से ही इसकी लाल, सफेद और नीली तीन जातियाँ होती हैं। इसके फूलों में मधु के समान गन्ध आती है। इसकी फलियाँ नौ से दस इञ्च तक लम्बी और लटकती हुई लगती हैं। इसके बीजों को उत्तरी भारत में सफेद मिरच कहते हैं। इसके १० तोले बीजों में से ३६ तोले स्वच्छ, निर्मल, सफेद रंग का तेल निकलता है। इस तेल में कोई गन्ध और स्वाद नहीं होता।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से सहजना चरपरा, पचने में चरपरा, तीक्ष्ण, गरम, मधुर, हलका, अग्निदीपक, रुचिकारक, रूखा, कड़वा, दाह पैदा करनेवाला, मलरोधक, शुक्रवर्द्धक, हृदय को हितकारी, पित्त को कुपित करनेवाला, रुधिर को दूषित करनेवाला, नेत्रों को हितकारी तथा कफ, वात, विद्रधि, सूजन, कृमि, मेद रोग, अग्निमांद्य, विष, प्लीहा, गुल्म, गण्डमाला और व्रण को दूर करनेवाला होता है।

इसकी जड़ की छाल, तीक्ष्ण, गर्म, मधुर, कुछ कड़वी, पाचक, आँतों के लिये संकोचक, कामोद्दीपक, विषनाशक, कृमिनाशक, वेदनाशामक, दाह और पित्त को पैदा करनेवाली, रक्त को दूषित करनेवाली और भूख बढ़ानेवाली होती है। वह हृदय रोग, नेत्ररोग, कफ, वात, त्रिदोषजन्य ज्वर, सूजन, अग्निमांद्य, तिल्ली की बढ़ती, क्षयजनित कण्ठमाला, अर्बुद, व्रण, कर्णशूल और जबान की हकलाहट में लाभ पहुँचाती है। इसके पत्ते स्वादिष्ट, शीतल, नेत्रों को हितकारी, वेदना को दूर करनेवाले, कामोद्दीपक और कृमिनाशक होते हैं। ये नेत्ररोग, वात और पित्तविकार में लाभ पहुँचाते हैं और नशा, मतिभ्रम, हिचकी, दमा को दूर करते हैं। इसके फूल चरपरे, तीक्ष्ण, गरम, सूजन को नष्ट करने वाले तथा तिल्ली की बढ़ती, स्नायुरोग, मांसपेशियों के रोग, विद्रधि और कफ-वात सम्बन्धी रोगों को दूर करनेवाले होते हैं। सहजने की फली मीठी, कसैली, कफ-पित्तनाशक तथा शूल, कोढ़, श्वास और वायुगोले को दूर करनेवाली और अग्निदीपक होती है। सहजन के बीज तीक्ष्ण, गरम, नेत्रों को हितकारी, विषनाशक और मस्तकशूल को दूर करनेवाले होते हैं। इनका तेल अनेक प्रकार की खुजली और व्रणों में लाभ पहुँचाता है। सहजने की छाल और पत्तोंका स्वरस तीव्र वेदना को दूर करता है।

लाल सहजना—अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, मधुर, रसायन, सूजन, वात, पित्त, आफरा और कफ को हरनेवाला होता है।

सफेद सहजना—चरपरा, तीक्ष्ण, शोथनाशक, वातनाशक, वेदनानाशक, रुचिकारक, अग्निदीपक और मुँह की जड़ता को दूर करनेवाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ कड़ुवी, शरीर और फेफड़ों के लिये पौष्टिक, ऋतुस्रावनियामक, मृदुविरेचक, कफनिस्सारक, मूत्रल, रक्त को बढ़ानेवाली, सूजन को बिखेरने वाली तथा गले के रोग, छाती के रोग और जखम, खाँसी, बवासीर, भूख बन्द होना, मुखशोथ, पुराने प्रमेह, अनैच्छिक वीर्यस्राव, दुःसाध्य दमा और कटिवात में लाभ पहुँचाती है। यह पित्त को बढ़ाती है। इसके फल कृमिनाशक, कफनिस्सारक और पित्तविकार तथा खाँसी को दूर करने वाले होते हैं।

यूनानी हकीम इसकी फली को तिल्ली और यकृत की वृद्धि में, जोड़ों की सूजन और वेदना में, धनुर्वात में और लकवे में उपयोग में लेते हैं। इसकी जड़ को मुँह और गले के क्षत में लाभदायक मानते हैं। इसके गोन्द को ये दाँतों की सड़ान में उपयोगी समझते हैं।

डाक्टर देसाई के मतानुसार इसकी जड़ की ताजी छाल कड़वी, तीक्ष्ण, गर्म, रुचिकारक, दीपन, पाचक, उत्तेजक, कोष्ठवायु को नष्ट करनेवाली, वातनाशक, स्वेदल, मूत्रल, कफनाशक और व्रणदोष को दूर करनेवाली होती है। यह एक उत्तम अग्निदीपक वस्तु है। शरीर के अन्दर इसकी क्रिया यूरोप में पैदा होनेवाली हासरेडिश नामक औषधि की क्रिया के समान होती है। इसकी पाचक क्रिया अनन्नास तथा अरण्ड ककड़ी (पपीता) के समान प्रत्यक्ष रूप से नहीं होती, बल्कि यह गौणरूप से आमाशय की रक्तसंचालन क्रिया को बढ़ाकर अधिक पाचन-रस को उत्पन्न करती है। जिससे अन्न शीघ्रता से हजम हो जाता है। अन्न पचने के पश्चात् उससे आँतों को उत्तेजना देने वाला मल बनता है। जिससे आँतों को उत्तेजना मिलकर दस्त साफ होती है। इसकी पसीना लेनेवाली स्वेदन क्रिया मज्जातन्तुओं के द्वारा, रक्तवाहिनियों के द्वारा और खास स्वेदपिंड पर भी होती है। इससे शरीर में दाह भी पैदा होती है। अडूसे से जिस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से कफ छूटता है वैसा इससे नहीं छूटता। परन्तु मज्जातन्तु और हृदय को उत्तेजन मिलने की वजह से रोगी की खाँसने की शक्ति बढ़ जाती है। सहजना मज्जातन्तु और हृदय को उत्तेजना देनेवाली होती है। मूत्रपिण्ड के ऊपर इसकी उत्तेजक क्रिया बिलकुल स्पष्ट होती है। इससे मूत्र का परिमाण और उसमें रहनेवाले क्षारों का परिमाण तत्काल बढ़ जाता है। इसकी छाल को कुचलकर त्वचा पर बाँधने से त्वचा लाल हो जाती है और बाँधे हुए हिस्से में रक्तवाहिनियों का विकास होकर वहाँ के रक्त में सफेद कण जम जाते हैं। इस वजह से व्रण पर इसको बांधने से व्रण की सूजन उतर जाती है। इसके साथ ही इसका अन्तः प्रयोग करने से पसीना और पेशाब होकर व्रण का विष निकल जाता है।

अग्निमांद्य, अपचन, आफरा, उदरशूल और आनाह रोग में इसकी छाल दी जाती है। हृदयोदर, प्लीहोदर और यकृतोदर में इसकी फांट बनाकर उसमें दूसरे विरेचक और मूत्रल द्रव्य मिलाकर देते हैं। उदररोगों में प्रारम्भ में सहजने की फांट बनाकर उसमें पुनर्नवा, चिरायता और सोंठ मिलाकर देना चाहिये। अगर इससे भी पेशाब की तादाद न बढ़े तो उपरोक्त योग में यवक्षार और अपामार्ग क्षार और मिला देना चाहिये। इतने पर भी यदि पेशाब की तादाद न बढ़े तो निसोत या इन्द्रायण के समान तीव्र विरेचन देना चाहिये। शास्त्रीय दृष्टि से उदररोगों में रोगी को नमक और पानी नहीं देना चाहिये। आँतों के ऊपर शीघ्र असर डालने के लिये इसका अर्क देना चाहिये। मूत्रपिण्ड की खराबी और सूजन आई हो तो उसमें सहजना कदापि नहीं देना चाहिये। क्योंकि इससे मूत्रपिण्ड में दाह पैदा होती है।

ज्वर के अंदर सहजना का प्रयोग उत्तम होता है। इससे रोगी को सर्वाङ्गीण लाभ होता है। पसीना होता है, पेशाब होता है और मज्जातंतु तथा हृदय को उत्तेजना मिलती है। कफ ज्वर में इसकी छाल का रस दिया जाता है।

व्रणशोथ में इसकी छाल को पीसकर उसका लेप किया जाता है और साथ ही इसको पेट में भी देते हैं। विद्रधि के अन्दर इसकी फांट हींग और सेंधा नमक के साथ दी जाती है। गले की शिथिलता में इसकी फांट से कुल्ले किये जाते हैं, सन्धियों की सूजन और मांसपेशियों की वेदना में इसकी छाल का लेप किया जाता है। मगर इस लेप को अधिक समय तक नहीं रखना चाहिये क्यों कि इससे बहुत जलन होती है और फुन्सियाँ हो जाती हैं। मनुष्य की मूर्च्छा तथा बेहोशी को दूर करने के लिये इसके बीजों का चूर्ण नाक से सुंघाया जाता है। इसके

बीजों का चूर्ण कड़वा, तीक्ष्ण, उत्तेजक और दाहजनक होता है। इसके बीजों का तेल आमवात और वातरक्त के अन्दर मालिश किया जाता है।

मज्जातन्तु सम्बन्धी रोग जैसे गठिया, लकवा, अर्दित, सन्धिवात इत्यादि रोगों में इसकी छाल का स्वरस बहुत लाभ पहुँचाता है। इसके पत्तों की तरकारी से दस्त साफ होता है।

इसकी जड़ की छाल का क्वाथ हींग और नमक के साथ सूजन, मूत्रकृच्छ्र और पीबदार घावों को दूर करने के लिये दिया जाता है। इसके वृक्ष का गोन्द तिल के तेल के साथ मिलाकर कान के दर्द को दूर करने के लिये कान में डाला जाता है।

देशी चिकित्सक इसकी जड़ को लकवा अथवा अर्द्धाङ्ग वायु और पार्यायिक ज्वर में एक उत्तेजक वस्तु की तरह देते हैं। मृगी और हिस्टीरिया में भी वे इसका उपयोग करते हैं। वे लोग पक्षाघात और प्राचीन संधिवात में इसको एक मूल्यवान चर्मदाहक पदार्थ की तरह काम में लेते हैं।

बम्बई में इसकी जड़ का काढ़ा चोट और मोचपर सेक करने के काम में लिया जाता है। कोकण में इसके जङ्गली वृक्ष की छाल को पीसकर चित्रक की जड़, कबूतर की बिष्ठा और मुर्गी की बिष्ठा के साथ मिलाकर नारू के ऊपर बाँधते हैं। इसके बागमें लगे हुए झाड़के पत्तोंका ४ तो० रस वमन लानेके लिए पिलाया जाता है और इसका गोन्द गर्भघातक माना जाता है।

इसकी ताजी जड़ उत्तेजक, शांतिदायक, अग्निवर्द्धक और मूत्रल होती है। इसके फूलों में भी उत्तेजक तत्त्व रहते हैं।

राबर्ट्स के मतानुसार सीलोन में यह वनस्पति सर्पविष के लिये एक लोकप्रिय वस्तु समझी जाती है। सर्पविष की चिकित्सा में इसके पत्तों को कुचल कर दंशस्थान पर लेप करते हैं और इसकी ताजी जड़, छाल और पत्तों को दबाकर निकाला हुआ रस मूर्च्छा और बेहोशी को दूर करने के लिये रोगी के नाक में टपकाते हैं। इसके बीजों को पीसकर पानी में मिलाकर आँखों में आँजते हैं और इसकी ताजी जड़ और छाल का काढ़ा विष को दूर करने के लिये पिलाते हैं। बन्दर और दूसरे प्राणियों के काटने पर भी इसके ताजे पत्तों को पीस कर काटे हुए स्थान पर लेप करते हैं।

फ्रेंच गायना में इसकी जड़ की छाल स्वरभंग और गले की वेदना तथा स्कर्वी रोग के अन्दर काम में ली जाती है। यह चर्मदाहक समझी जाती है और इसकी डालियों की छाल रक्तातिसारनाशक मानी जाती है। इसके पत्तों को कुचल कर और उनको गर्म करके उनका लेप अर्बुद के ऊपर किया जाता है। इसके ताजे बीज कड़वे, कसैले, विरेचक और ज्वरनाशक माने जाते हैं।

डा० मुडीन शरीफ का कथन है कि मैंने इसकी जड़ का स्प्रिट में एक्सट्रेक्ट (Compound Sprit) बनाकर उसका उरयोग किया। मैं यह कह सकता हूं कि मूर्च्छा, भ्रम, मज्जातंतुओं की कमजोरी, आँतों का आक्षेप, हिस्टीरिया और कोष्ठवायु इत्यादि रोगों में यह बहुत ही उपयोगी है। दक्षिण भारत के देशी चिकित्सक सहजने के फूलों की एक कामोद्दीपक वस्तु की तरह बहुत उपयोग में लेते हैं। मगर मेरे अनुभव में इस कार्य के लिये ये फूल एकदम असफल हुए हैं हालां कि मैंने इनकी बहुत बड़ी मात्रा में सेवन करवाया था। ये फूल कुछ हलके उत्तेजक जरूर होते हैं लेकिन इनमें इतनी शक्ति नहीं है कि इस सम्बंध की बीमारियों पर ये अपना प्रभाव डाल सकें। इसकी ताजी जड़ की छाल लेप के रूप में त्वचा पर लगाने से एक उत्तम चर्मदाहक, फफोला पैदा करनेवाली वस्तु है।

कर्नल चोपरा और दे ने सन् १९३० में इसकी जड़ की छाल में से मोरिङ्गिन (Moringine) और मोरिंगिनाइन (Moringinine) नामक दो उपक्षारों का पता लगाया। ये उपक्षार शरीर के अन्दर जाकर 'एफीड्रीन'* के समान क्रिया करते हैं। ये हृदय को उत्तेजना देते हैं और दमे की बीमारी में भी लाभ पहुंचाते हैं।

इन दोनों उपक्षारों में से पहला मोरिंगिन अपेक्षाकृत कम प्रभाव वाला और गतिहीन होता है। दूसरा उपक्षार मोरिंगिनाइन विशेष क्रियाशील होता है। इसके प्रभाव इस प्रकार होते हैं—

(१) यह स्नैहिक ज्ञानतन्तुओं (Sympathetic Nerve-ending) पर अनुकूल प्रभाव डालता है तथा हृदय और सारे शरीर की कोमल मांसपेशियों में रहनेवाले सूक्ष्म ज्ञानतन्तु पर यह अपना उत्तम प्रभाव डालता है। यह रक्त के दबाव (Blood Pressure) को बढ़ाता है, हृदय को उत्तेजना देता है और रक्तवाहिनियों का

---

* एफीड्रीन का वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में 'अमसानिया' के प्रकरण में देखें।

संकोचन करता है। इसी प्रकार यह वायुनलियों में शिथिलता पैदा करता है। यह छोटी वायुनलियों में भी शिथिलता पैदा करता है। तथा आँतों की क्रिया, शक्ति और गति को कम करता है, खरगोश को खिलाये जाने पर यह उसके गर्भाशय को संकुचित करता है।

(२) यह पेशाब की तादाद को थोड़ी बढ़ाता है।

(३) यह स्नैहिक गतिशील तंतुओं (Sympathetic Motor fibres) पर अवसादक असर डालता है।

(४) रासायनिक और चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से एफीड्रीन के साथ इन उपक्षारों की तुलना नहीं है।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार इसकी जड़ और बीज सर्पविष की चिकित्सा में काम आते हैं। मगर केस और महस्कर के मतानुसार सर्पविष में यह वनस्पति बिलकुल निरुपयोगी है।

उपयोग—जलोदर—सहजने की जड़ की छाल का स्वरस अथवा क्वाथ बनाकर पिलाने से जलोदर, तिल्ली, यकृत, भीतर की सूजन, पथरी इत्यादि रोगों में फायदा होता है।

कान की पीड़ा—इसकी छाल के ताजा रस को कान में डालने से कान की पीड़ा मिटती है और इसके गोंद का चूर्ण कान में भुरभुराने से कान से पीव का बहना बन्द हो जाता है।

मूत्रवृद्धि—इसके फूलों को पीसकर मिश्री मिलाकर पिलाने से मूत्रवृद्धि होती है।

शर्कराश्मरी—इसकी जड़ के रस को दूध में मिलाकर पिलाने से शर्कराश्मरी मिटती है और मूत्रवृद्धि होती है।

दमा—अदरक के रस में सहजने की जड़ का रस मिलाकर पीने से दमे में बहुत लाभ होता है।

सूजन—इसकी जड़ को पीसकर पुलटिस बाँधने से सूजन उतर जाती है, मगर इससे त्वचा में बहुत दाह और वेदना होती है, यहाँ तक कि फुन्सियाँ भी हो जाती हैं, इसलिये इसका प्रयोग समझ बूझकर करना चाहिये।

आँतों के कीड़े—सहजने की फली का शाक खाने से आँतों के कीड़े मर जाते हैं।

गठिया—इसके छोटे पौधे की जड़ का क्वाथ पिलाने से पुरानी गठिया, अर्द्धाङ्ग और जलोदर मिटता है। इसके बीजों के यन्त्र में दबाकर निकाले हुए तेल की मालिश करने से छोटे जोड़ों की सूजन और गठिया की तीव्र पीड़ा मिटती है। इसकी ताजी जड़, सरसों और अदरक को पीसकर लेप करने से गठिया मिटती है।

ज्वर—इसकी सवा माशे ताजी जड़ को औटाकर पिलाने से ठहर ठहर कर आनेवाला ज्वर छूट जाता है।

आवेश रोग—इसकी सवा माशे ताजी जड़ को औटाकर पिलाने से अपस्मार और स्त्रियों का आवेश रोग मिटता है।

मुँह के छाले—इसकी जड़ के क्वाथ से कुल्ले करने से मुँह और गले के छाले मिटते हैं।

दाँतों का सड़ना—इसका गोंद मुँह में रखने से दाँतों का सड़ना बन्द हो जाता है।

बाइँटे—इसकी जड़ की छाल का क्वाथ पिलाने से बाइँटे मिटते हैं।

नारू—जंगली सहजने की छाल, चित्रक की जड़ और कबूतर तथा मुर्गे की बिष्ठा को मिलाकर नारू पर लेप करने से नारू का कीड़ा मर जाता है। सहजने के बीज, जड़ और सेंधा नमक को कांजी के साथ पीसकर लेप करने से नारू मिटता है।

गर्भाशय का छोड़—सहजने की सवा तोले छाल अथवा जड़ का क्वाथ पिलाने से गर्भाशय का छोड़ निकल जाता है।

यकृत रोग—बच्चों का लीवर या यकृत बढ़ जाने पर सहजने की जड़ का लेप करने से लाभ होता है।

स्वरभंग—इसकी ताजी जड़ के क्वाथ से कुल्ले करने से गले का पड़ना या स्वरभंग मिट जाता है।

गठान—गठान की सूजन बिखेरने के लिये इसके गोंद का लेप किया जाता है।

पागल कुत्ते का विष—सहजने के पत्ते, लहसन, हल्दी, नमक और थोड़ी काली मिरच पीसकर पिलाने से बावले कुत्ते के विष में लाभ होता है और इन सब चीजों को पीसकर काटे हुए स्थान पर लेप करने से उसका घाव भर जाता है।

उदरशूल—इसकी छाल, हींग और सोंठ इन तीनों चीजों को जल के साथ पीसकर गोलियाँ बना लेनी चाहिये। इन गोलियों को दिन में दो तीन बार देने से पेट की वादी की पीड़ा, शूल और आफरा मिटता है।

जलोदर—सहजने की जड़ का हिम या फांट बनाकर पिलाने से मूत्रवृद्धि होकर जलोदर मिटता है।

मस्तकशूल—सहजने के पत्तों के रस में काली मिरच पीसकर सिर पर लेप करने से मस्तकशूल मिटता है।

पेट के कृमि—सहजने के बीज और पोहकरमूल को मिला कर देने से बच्चों के पेट के कृमि नष्ट हो जाते हैं।

रतौंधी—सहजने की कोमल डालियों के रस में शहद मिला कर नेत्रों में टपकाने से रतौंधी मिटती है।

मूत्रकृच्छ्र—सहजने के एक तोले गोंद का नित्य दही के साथ ७ दिन तक खाने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

सन्तान निग्रह—सहजने के बीजों को बारीक पीस कर गाय के घी और शहद में मिला कर बत्ती बना कर मासिक धर्म से शुद्ध होने के पश्चात् योनि में रखने से गर्भधारण की शक्ति नष्ट हो जाती है।

घुटनों की पीड़ा—सहजने के बीजों को पानी में पीसकर कुनकुना कर लेप करने से घुटनों की पुरानी पीड़ा मिटती है।

कानकी सूजन—सहजने की छाल और राई को पीस कर लेप करने से कान के नीचे की सूजन मिटती है।

बवासीर—सहजने की जड़ की छाल और आक के पत्तों को पीस कर लेप करने से बवासीर में लाभ होता है।

हिचकी—सहजने के पत्ते और कासमर्द के पत्तों का यूष बना कर पिलाने से हिचकी मिटती है।

खुजली—सहजने की जड़ को पीसकर उसकी लुगदी को सरसों के तेल में सिद्ध कर उस तेल की मालिश करने से खुजली मिटती है।

दमा—सहजने के पत्तों का यूष बनाकर पिलाने से दमा मिटता है।

श्लीपद—सहजने की जड़ को पीस कर गर्म करके लेप करने से श्लीपद में लाभ होता है।

विद्रधि—सहजने के क्वाथ में हींग और सेंधा निमक मिलाकर प्रातःकाल नित्य पीने से विद्रधि मिटती है। साथ में इसकी जड़ की छाल में थोड़ा सा वच्छनाग मिलाकर उसका लेप भी करना चाहिये।

खाज, खुजली—महर्षि चरक का कथन है कि सहजने को तेल में घोटकर मालिश करने से खाज, खुजली, कुष्ठ और सूजन मिटती है।

कर्णशूल—इसके गोंद को तिलों के तेल में मिलाकर गर्म करके कान में टपकाने से कर्णशूल मिटता है। इसकी जड़ का रस, सेंधा नमक, शहद और तेल को गर्म करके टपकाने से भी कर्णशूल मिटता है।

नेत्ररोग—इसके पत्तों के रस से नेत्रों को तपाने से नेत्र रोग मिटते हैं।

पथरी—सहजने की जड़ का कुनकुना क्वाथ पिलाने से कुछ दिनों में पथरी गल जाती है।

अपचन—सहजना, देवदारु और काँजी को एक साथ पीसकर गुनगुना लेप करने से दुस्साध्य अपचन मिटती है।

अन्तर्विद्रधि—सहजने की जड़ के रस में शहद मिलाकर पिलाने से अन्तर्विद्रधि मिट जाती है।

दाढ़ का दुखना—सहजने का गोंद मुँह में रखने से दाढ़ दुखना फौरन बन्द होता है।

मात्रा—इसकी ताजी जड़ की छाल की मात्रा चार माशे से आठ माशे तक होती है। इसके अर्क की मात्रा दो से चार ड्राम तक और इसकी फांट की मात्रा एक औंस से दो औंस तक होती है।

बनावटें—सहजने का अर्क—सहजने की जड़ की ताजी छाल ५० तोला, संतरे की सूखी छाल ५० तोला, जायफल का चूर्ण १॥ तोला, शराब (९० प्रतिशत) १ गैलम और पानी २ पिएट इन सब चीजों का भभके से हलकी आँच पर अर्क निकाल लेना चाहिये। इस अर्क की मात्रा दो से चार ड्राम तक है। यह अर्क उत्तेजक होता है।

सहजने की फांट—सहजने की ताजी कूटी हुई छाल १ औंस, कूटी हुई राई १ औंस, खौलता हुआ पानी १ पाइंट, इन सबको दो घंटे तक बंद बरतन में रखकर छान लेना चाहिये और इसमें उपरोक्त अर्क भी १ औंस मिला देना चाहिये। इस फांट की मात्रा १ औंस से २ औंस तक होती है। यह फांट भी एक मूल्यवान उत्तेजक वस्तु है।

सहजने का पाक—सहजने का गोंद पाव भर लेकर उसे घी में तल लेना चाहिये। फिर गेहूँ का आटा आधा सेर लेकर आधे सेर घी में भून लेना चाहिये। फिर गुड़ आधा सेर और सोंठ चार तोला पीसकर सबको मिलाकर लड्डू बाँध लेना चाहिये। इन लड्डुओं का सेवन करने से गरम वायु, सर्दवायु, फूलनी वायु, उरुस्तम्भ, गृध्रसी इत्यादि रोग मिटते हैं।

(नवाँ भाग समाप्त)

* * *

000003

महत्त्वपूर्ण चिकित्सोपयोगी ग्रन्थ—

अभिनन्दनग्रन्थ (श्री[illegible])	[illegible]
अभिनव विकृति विज्ञान—आचार्य त्रिवेदी	२२—००
अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान—श्री प्रियव्रत शर्मा	१०—००
अष्टाङ्गसंग्रहः—'अर्थप्रकाशिका' हिन्दीटीका सूत्रस्थान	८—००
अष्टाङ्गहृदयम्—सविमर्श विद्योतिनी हिन्दी व्याख्या	१५—००
अष्टाङ्गहृदय—मूलमात्र	४—००
आयुर्वेद प्रदीप—डा० गंगासहाय पाण्डेय	१२—००
आयुर्वेदप्रकाशः—संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या	१२—५०
आयुर्वेदविज्ञानम्—विद्योतिनी हिन्दी टीका	२—००
आसवारिष्टविज्ञान—आचार्य पक्षधर झा	३—००
एलोपैथिक पाकेट प्रेस्क्राइबर—शिवनाथ खन्ना	५—००
एलोपथिक मिक्श्चर्स—डा० राजकुमार द्विवेदी	२—५०
औपसर्गिक रोग—(परिवर्धित संस्करण) डा० घाणेकर प्रथम भाग १०—०० द्वितीय भाग	१२—००
काकचण्डीश्वर कल्पतन्त्रम्—हिन्दी टीका	२—००
कामकुञ्जलता—दुण्ढिराज शास्त्री	२०—००
हिन्दी कामसूत्रम्—(जयमंगला टीका सहित)	१६—००
कायचिकित्सा—डा० गङ्गासहाय पाण्डेय	२५—००
कायचिकित्सा—श्रीरामरक्ष पाठक १-२ भाग	२५—००
काश्यपसंहिता—विद्योतिनी हिन्दी टीका	१६—००
कौमारभृत्य—आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी	८—००
क्लिनिकल पैथोलोजी—डा० शिवनाथ खन्ना	१२—००
सचित्र क्रियात्मक ओषधि परिचय विज्ञान— विश्वनाथ द्विवेदी	१२—००
गदनिग्रह—हिन्दी टीका सहित १-३ भाग	६५—००
गर्भरक्षा तथा शिशु परिपालन—डा० वर्मा	४—५०
चक्रदत्त—'भावार्थसन्दीपनी' हिन्दी टीका	१०—००
चरकसंहिता—'सविमर्शविद्योतिनी' हिन्दी व्याख्या	३६—००
चरक तथा काश्यप संहिता का निर्माणकाल— रघुवीरशरण शर्मा	२—००
चौखम्बा-चिकित्सा-विज्ञानकोश	२०—००
द्रव्यगुणविज्ञान—श्री प्रियव्रत शर्मा १-३ भाग	२३—००
त्रिदोषविज्ञानम्—उपेन्द्रनाथ दास हिन्दी टीका	४—००
नव्य-चिकित्सा-विज्ञान—डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा प्रथम भाग ८—००, द्वितीय भाग	८—००
निघण्टुआदर्श—वैद्य बापालाल हिन्दी प्रथम भाग	३५—००
पञ्चभूतविज्ञानम्—उपेन्द्रनाथ दास हिन्दी टीका	४—००
पञ्चविध कषाय कल्पना विज्ञान—डा० अग्निहोत्री	१—५०
परिभाषा-प्रबन्ध—पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल	२—५०
पेटेण्ट प्रेस्क्राइबर—डा० रमानाथ द्विवेदी	१०—००
प्रसूति विज्ञान—डा० रमानाथ द्विवेदी	१२—००
प्रारम्भिक उद्भिद् शास्त्र—प्रो० बलवन्त सिंह	४—५०
प्रारम्भिक भौतिकी—श्री निहालकरण सेठी	५—५०
प्रारम्भिक रसायन—प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा	४—५०
बीसवीं शताब्दी की ओषधियाँ—डा० वर्मा	८—००
भारतीय रसपद्धति—कविराज अत्रिदेव गुप्त	१—५०
भावप्रकाशः—'विद्योतिनी' हिन्दी टीका	२९—००
भावप्रकाश-ज्वराधिकारः—विद्योतिनी हिन्दी टीका	५—००
भावप्रकाशनिघण्टुः—डा० गङ्गासहाय पाण्डेय	१२—००
भिषक् कर्मसिद्धि—डा० रमानाथ द्विवेदी	२०—००
भेलसंहिता—सटिप्पण शोधपूर्ण संस्करण	१०—००
भैषज्यरत्नावली—विद्योतिनी हिन्दी व्याख्या	१६—००
भैषज्यकल्पनाविज्ञान—डा० अग्निहोत्री	५—००
मर्म-विज्ञान—(सचित्र) श्री रामरक्ष पाठक	३—५०
माधवनिदान—सर्वाङ्गसुन्दरी हिन्दी टीका	४[illegible]०
माधवनिदानम्—'मधुकोष' संस्कृत टीका तथा 'विद्योतिनी' हिन्दी व्याख्या, विमर्श सहित	१४—००
माधवनिदानम्—मधुकोष मनोरमा सं० हिं० व्याख्या	यन्त्रस्थ
यकृत के रोग और उनकी चिकित्सा	२—००
योग-चिकित्सा—अत्रिदेव गुप्त	३—५०
योगरत्नाकर—मूलमात्र	६—००
योगरत्नाकर—विद्योतिनी हिन्दी टीका	२०—००
रसकौमुदी—हिन्दी टीका सहित	१—५०
रसचिकित्सा—कविराज प्रभाकर चट्टोपाध्याय	६—००
रसरत्नसमुच्चयः—सुरत्नोज्वला हिन्दी टीका	१२—००
रसरत्नसमुच्चय—मूलमात्र	३—००, ३—७५
रसादि परिज्ञान—पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल	२—५०
रसार्णवं नाम रसतन्त्रम्—भागीरथी टिप्पणी सहित	३—००
रसेन्द्रसारसंग्रहः—रसचन्द्रिका हिन्दी टीका	७—००
रसेन्द्रसारसंग्रहः—'गूढार्थसंदीपिका' संस्कृत व्याख्या	५—००
राजमार्तण्ड—हिन्दी टीका सहित	२—५०
रोगनामावली कोष—वैद्य दलजीत सिंह	३—५०
रोग परिचय—डा० शिवनाथ खन्ना	१५—००
रोगि-परीक्षा विधि—श्री प्रियव्रत शर्मा	६—००
रोगी परीक्षा—डा० शिवनाथ खन्ना	७—००
रोगी-रोगविमर्श—डा० रमानाथ द्विवेदी	२—००
लोहसर्वस्व—हिन्दी टीका सहित	२—००
वनौषधि चन्द्रोदय—(विशाल निघण्टु ग्रन्थ) १-१० भाग। प्रत्येक भाग ५—००, संपूर्ण	४०—००
वाग्भटविवेचन—प्रियव्रत शर्मा	२०—००
विषविज्ञान और अगदतन्त्र—रमानाथ द्विवेदी	२—००
वैद्यक परिभाषाप्रदीप—प्रदीपिका हिन्दी टीका	१—५०
वैद्यकीय सुभाषितावली—डा० प्राणजीवन मेहता	२—००
वैद्यकीयसुभाषितसाहित्यम्—डा० घाणेकर	२५—००
व्यवहारायुर्वेद-विषविज्ञान-अगदतन्त्र-डा० द्विवेदी	५—००
शल्यप्रदीपिका। मुकुन्दस्वरूप वर्मा	१५—००
शार्ङ्गधरसंहिता—सुबोधिनी हिन्दी टीका	५—००
शालाक्यतन्त्र—डा० रमानाथ द्विवेदी	१०—००
सचित्र-इन्जेक्शन—डा० शिवनाथ खन्ना	११—००
सामान्य रोगों की रोकथाम—डा० प्रियकुमार चौबे	३—५०
सिद्धभेषज संग्रह—डा० गङ्गासहाय पाण्डेय	७—००
सिद्धान्तनिदान। गणनाथ सेन। १-२ भाग	१४—००
सुश्रुतसंहिता—आयुर्वेदतत्त्वसंदीपिका हिन्दी टीका	२४—००
सुश्रुत-शारीर स्थान—'प्रभा'-'दर्पण' हिन्दी व्याख्या	४—००
सूचीवेध विज्ञान—डा० राजकुमार द्विवेदी	२—५०
सौश्रुती—डा० रमानाथ द्विवेदी	१०—००
स्त्रीरोग-विज्ञान—डा० रमानाथ द्विवेदी	३—५०
स्वास्थ्यविज्ञान—डा० घाणेकर	९—००
स्वास्थ्यसंहिता—हिन्दी टीका, नानकचन्द वैद्य	२—५०
स्वास्थ्यशिक्षापाठावली—डा० घाणेकर	३—५०
हिन्दी प्रत्यक्षशारीर—गणनाथ सेन १-२ भाग	२५—००

प्राप्तिस्थान—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, पो० बा० ८, वाराणसी-१

LIMITED, NEW DELHI

294

DEBI

f .... 20.......

Vr. No.	PARTICULARS	G. L. Folio	S. L. Folio	CASH		TOTAL
				Rs.	P.	Rs.